प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पांचवीं बार, १९४५
मूल्य
बारह आना

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस, दिल्ली

स्त्री और पुरुष

· १ ·

'क्रूजर सोनाटा''का परिशिष्ट

मेरे पास अपरिचित व्यक्तियोके ऐसे अनेक पत्र आये हैं और आ रहे है, जिनमे मुझसे कहा गया है कि अपनी 'क्रूजर सोनाटा' शीर्षक कहानीमे मैंने जिस विषयको उठाया है, उस सबधमे मैं अपने विचार सरल और सुबोध भाषामे स्पष्ट कर दूं। मैं यहा यही यत्न करूगा, अर्थात् मैं यथासभव सक्षेपमे, उस कहानीके द्वारा मै जो कुछ कहना चाहता था, उसका सार देनेका प्रयत्न करूगा, तथा मेरे मतानुसार उस कहानीसे जो निष्कर्ष निकाले जा सकते है, उन्हे बतानेकी चेष्टा करूंगा।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता था कि हमारे समाजके सभी वर्गोंने यह दृढ़ धारणा बंध गई है, और झूठे विज्ञानके द्वारा इसका समर्थन भी किया जाता है, कि स्वास्थ्य रक्षाके लिए मैथुन नितात आवश्यक है, तथा, चूंकि सभी व्यक्तियोंके लिए विवाह सभव नही है, इसलिए विवाह-बधनके बिना भी, पैसे देकर व्यभिचार करना सर्वथा स्वाभाविक है और उसे प्रोत्साहन देना चाहिए।

यह धारणा समाजमें इतनी फैल गई है कि कितने ही माता-पिता डाक्टरोकी सलाहसे अपनी सतानोको पापाचरणके लिए उत्तेजित करते हैं सरकारका धर्म अपनी प्रजाका नैतिक जीवन ऊंचा उठाना है, पर वह पापालयोका सगठन करती है, अर्थात् स्त्रियोके एक ऐसे वर्गका सचालन करती है, जो अपना शारीरिक तथा आध्यात्मिक पतन करके पुरुषोकी

१—स्त्री पुरुषके संबंधोंकी विवेचना करने वाली टॉलसटायकी एक प्रसिद्ध कहानी। —अनु०

काल्पनिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करती है तथा अविवाहित पुरुष बिना किसी आत्म-प्रतारणाके पापरत होते हैं।

मैं यह कहना चाहता था कि यह अनुचित है। कुछ लोगोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए दूसरेके शरीर तथा आत्माका नाश किया जाय, यह कहना उसी प्रकार बुरा है, जिस प्रकार यह कहना कि अपने स्वास्थ्य-लाभके लिए दूसरेका खून पिया जाय।

मेरी समझमें इससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्तिको इस बुराईसे बचना चाहिए। और इन बुराइयोंसे बचनेका एक उपाय यह है कि मनुष्य अनीतिपूर्ण शिक्षाओंको स्वीकार करनेसे इनकार कर दे, चाहे झूठे विज्ञान उन शिक्षाओंका समर्थन ही क्यों न करते हों। दूसरे वह यह भलीभांति समझ ले कि जिस विषयोपभोगमें पुरुष अपने कार्योंके परिणाम, अर्थात् सन्तानोत्पत्तिसे, अपनेको मुक्त रखता है, तथा उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्त्रीपर डाल देता है जो कृत्रिम सन्तति-निरोधके उपायोंका आश्रय

दूसरी बात, फैशनेबल समाजमे यह धारणा बध जानेसे कि विषयोपभोग न केवल एक स्वास्थ्यदायक तथा आनददायक वस्तु है, बल्कि वह जीवनका एक काव्यपूर्ण तथा लोकोत्तर वरदान है, समाजके सभी वर्गोंमे दुराचार एक मामूली-सी बात होगई है (किसानोंमे मुख्यतया फौजी नौकरीके कारण यह बुराई बढी है)।

मेरा मत है कि यह अनुचित है, और इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बुराइयोंसे बचना चाहिए।

और इन बुराइयोंसे बचनेके लिए स्त्री-पुरुषके प्रेमके सबधमे जो विचार फैले हुए हैं, उन्हे बदलना आवश्यक है। माता-पिताओं तथा लोकमत द्वारा लडके-लडकियोंको यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाहसे पहले तथा बादमे एक दूसरेसे प्रेम करने लगना तथा विषयोपभोगमे प्रवृत्त होना कोई काव्यमय तथा लोकोत्तर अवस्था नहीं है, बल्कि यह तो पशु-जीवनकी एक अवस्था है और मनुष्यकी मर्यादा घटानेवाली है। समाजको पर-स्त्री अथवा पर-पुरुषसे सबध न रखनेकी वैवाहिक-प्रतिज्ञा भग करने वालोंकी उसी प्रकार भर्त्सना करनी चाहिए, जिस प्रकार बकाया रुपया न अदा करने वालो तथा व्यापारमे धोखा देनेवालोंकी भर्त्सना की जाती है। इस समय तो उपन्यासों, कविताओं, गीतो तथा थियेटरो आदिमे इस प्रकारके दुराचारका गुणगान किया जाता है, जो नितात अनुचित है।

यह हुई दूसरी बात।

तीसरी बात, विषयोपभोगको मिथ्या महत्त्व देनेके कारण हमारे समाजमे संतानोत्पादनका सच्चा अर्थ नष्ट होगया है। संतानोत्पत्ति वैवाहिक सुखका पवित्र उद्देश्य माना जानेके बजाय वह विषयोपभोगके आनदमे बाधक मानी जाने लगी है। फलतः डाक्टरोंकी सहायतासे विवाहके पूर्व और पश्चात् स्त्रियोंकी सतानोत्पादनकी शक्ति व्यर्थ करनेके लिए संतति-निरोधके कृत्रिम उपाय अधिकाधिक व्यवहारमे लाये जा रहे हैं। पहले गर्भावस्था तथा गोदमें दूध-पीता बच्चा होनेकी अवस्थामे विषयोपभोग वर्जित

था। आज भी पुराने कृषक-परिवारोंमे यह प्रथा प्रचलित है, पर अब गर्भावस्था तथा गोदमे बच्चा होनेकी अवस्थामे भी विषयोपभोग करना एक रिवाज-सा होगया है।

यह नितांत अनुचित है ।

संतति-निरोधके कृत्रिम उपायोंका अवलंबन करना बहुत ही अनुचित है, क्योंकि इससे मनुष्य बच्चोंके पालन-पोषण आदिके चिंता-भारसे मुक्त होजाता है। दंपति-प्रेमकी सार्थकता संतानोत्पत्तिमे ही है। दूसरे संतति-निरोधका अवलंबन करना एक प्रकारसे जीव-हत्या करना है, जो मनुष्य-जातिमे सबसे जघन्य अपराध माना जाता है। गर्भावस्था तथा गोद-मे बच्चा होने की अवस्थामे विषयोपभोग करनेसे स्त्रीकी शारीरिक, और उससे भी अधिक उसकी आत्मिक-शक्तिका नाश होता है, इसलिए इस अवस्थामे विषयोपभोग बहुत ही बुरा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बुराइयोंसे बचना चाहिए। इन बुराइयोंसे बचनेके लिए आवश्यक है कि मनुष्य संयमका महत्व समझ ले। मर्यादा-रक्षाके लिए अविवाहित जीवनमे संयम रखना आवश्यक तो है ही, विवाहित जीवनमे भी संयम रखना आवश्यक है।

यह हुई तीसरी बात।

वर्गके लोग ऐसा नहीं कर पाते, इसका कारण उनकी गरीबी होती है, पर उनकी लालसा तो उच्च वर्गोंके समान ही होती है)। और इस प्रकारसे पाले गए बच्चोंमे. खूब खिला-पिला कर पाले-पोसे गए पशुओंकी भांति, अस्वाभाविक रूपसे कच्ची उम्रमे ही दुर्दमनीय विषय-वासना जाग्रत होजाती है, जिससे यौवनावस्था प्राप्त करने पर उन्हे नाना यातनाए भोगनी पडती है। उनके चारो ओरका वायुमडल भी उनकी विषय-वासनाको उत्तेजन देनेमे योग देता है। उनके कपडे, उनकी किताबे, सगीत, नृत्य, मेले, चित्र. कहानिया. उपन्यास तथा कविताए, उनके प्रतिदिनके जीवनमे सामनेवाली सभी वस्तुए उनकी कामुकता बढाती है। इसका फल यह होता है कि बहुधा युवक-युवतिया जीवनके बसतकालमे ही नाना घृणित व्यभिचारो तथा भयकर रोगोमे लिप्त होजाती है और प्रौढ़ावस्थामे भी चारित्रिक दोष तथा रोग उनका पीछा नही छोडते।

यह बहुत ही बुरा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बच्चोका पालन-पोषण पशुओंकी तरह नही होना चाहिए तथा उन्हे मोटा-ताजा और सुंदर-सुडौल बनानेके बजाय, दूसरी बातोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिए।

यह हुई चौथी बात।

पाचवी बात. हमारे समाजमे युवक-युवतीका प्रेम-व्यापार मानव-जीवनका सर्वोच्च उत्कृष्ट लक्ष्य माना जाता है (जरा हमारे समाजकी कला और काव्य पर दृष्टिपात करिए)। इस प्रेम-व्यापारका मूलाधार मौन-आकर्षण रहता है। युवक अपने मनके लायक किसी रमणीको ढूढ़ निकालने और उससे स्वतंत्र प्रेम-सबध स्थापित करने अथवा विवाह करनेमे तथा युवतिया पुरुषोको मोहित करनेमे अपने जीवनका सर्वोत्तम काल गवा देती हैं।

इस प्रकार पुरुषोकी शक्ति एक निरर्थक तथा हानिकर कार्यमे खर्च हो जाती है। इसी कारण हमारे जीवनमे इतनी मूढतापूर्ण विलासिता आगई है. पुरुषोमे अलसता तथा स्त्रियोमे निर्लज्जता बढती जाती है, वे कुलटाओ-

की देखादेखी नये-नये फैशन ग्रहण करती है, और कामाग्नि भड़काने वाले अपने अगोका प्रदर्शन करनेमे भी सकोच नहीं करतीं।

मैं इसे अनुचित मानता हू।

यह इसलिए अनुचित है कि कविताओ तथा उपन्यासोमे स्वतत्र प्रेम अथवा विवाह करके स्त्री-पुरुषका मिलन चाहे कितना ही ऊचा क्यो न ठहराया गया हो, पर मनुष्य-जीवनके लिए यह लक्ष्य उसी प्रकार शोभनीय नहीं है, जिस प्रकार बढिया पकवानोसे पेट भर लेना, चाहे बहुतसे लोग इसे जीवनकी नियामत ही क्यो न मानते हो!

इसमे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको स्त्री-पुरुषका प्रेम कोई लोकोत्तर वस्तु मानना छोड देना चाहिए। उसे यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य चाहे देश-सेवा करना अपने जीवनका लक्ष्य बनावे, चाहे वह विज्ञान अथवा कलाकी आराधना अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित करे। (ईश्वरकी आराधना तो दूरकी बात है),पर इनमेसे एक भी लक्ष्यकी सिद्धि वह विषय-वासनामे पड़ कर नहीं कर सकता। प्रेम तथा विषय-भोगकी अवस्था जीवनके किसी भी पुनीत लक्ष्यकी पूर्तिमे सहायक नहीं होती, उल्टे वह उसमे बाधक होती है। (चाहे काव्य और उपन्यास इससे उल्टा सिद्ध करनेकी कितनी ही चेष्टा क्यो न करे)।

यह हुई पाचवी बात।

निंदा तथा संयमकी प्रशंसा करते हैं। पुनः वे विचार बाइबिलकी शिक्षाके अनुसार हैं, जिसे हम अपने सदाचरण-संबंधी विचारोंका मूल मानते हैं।

पर बादमें मेरा यह ख्याल गलत साबित हुआ।

यह सच है कि प्रत्यक्ष रूपसे कोई इन विचारोंका खंडन नहीं करता कि विवाहसे पूर्व अथवा बादमें विलासिता बुरी है, कृत्रिम संतति-निरोध अनुचित है, बच्चोंको खिलौना नहीं बनाना चाहिए तथा विषयोपभोग जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है—संक्षेपमें कोई भी इस बातका खंडन नहीं करता कि विलासितासे संयम उत्तम है। पर कहा जाता है—'यदि विवाहसे ब्रह्मचर्य उत्तम है तो मनुष्यको उत्तम पथका अनुसरण करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य-जातिका अंत हो जायगा और ऐसा मनुष्य-जाति कभी नहीं चाहेगी।'

मनुष्य-जातिके अंत हो जानेका विचार कोई नया नहीं है। धार्मिक व्यक्ति इसमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि सूर्य दिनों-दिन ठंडा होता जा रहा है, जिससे यही अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है। पर इस बातको यहीं छोड़ भी दें, तो भी उक्त आपत्तिके पीछे एक दूसरी बहुत पुरानी गलतफहमी है। कहा जाता है—'यदि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्श पर पहुंच जाय तो मनुष्य-जाति ही समाप्त हो जायगी, अतः यह आदर्श गलत है।' पर जो लोग ऐसा तर्क करते है वे जान-बूझ कर या बिना जाने दो अलग वस्तुओं—नियम और आदर्श—को एकमें मिला कर गड़बड़ी करते हैं।

ब्रह्मचर्य नियम नहीं, बल्कि एक आदर्श है, अथवा आदर्श जीवनका एक अंग है। आदर्श तभी तक वस्तुतः आदर्श रहता है जब तक उसकी सिद्धि केवल विचारोंमें ही संभव हो, जबतक वह अनंत कालमें सिद्ध होने वाला मालूम पड़े, अतः उसकी प्राप्ति अनंत काल तक संभव मालूम पड़े। यदि आदर्श सिद्ध हो जाय अथवा उसे हम सिद्ध करने योग्य मान सकें तो वह आदर्श नहीं रह जायगा।

पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना करनेका ईसाका आदर्श ऐसा ही है।

की देखादेखी नये-नये फैशन ग्रहण करती हैं, और कामाग्नि भड़काने वाले अपने अंगोका प्रदर्शन करनेमें भी संकोच नहीं करती।

मैं इसे अनुचित मानता हूं।

यह इसलिए अनुचित है कि कविताओं तथा उपन्यासोंमें स्वतंत्र प्रेम अथवा विवाह करके स्त्री-पुरुषका मिलन चाहे कितना ही ऊंचा क्यों न ठहराया गया हो, पर मनुष्य-जीवनके लिए यह लक्ष्य उसी प्रकार शोभनीय नहीं है, जिस प्रकार बढ़िया पकवानोंसे पेट भर लेना, चाहे बहुतसे लोग इसे जीवनकी नियामत ही क्यों न मानते हों!

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको स्त्री-पुरुषका प्रेम कोई लोकोत्तर वस्तु मानना छोड़ देना चाहिए। उसे यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य चाहे देश-सेवा करना अपने जीवनका लक्ष्य बनावे, चाहे वह विज्ञान अथवा कलाकी आराधना अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित करे (ईश्वरकी आराधना तो दूरकी बात है), पर इनमेंसे एक भी लक्ष्यकी सिद्धि वह विषय-वासनामें पड़ कर नहीं कर सकता। प्रेम तथा विषय-सेवनकी अवस्था जीवनके किसी भी पुनीत लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायक नहीं होती, उल्टे वह उसमें बाधक होती है। (चाहे काव्य और उपन्यास इससे उल्टा सिद्ध करनेकी कितनी ही चेष्टा क्यों न करें)।

यह हुई पांचवीं बात।

उस कहानीमें मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह संक्षेपमें यही है। मैं समझता हूँ कि उस कहानीमें मैंने यह व्यक्त भी कर दिया है। मेरा ख्याल है कि उस कहानीमें विवेचना करके समाजकी जो बुराइयां इंगितकी गई हैं, उन्हें दूर करनेके उपायोंके संबंधमें भले ही मतभेद हो, पर उन विचारोंसे कोई असहमत नहीं हो सकता।

मेरा ख्याल था कि कोई उनसे असहमत हो भी कैसे सकता है। वे विचार मानव-प्रगतिके सर्वथा अनुकूल हैं—मनुष्य-जाति निरंतर उच्छृंखलतासे अधिकाधिक शीलकी ओर बढ़ रही है। वे समाज तथा व्यक्तिके नैतिक आदर्शोंके भी सर्वथा अनुकूल हैं, हम सदैव असंयमकी

निदा तथा सयमकी प्रशसा करते है। पुन. वे विचार बाइबिलकी शिक्षाके अनुसार है, जिसे हम अपने सदाचरण-सबधी विचारोका मूल मानते है।

पर बादमे मेरा यह ख्याल गलत साबित हुआ।

यह सच है कि प्रत्यक्ष रूपसे कोई इन विचारोका खडन नही करता कि विवाहसे पूर्व अथवा बादमे विलासिता बुरी है, कृत्रिम सतति-निरोध अनुचित है, बच्चोको खिलौना नही बनाना चाहिए तथा विषयोपभोग जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य नही है—सक्षेपमे कोई भी इस बातका खडन नहीं करता कि विलासितासे सयम उत्तम है। पर कहा जाता है—'यदि विवाहसे ब्रह्मचर्य उत्तम है तो मनुष्यको उत्तम पथका अनुसरण करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य-जातिका अत हो जायगा और ऐसा मनुष्य-जाति कभी नहीं चाहेगी।'

मनुष्य-जातिके अत हो जानेका विचार कोई नया नही है। धार्मिक व्यक्ति इसमे पूर्ण श्रद्धा रखते है। वैज्ञानिक मानते है कि सूर्य दिनो-दिन ठडा होता जा रहा है, जिससे यही अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है। पर इस बातको यही छोड भी दे, तो भी उक्त आपत्तिके पीछे एक दूसरी बहुत पुरानी गलतफहमी है। कहा जाता है—'यदि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्श पर पहुच जाय तो मनुष्य-जाति ही समाप्त हो जायगी, अतः यह आदर्श गलत है।' पर जो लोग ऐसा तर्क करते है वे जान-बूझ कर या बिना जाने दो अलग वस्तुओ—नियम और आदर्श—को एकमे मिला कर गडबडी करते है।

ब्रह्मचर्य नियम नही,बल्कि एक आदर्श है, अथवा आदर्श जीवनका एक अग है। आदर्श तभी तक वस्तुत. आदर्श रहता है जब तक उसकी सिद्धि केवल विचारोमे ही सभव हो, जबतक वह अनत कालमे सिद्ध होने वाला मालूम पडे, अतः उसकी प्राप्ति अनत काल तक सभव मालूम पडे। यदि आदर्श सिद्ध हो जाय अथवा उसे हम सिद्ध करने योग्य मान सके तो वह आदर्श नहीं रह जायगा।

पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना करनेका ईसाका आदर्श ऐसा ही है।

पुराने पैगम्बरोंने भी इस आदर्शकी भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी, उन्होंने कहा था कि वह समय आ रहा है जब तलवारोंसे हलका काम लिया जायगा, भाले पेडोंकी कलम काटनेका काम देंगे, शेर और बकरी एक घाट पानी पियेंगे और प्राणीमात्र प्रेमके बंधनमें बंध जायंगे। मानव-जीवनका चरम उद्देश्य इसी आदर्शकी ओर बढ़ना है। इस आदर्शकी प्राप्तिके लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। अतः इस आदर्श तथा ब्रह्मचर्यकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेसे जीवनका विनाश नहीं होगा. इसके विपरीत यदि इस आदर्शकी प्रतिष्ठा न रही तो जीवनकी प्रगति तथा सच्चे जीवनकी संभावना नष्ट हो जायगी।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे मानव-जाति नष्ट हो जायगी, यह तर्क वैसा ही है, जैसे यह तर्क करना कि यदि मनुष्य लड़ाई-झगड़े त्याग कर शत्रु और मित्र, सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम-धर्मका पालन करनेका प्रयत्न करने लगें तो मनुष्य-जातिका नाश हो जायगा। ऐसे तर्क वे ही लोग करते हैं, जो नीति-शिक्षाके दो भिन्न-भिन्न मार्गोंका भेद नहीं समझते।

जिस प्रकार किसी पथिकको दो प्रकारसे मार्ग-निर्देश किया जा सकता है, उसी प्रकार सत्यके शोधकको भी दो प्रकारसे नीति-शिक्षा दी जा सकती है। एक तो पथिकको बता दिया जाय कि तुम्हें मार्ग पर अमुक-अमुक चिह्न मिलेंगे और उन्हें देखते हुए अपना रास्ता ढूंढते चले जाना। दूसरे पथिकको दिग्सूचक यंत्र देकर मार्ग बता दिया जाय और वह एक ही दिशाको लक्ष्यमें रख कर अपने मार्गमें हेर-फेर करता रहे।

नीति-शिक्षाका पहला मार्ग बाह्याचरणकी शिक्षाका है। मनुष्यको कुछ नियम बता दिये जाते हैं कि अमुक काम करना चाहिए, अमुक काम नहीं करना चाहिए—उदाहरणार्थ चोरी मत कर, शराब मत पी, किसी जीवकी हत्या मत कर, गरीबोंको दान दे, प्रति दिन पांच बार ईश्वरकी प्रार्थना कर, आदि आदि। ये धर्म-शिक्षाके बाहरी नियम हैं। हिंदू-धर्म, बौद्ध-धर्म, इसलाम, यहूदी-धर्म तथा पादरी-धर्म (जिसे गलत ढंगसे ईसाई-धर्म कहा जाता है), सभी धर्मोंमें

इस प्रकारके वाह्याचरणके नियम है।

दूसरा मार्ग आदर्शका निर्देश कर देना है, जिसे मनुष्य कभी प्राप्त नही कर पाता, प्राप्त करनेका सतत् प्रयत्न किया करता है, उस आदर्शसे वह कितना दूर है, यह देखकर वह अपनी कमजोरियोका अदाज लगाता है और उन्हे दूर करनेकी चेष्टा करता है।

'काया, वाचा, मनसा ईश्वरसे प्रेम कर और अपने पडौसीको निजके समान प्यार कर।

'परम-पिताकी भाति पूर्ण वन।'

ये ईसाके उपदेश है।

धर्मके वाहरी नियमोका पालन करनेकी कसौटी है कि मनुष्यका वाह्याचरण उन नियमोके अनुकूल हो, और यह सभव है।

ईसाके उपदेशोका पालन करनेकी कसौटी है कि मनुष्य पूर्ण आदर्श तक न पहुच सकनेकी अपनी कमजोरियोके प्रति सतत् सजग रहे (वह यह तो नही देख पाता कि वह आदर्शके कितने निकट पहुच सका है, पर वह यह अवश्य देख लेता है कि वह आदर्शसे कितनी दूर है)।

वाहरी नियमोका पालन करने वाला मनुष्य खभे पर टगी लालटेनके प्रकाशमे खडा रहने वाले मनुष्यके समान है। वह लालटेनके प्रकाशमे खडा है, उसके चारो ओर प्रकाश है, पर उसे आगेका मार्ग नही सूझता। ईसाके उपदेशो पर चलने वाला मनुष्य उस मनुष्यके समान है जो आगे-आगे लालटेन लेकर चल रहा हो। प्रकाश सदा उसके आगे रहता है और वह उसका वरावर अनुसरण करता रहता है; प्रकाशमे उसके सामने वरावर नया मार्ग प्रकट होता रहता है।

एक फारिसी[1] समस्त नियमोका पालन कर ईश्वरको धन्यवाद देता है। उस धनिक युवकने वचपनसे समस्त नियमोका पालन किया था, फिर भी वह समझ नही पाता था कि उसके अदर क्या कमी है। उसकी अवस्थामे

१-यहूदियोका एक संप्रदाय, जो हजरत मूसाके सभी नियमोंका अक्षरश पालन करने पर जोर देता था।

यह स्वाभाविक था, क्योंकि उसके सामने ऐसी कोई चीज नहीं थी जो उसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा करे। वह अपनी आयका एक-दसवा हिस्सा दानमे देता था, साप्ताहिक व्रतका पालन करता था, अपने माता-पिताओका आदर करता था, व्यभिचार, चोरी तथा हत्यासे दूर रहता था वह सब कुछ तो करता था।

जो ईसाके उपदेशो पर चलते है, उन्हे पूर्णताकी एक सीढी पर पैर रखते ही दूसरी सीढी पर पैर रखनेकी आवश्यकता मालूम पड़ती है, दूसरी सीढी पर पैर रखते ही तीसरी सीढी पर पैर रखनेकी आवश्यकता मालूम पड़ती है, इस प्रकार उनकी प्रगतिका पथ अनन्त रहता है।

ईसाके सच्चे अनुगामियोको सदा अपनी अपूर्णताका भान रहता है। वे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते कि उन्होने कितना रास्ता तय किया है, वे सदा आगे देखते है कि उन्हे अभी कितना और रास्ता तय करना बाकी है।

ईसाके उपदेशो तथा अन्य धर्मोके उपदेशोमे यही भेद है, यह भेद बाहरी आचारोका नही, मार्गका है।

ईसाने जीवनके नियम नही बनाये। उन्होने विवाह अथवा अन्य कोई संस्था नहीं स्थापित की। परन्तु मनुष्योने उनके उपदेशोकी विशेषताए ग्रहण नही की। वे तो केवल नियमोका पालन कर अपना बाहरी आचरण शुद्ध रखनेके इच्छुक थे। अतः उन्होने, उदाहरणार्थ फारिसियोने ईसाके शब्दोका भीतरी अर्थ समझनेकी कोशिश नही की। उन्होने, उनके शब्दो-को पकड़ कर, किन्तु उनकी आत्माके ठीक विपरीत, बाहरी नियमोका एक पोथा रच डाला और इस प्रकार ईसाके सच्चे उपदेशो पर परदा डाल दिया।

इन नियमोको हम पादरियोके नियम कह सकते है, परन्तु इन्हे गलत तरीकेसे ईसाई धर्मके सिद्धात कह कर प्रचारित किया गया है। ये नियम ईसाके सच्चे उपदेशके विरुद्ध है। पादरियोने जीवनके सभी व्यापारोके सबधमे नियमोपनियम बना दिये है। सरकार कैसे चलाई

जाय, क्या-क्या कानून बनाये जाय, युद्ध कैसे हो, गिरजाघरोके क्या कायदे हो, पूजा-विधि कैसी हो. उन्होने सभी चीजोके सबधमे नियम बनाये है। ईसाने कभी विवाह सस्थाकी स्थापना नही की। उनके आदेश तो इसके विरुद्ध थे (जैसे, 'अपनी स्त्रीको छोड दो और मेरा अनुसरण करो)। परतु पादरियोने अपनी ओरसे ईसाका नाम जोड कर विवाह-सस्था ईसाई-सस्था करार कर दी है, अर्थात् उन्होने ऐसे नियमोकी रचना कर डाली है, जिनका पालन करते हुए, उनके कथनानुसार विषयोपभोग भी पूर्णतया पापरहित तथा ईसाई-धर्ममे जायज मान लिया गया है।

यद्यपि ईसाके सच्चे उपदेशोमे विवाह-सस्थाका कोई स्थान नही है, तथापि आज तो यह अवस्था होरही है कि हम न इधरके रह गए है, न उधरके, हमने ईसाकी सच्ची शिक्षाको ग्रहण किये बिना दूसरी शिक्षाका भी त्याग कर दिया है। हम विवाह-विषयक पादरियोके नियमोमे भी विश्वास नही करते, हम अनुभव करते है कि ईसाकी शिक्षाओमे इनका समावेश नही है, दूसरी ओर हम ईसाकी सच्ची शिक्षा—पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करने—से भी अवगत नही है। अत. विवाहित जीवनके लिए हमारे यहा सुनिश्चित नियम नही है। यही कारण है कि यहूदी, मुसलमान तथा लामा लोगोकी धार्मिक शिक्षाए ईसाई धर्मसे निम्न-स्तरकी होते हुए भी, उनमे तथाकथित ईसाइयोकी अपेक्षा पारिवारिक बधन तथा विवाहित जीवनमे सदाचरण बहुत दृढ है। उन लोगोमे विवाहित जीवनके सुनिश्चित नियम हैं। उनमे भी उप-पत्नीत्व, बहु-पत्नीत्व तथा बहु-पतीत्वकी प्रथाए है, पर उनके यहा इन सबकी एक सीमा है। हमारे यहा कोई सीमा नही, हम ढोग तो करते हैं कि हमारे यहा एक-पत्नीत्व अथवा एक-पतीत्वका पालन होता है, पर उप-पत्नीत्व, बहु-पत्नीत्व तथा बहु-पतीत्वका दूषण हमारे यहा सबसे अधिक है।

पादरी लोग धनके लोभसे, कुछ धार्मिक कृत्य करके, जिन्हे हम विवाहकी सज्ञा देते हैं, स्त्री-पुरुषका गठबधन कर देते हैं और हम अपनेको धोखा देते हुए समझते है कि हमारे समाजमे एक-पत्नीव्रत अथवा एक

पतिव्रतका पालन होता है।

ईसाई विवाह उसी प्रकार अनहोनी बात है, जिस प्रकार ईसाई पूजा[1] ईसाई उपदेशक, ईसाई पादरी,[2] ईसाई सम्पत्ति, ईसाई सेना, ईसाई अदालत तथा ईसाई सरकार अनहोनी बातें है।

पहली तथा उसके बादकी कुछ शताब्दियोंके ईसाइयोंका भी यही मत था।

ईसाई आदर्श तो है—ईश्वर तथा अपने पड़ोसीमें प्रेम करो; ईश्वर तथा अपने पड़ोसीकी सेवाके लिए आत्माहुति कर दो। विषयोपभोग तथा विवाह तो आत्म-सेवा, अपनी सेवा है, इसलिए वह ईश्वरकी सेवा तथा मनुष्यकी सेवामें बाधक है तथा ईसाई धर्मकी दृष्टिसे वह पाप है।

विवाहसे मनुष्य तथा ईश्वरकी सेवामें कोई सहायता नहीं पहुंचती, भले ही विवाहेच्छु युवक-युवतियोंने मनुष्य-समाजकी सेवा करनेका व्रत ही क्यों न ले लिया हो। यदि इस प्रकारके युवक-युवती मनुष्य समाजकी सेवा वास्तवमें करना चाहते हैं तो उन्हें विवाह करके नये बच्चे पैदा करनेके बजाय उन लाखों बच्चोंको बचाने तथा उनका पालन-पोषण करनेका यत्न करना चाहिए, जो भोजन (आध्यात्मिक भोजन तो दूरकी बात है, शारीरिक भोजन) के अभावमें मर रहे हैं।

एक ईसाई तो तभी विवाह-बंधनमें फंस सकता है, और उसे पाप नहीं मान सकता, जब वह यह समझ ले कि दुनियामें इस समय जितने बच्चे वर्त्तमान हैं, उन्हें भरपेट अन्न मिल रहा है।

आप ईसाके उपदेशोंको माननेसे भले ही इंकार करदें—उन उपदेशों-को, जो हमारे जीवनके रग-रगमें व्याप्त हो गए हैं और जिन पर हमारा सारा नीतिशास्त्र बना है, पर यदि आप उन्हें मानते हैं, तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्शका संकेत है।

बाइबिलमें साफ-साफ शब्दोंमें लिखा है, जिसका कोई दूसरा अर्थ ही नहीं निकलता कि पुरुषको दूसरी स्त्री करनेके लिए अपनी पहली स्त्रीका

१—मैथ्यू ६, ५-१२, जॉन ४, २१। २—मैथ्यू २३, ८-१०।

तलाक नहीं देना चाहिए, बल्कि जिस स्त्रीसे उसका गठबंधन हुआ है, उसीके साथ उसको रहना चाहिए'[1]। दूसरे, किसीभी पुरुषका (अर्थात् वह पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित) स्त्रीको भोगकी वस्तु मानना पाप है[2]। तीसरे, अविवाहित पुरुषके लिए उत्तम यही है कि वह विवाह न करे, अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचारी रहे[3]।

बहुत-से लोगोंको ये विचार विचित्र तथा परस्पर विरोधी मालूम पड़ेंगे। वे परस्पर विरोधी तो नहीं हैं, पर हमारी वर्त्तमान जीवन-धाराके विरुद्ध अवश्य हैं। स्वभावतया प्रश्न उठता है कि किसे सही मानें—इन विचारोंको या अपनी वर्त्तमान जीवन-धाराको ? जिस समय मैं अपने वर्त्तमान निष्कर्षों पर पहुंच रहा था, उस समय मेरे मनमें भी यह प्रश्न जोरोंसे उठा था। उस समय मैंने सोचा भी न था कि मेरे विचार मुझे उन निष्कर्षों पर ले जायगे, जिन पर मैं आज पहुंचा हूं। मुझे अपने निष्कर्षोंने चौंका दिया। मैं उन पर विश्वास करना नहीं चाहता था, पर उन पर अविश्वास करना असंभव था। वे हमारी वर्त्तमान जीवन-धाराके चाहे कितने ही विरुद्ध हों, वे स्वयं मेरे पहलेके विचारोंके चाहे कितने ही विरुद्ध हों, पर उन्हें स्वीकार करनेके अलावा मेरे पास और कोई चारा न था।

लोग दलील करते हैं—ये तो सामान्य विचार हैं। हो सकता है कि ये ईसाके उपदेशोंके अनुसार हों। पर इन्हें तो वही मानेंगे, जिनका इनमें विश्वास हो। पर जिंदगी आखिर जिंदगी है। आपने ईसाके अप्राप्य आदर्शका संकेत कर दिया। पर आप संसारके इस सबसे ज्वलंत प्रश्नके संबंधमें मनुष्योंको केवल ईसाके अप्राप्य आदर्शका संकेत करके उन्हें बीच धारमें नहीं छोड़ सकते। इससे तो बहुत अनिष्ट होनेकी संभावना है। एक भावुक युवक शायद पहले इस आदर्शकी ओर आकर्षित होजाय। पर वह अपनी टेक निभा नहीं सकेगा, उसकी टेक बीचमें ही टूट जायगी। उस समय वह न तो कोई नियम जानता

१—मैथ्यू ५. ३१, ३२, तथा १६, ८। २—मैथ्यू ५, २८, २६
३—मैथ्यू १६. १०-१२।

होगा और न उन्हे मानेगा, बस उसका घोर अध-पतन हो जायगा।

ईसाका आदर्श दुष्प्राप्य है, अतः वह जीवनका पथ-प्रदर्शन नही कर सकता। भले ही हम उसके विषयमे लबी-चौडी बाते कर ले, उसके स्वप्न देख ले, पर वह जीवनमे व्यवहार्य नही है, अतः त्याज्य है।

हमे आदर्शकी आवश्यकता नही, अपनी सामर्थ्यके अनुसार, समाजकी सामान्य नैतिक अवस्थाके अनुकूल, मार्ग-निर्देशनकी आवश्यकता है। हमे धर्मसम्मत विवाहकी, अथवा पूर्णरूपसे धर्मसम्मत विवाह न भी सही, (मान लीजिए विवाहसे पूर्व पुरुषका अन्य स्त्रियोसे सबध रह चुका है, जैसाकि हमारे समाजमे बहुधा होता है) तो भी विवाहकी, अथवा सिविल मैरेजकी (कानूनमे स्वीकृत स्त्री-पुरुष सबधकी), अथवा तलाककी छूट सहित विवाह-विधानकी; अथवा (इसी तर्कसे) जापानियोकी भाति नियत-कालके विवाहकी, अथवा, क्या बुरा है, चकलोकी आवश्यकता है। (क्यो कि कुछ लोग कहते है कि सडको पर खुले आम पापाचारसे चकले अच्छे है)।

इस प्रकार हम देखते है कि हम यदि अपनी कमजोरियोको प्रश्रय देनेके लिए अपना आदर्श नीचा होने देते है, तो फिर वह आदर्श किस हद तक नीचे चला जायगा, इसकी कोई सीमा नही रहती।

फिर, ऊपरकी दलील शुरूसे गलत है। पहले तो यह ख्याल ही गलत है कि पूर्णताके आदर्शको सामने रखकर जीवनका मार्ग-निर्देशन नही हो सकता। दूसरे यह सोचना भी गलत है कि मैं या तो निराश होजाऊ और कहू—'मुझे इसे त्याग देना चाहिए, इसका मेरे लिए कोई उपयोग नही, मैं इस तक कभी नही पहुच सकता, या फिर मै आदर्शको नीचा करके उसे उस स्तर पर ले आऊ, जिस स्तर पर, अपनी कमजोरीके कारण, मैं रहना चाहता हू।'

यह दलील वैसी ही है, जैसे जहाजका कप्तान कहे कि मैं कपाससे निर्देशित दिशामे नही जा सकता, इसलिए मैं कम्पास फेक देता हू अथवा अब उसकी ओर नही देखूगा (अर्थात् आदर्श त्याग दू गा), अथवा वह

यह कहे कि मैं कपासकी सुई उसी दिशामे बाधे देता हूँ जिस दिशामे मेरा जहाज जारहा है (अर्थात् अपनी कमजोरियोंके अनुरूप आदर्श नीचा कर दूंगा)।

ईसाने हमारे सामने पूर्णताका जो आदर्श रखा है, वह न तो स्वप्न है और न कोई काव्यपूर्ण उपदेश। वह नीतिमय जीवन बितानेके लिए एक-मात्र सर्व-सुलभ मार्ग-निर्देशक है। जैसे जहाजके कप्तानके पास मार्ग-निर्देशनके लिए कपास होता है, वैसे ही हमारे लिए यह आदर्श है। पर कपासकी भांति इस पर भी हमारी पूर्ण आस्था होनी चाहिए।

हम चाहे जिस अवस्थामे हों, ईसाके आदर्शको सामने रखकर, यह जान सकते है कि हमे क्या करना चाहिए। परंतु इसके लिए हमे ईसाके उपदेशोमे पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए और अन्य उपदेशोंमे विश्वास न करना चाहिए जिस प्रकार जहाजका कप्तान अपने कपासमे पूर्ण श्रद्धा रखता है, अपने दाये-बाये नहीं देखता।

कंपासका व्यवहार किस प्रकार किया जाता है, जैसे यह जानना जरूरी है उसी प्रकार यह जानना भी जरूरी है कि ईसाके उपदेशोका अनुसरण कैसे करना चाहिए। इसके लिए अपनी स्थितिका सदा भान करते रहना परमावश्यक है। आदर्शकी दिशासे हम कितने हटे हुए है, इस ज्ञानसे हमे कभी भयभीत न होना चाहिए। मनुष्य चाहे जिस स्तर पर हो, वह सदा आदर्शकी ओर आगे बढ सकता है। ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जहां पहुँचकर मनुष्य कह सके कि मैंने उसे पा लिया। इसी प्रकार इससे आगे कोई मार्ग नहीं है, जहा पहुचनेकी मनुष्य आकाक्षा रख सके।

सामान्य रूपसे ईसाई आदर्शके प्रति, और विशेष रूपसे ब्रह्मचर्यके प्रति मनुष्यकी ऐसी ही वृत्ति होनी चाहिए। चाहे एक निर्दोष बालक हो या एक पवित्र-से-पवित्र व्यक्ति, या चाहे इन दोके बीच किसी सीढ़ी पर खड़ा व्यक्ति हो, यदि उसके सामने ईसाके उपदेश तथा उनका आदर्श है तो उसे तत्काल उत्तर मिल जायगा कि उसका क्या जीवन-मार्ग होना चाहिए, उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए।

'एक निर्दोष बालक या बालिकाको क्या करना चाहिए ? उसे अपनेको पवित्र तथा प्रलोभनोंसे दूर रखना चाहिए और ईश्वर तथा मनुष्यकी सेवामें अपनी सारी शक्तियाँ अर्पित कर देनेके हेतु उसे अपने विचारों तथा भावोंमें अधिकाधिक पवित्रता प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

'उस युवक अथवा युवतीको क्या करना चाहिए, जो प्रलोभनोंके शिकार बन चुके हैं, जो या तो निरुद्देश्य प्रेमकी कल्पनाओंमें लिप्त रहते हैं या किसीके प्रेमपाशमें बंध चुके हैं और इस प्रकार कुछ हद तक मनुष्य तथा ईश्वरकी सेवा करनेके अयोग्य बन चुके हैं ?'

वे भी उपर्युक्त मार्ग पर चलें, पापसे बचें (यह समझ लें कि पाप-मार्ग पर चलने पर प्रलोभन दूर नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा)। उन्हें अधिकाधिक पवित्र बननेका प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे ईश्वर तथा मनुष्यकी पूर्ण सेवा करनेके योग्य बन सकें।

'वे क्या करें, जिन्होंने प्रलोभनोंका प्रतिकार नहीं किया और पतित हो चुके हैं ?'

उन्हें अपना पतन उचित आनंदोपभोग न मानना चाहिए। जैसा कि आजकल विवाह-संस्कार हो जाने पर माना जाता है। उन्हें अपना पतन एक ऐसा सुख भी न मानना चाहिए, जिसका उपभोग जब-तब दूसरोंके साथ किया जा सकता है। यदि उनका संबंध अपनेसे नीचे दर्जेके किसी स्त्री या पुरुषसे और बिना विवाह-संस्कारके हुआ हो, तो उन्हें इससे क्लेश न करना चाहिए, बल्कि अपने प्रथम पतनको ही सच्चा और अटूट विवाह-बंधन मान लेना चाहिए।

इस प्रकार विवाह-बंधनमें बंध जाने, और उसके फल-स्वरूप संतानोत्पत्ति होनेसे स्त्री-पुरुषकी ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी सेवा करनेकी क्षमता सीमित हो जाती है। विवाहसे पूर्व वे प्रत्यक्ष रूपसे तथा नाना प्रकारसे ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी सेवा कर सकते थे, परंतु विवाह-बंधनमें बंध जानेसे उनका क्षेत्र सीमित हो जाता है। उन्हें चाहिए कि

वे अपने बच्चोका उचित रीतिसे पालन-पोषण करे तथा उन्हे उपयुक्त शिक्षा दे, जिससे वे वयस्क होने पर ईश्वर तथा मनुष्य-समाजके सेवक बन सके।

'वे दपति क्या करे जो अपने बच्चोका पालन-पोषण कर तथा उन्हे शिक्षा देकर ईश्वर तथा मनुष्य-समाजकी परिमित सेवा कर रहे है?'

उनके लिए भी वही मार्ग है, जो पहले बता चुका हू। उन्हे प्रलोभनोसे मुक्त होनेकी चेष्टा करनी चाहिए, अपनेको पवित्र बनानेका यत्न करना चाहिए तथा वैषयिक प्रेमको शुद्ध भाई-बहनके प्रेममे बदलकर पापसे बचना चाहिए, और इस प्रकार ईश्वर तथा मनुष्य समाजकी सेवा करनेके मार्गमे जो सबसे बडी बाधा है, वह दूर कर देनी चाहिए।

इसलिए यह कहना सच नही है कि हम ईसाके आदर्शों पर नही चल सकते, क्योकि वह बहुत ऊचा, पूर्ण तथा अप्राप्य है। हम उस पर इसलिए नही चल पाते कि हम अपनेसे झूठ बोलते है, अपनेको धोखा देते हैं। जब हम यह कहते हैं कि हमे ईसाके आदर्शकी अपेक्षा अधिक व्यावहारिक नियमोपनियम चाहिएं, तो वास्तवमे हमारे कहनेका यह तात्पर्य नही होता कि ईसाका आदर्श बहुत ऊचा है—क्योकि हम यदि इन आदर्शों पर न चलेगे तो हम पापके गढेमे गिर जायगे, हमारे कहनेका असली अर्थ यह होता है कि हम इन आदर्शोंमे विश्वास नही करते और उनके अनुसार आचरण नही करना चाहते।

जब हम यह कहते है कि एक बार पतन होने पर मनुष्य पापके गढेसे फिर निकल नही पाता, तो उससे यह ध्वनि निकलती है कि हमने पहलेसे धारणा बाध ली है कि अपनेसे निम्न-वर्गके साथ सबंध स्थापित हो जाना पाप नही, बल्कि मनोरजनका एक साधन है और हमारे लिए विवाह करके उस पापको धोना जरूरी नही। इसके विपरीत यदि हम यह समझते कि इस प्रकारका पतन पाप है और उसका एक-मात्र प्रायश्चित्त अटूट विवाह-बधनमे बध जाना तथा इसके फलस्वरूप जो सताने उत्पन्न हो, उन्हे शिक्षादि देकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना है तो हम अपने

पतनको पापरत होनेका कारण कभी न बनने देते।

मान लीजिए, एक किसान बीज बोना सीखना चाहता है। वह खेतको बुरी तरह बोता है और उसे छोड़ देता है। इसी प्रकार वह दूसरे खेतको और तीसरे खेतको भी बुरी तरह बो कर छोड़ देता है। अब यदि वह यह समझता है कि उसने जिस तरह खेत बोया है, वही खेत बोनेकी सफल रीति है तो वह जमीन और बीज, दोनोका नुकसान करेगा। इसके अलावा वह कभी ठीक तरहसे खेत बोना भी सीख नहीं सकेगा। ब्रह्मचर्यको ही आदर्श मानो और पतन होने पर, चाहे जिस व्यक्तिके साथ पतन हुआ हो, उसीके साथ आजीवन विवाह-सबध स्थापित कर लो, और तब तुम्हे स्पष्ट हो जायगा कि ईसाने जो मार्ग-निर्देशन किया है, वह केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि एक-मात्र जीवन-मार्ग है।

लोग कहते है, 'मनुष्य अपूर्ण है, उससे उसकी सामर्थ्यके अनुसार काम करनेको कहना चाहिए।' यह तर्क ऐसा है जैसे कोई कहे, 'मेरा हाथ कमजोर होनेकी वजहसे मैं सीधी रेखा नहीं खीच सकता, अतः सीधी रेखा खीचनेके लिए मैं टेढी-मेढी रेखाका नमूना अपने सामने रखूगा।'

मेरा हाथ जितना ही कमजोर हो, उतना ही आदर्श नमूना मेरे सामने होना आवश्यक है।

ईसाकी शिक्षाओसे हम अवगत है, अतः हमे अज्ञानी बन कर उनके आदर्शके स्थान पर बाहरी नियमोकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए। ईसाई-आदर्श मनुष्य-जातिको इसीलिए प्रकट किया गया है कि उसकी विकासकी वर्तमान अवस्थामे वही उसका मार्ग-निर्देशन कर सकता है। मनुष्य-जाति अब बाहरी धार्मिक नियमोके युगसे बहुत आगे बढ आई है, अब कोई भी बाहरी नियमोमे विश्वास नहीं करता।

ईसाई शिक्षा ही मनुष्य-जातिका मार्ग-निर्देशन कर सकती है। हम ईसाके आदर्शके स्थान पर बाहरी नियमोकी प्रतिष्ठा नहीं कर सकते, और हमे ऐसा करना भी नहीं चाहिए। हमे इस आदर्शको अपने शुद्ध

रूपमे सदा अपने सामने रखना चाहिए, और उसमे श्रद्धा रखनी चाहिए।

जब तक जहाज किनारे पर रहता है, तब तक तो यह आदेश दिया जा सकता है कि 'अमुक चट्टानसे बचे रहना, 'अमुक मार्गसे जाना 'अमुक मीनारको लक्ष्यमे रखना ' पर जब जहाज किनारा छोड़कर बीच समुद्रमे पहुच जाता है, तब तो कप्तानको सुदूरवर्ती नक्षत्रो तथा अपने कंपासको ही देखकर अपना रास्ता ढूढना पड़ता है। हमारे पास दोनो साधन मौजूद है।

: ७ :

डायना

मुझे 'क्रूजर सोनाटा तथा उसके 'परिशिष्ट के संबंधमे अनेक पत्र मिले है। इससे पता चलता है कि स्त्री-पुरुष संबधके प्रचलित दृष्टिकोण-ने सुधारकी आवश्यकता मैं ही नहीं, बल्कि कितने ही विचारशील स्त्री-पुरुष अनुभव करते हैं। उनकी आवाज इसलिए नहीं सुनाई पड़ती कि वह परम्परागत रूढियोंका जोर-शोरसे समर्थन करने वालोके शोरगुलमे डूब जती है। मुझे जो पत्र मिले हैं, उनमें एक पत्र ७ अक्टूबर १८६०को आया है, इस पत्रके साथ एक छोटी-सी पुस्तिका 'डायना भी है। पत्र इस प्रकार है—हम आपको 'डायना नामकी एक छोटी-सी पुस्तिका भेज रहे हैं। यह मनोविज्ञान तथा शरीर-विज्ञानकी दृष्टि-से स्त्री-पुरुष संबध पर लिखा गया एक छोटा-सा निबंध है। आपकी क्रूजर सोनाटा कहानी अमेरिकामे छपनेके बाद कई लोगोने कहा है कि 'डायना टाल्सटायके बारे सिद्धांतोंका खुलासा कर देती है। अत. हम आपकी सेवामें यह पुस्तिका अपनी ओरसे भेज रहे हैं, जिससे आप स्वय इसका निर्णय कर सके। परमात्मासे हमारी प्रार्थना है कि आपकी मनो-कामनाएं पूर्ण हो। भवदीय (हस्ताक्षर), बर्न्स कम्पनी न्यूयार्क।

इससे पहले मुझे फ्रांससे श्रीमती एंजेल फ्रास्वायसका पत्र और उनकी पुस्तिका मिली थी। उन्होने अपने पत्रमें सूचित किया है कि स्त्री-पुरुषके संबधोंमे पवित्रता लानेके उद्देश्यसे दो संस्थाए काम कर रही हैं, एक इंग्लैंडमे और दूसरी फ्रांसमें। श्रीमती एंजेलकी पुस्तिकामें भी वही

विचार व्यक्त किये गए है जो 'डायना' मे है, पर वे कुछ अस्पष्ट तथा रहस्यवादी ढगसे व्यक्त हुए है।

'डायना मे जो विचार व्यक्त किये गए हैं, वे ईसाई शिक्षाओ पर नहीं, बल्कि गैर-ईसाई शिक्षाओ पर आधारित है। फिर भी वे अत्यत नवीन तथा मनोरजक है। उनमे सिद्ध किया गया है कि हमारे समाजमे विवाहित तथा अविवाहित स्त्री-पुरुषोंमें जो दुराचार फैला है वह अत्यत अविवेकपूर्ण है। मैं पाठकोंके लाभार्थ इन विचारोंको नीचे देता हू।

पुस्तिका पर आदर्श वाक्य, 'और उन दोनोका शरीर एक होगा' दिया है। पुस्तिकाका सार इस प्रकार है.—

स्त्री और पुरुषमे केवल शारीरिक भेद ही नहीं, अन्य भेद भी है। उनमे अलग-अलग नैतिक गुण होते है, पुरुषोमे ये पुरुषत्व तथा स्त्रियोमे स्त्रीत्व कहे जाते हैं। स्त्री और पुरुष केवल शारीरिक समिलनकी इच्छासे ही नहीं, बल्कि इन भिन्न-भिन्न गुणोके कारण भी एक-दूसरेकी ओर आकर्षित होते हैं। स्त्रियोका स्त्रीत्व तथा पुरुषोका पुरुषत्व, दोनोको एक-दूसरेकी ओर आकर्षित करता है। दोनो एक-दूसरे को पाकर पूर्ण होते हैं। अतः स्त्री-पुरुषका परस्पर आकर्षण उन्हे आध्यात्मिक तथा शारीरिक, दोनो प्रकारके समिलनके लिए उत्प्रेरित करता है। दोनो प्रकारके समिलन एक ही शक्तिके दो अग है और एक-दूसरेमे इतने सबद्ध है कि एक अग-की तृप्तिसे दूसरे अगकी तृप्तिकी कामना नहीं रह जाती। यदि आध्यात्मिक समिलनकी कामना पूर्ण होती रहती है तो शारीरिक समिलनकी कामना या तो धीमी पड़जाती है या एकदम बुझ जाती है। इसी प्रकार शारीरिक समिलनकी कामना प्रबल होने पर आध्यात्मिक समिलनकी कामना या तो कमजोर पड़ जाती है या नष्ट होजाती है। अत. स्त्री-पुरुषका आकर्षण केवल शारीरिक ही नहीं होता, वह दोनो प्रकारका होता है—आध्यात्मिक और शारीरिक। दोनोमे पूर्णतया आध्यात्मिक सबध भी हो सकता है, और पूर्णतया शारीरिक भी, जिसमे बच्चे पैदा करना ही उनका काम रह जाता है। इसके अलावा उनके सबधको इन दोनोंके बीचकी कई

अवस्थाएं भी हो सकती है। स्त्री और पुरुष इन दो सबधोमे किस सबधको बढायगे और किसे घटायेगे, यह इस पर निर्भर करता है कि वे किस प्रकारके सबधको उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वाछनीय समझते है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है, जहा सगाई होजानेके बाद भी युवक-युवतियोका सयोग वाछनीय नहीं माना जाता, अतः उन्हे यदि सगाई होनेके बाद सालो एक कमरेमे रखा जाय तो भी वे ब्रह्मचर्यका पालन करेगे। इससे प्रकट होता है कि स्त्री-पुरुषका सबध कहा तक उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वाछनीय माने जाने वाले विचारोसे नियामित होता है।

स्त्री और पुरुष इस सबधसे पूर्णतया सतुष्ट रहते हैं, जिसे वे उत्तम, धर्मपूर्ण तथा वाछनीय मानते है, जो बहुत-कुछ उनके व्यक्तिगत विचारो पर निर्भर करता है। पर यदि हम व्यक्तिगत विचारोको छोड दे और यह प्रश्न करें कि क्या स्त्री-पुरुषोके सबधोकी कोई ऐसी अवस्था है, जो उन्हे अधिक सतोष प्रदान करती है वह कौन-सी अवस्था है, आध्यात्मिक या शारीरिक ? तो हम स्पष्ट तथा निश्चित रूपसे उत्तर दे सकते है (यद्यपि यह उत्तर समाजमे प्रचलित धारणाओका खडन करता है) कि स्त्री-पुरुषका सबध जितना ही शारीरिक होता है, उतनी ही इच्छाएं बढती जाती हैं और सतोप-लाभ नहीं होता।

इसके विपरीत हमारा सबध जितना ही आध्यात्मिक होता है, हमारी इच्छाए उतनी ही कम होती हैं और हमे सतोष-लाभ होता है। पारस्परिक सबध जितना ही शारीरिक होता है, उतना ही अधिक जीवन-शक्तिका क्षय होता है, तथा पारस्परिक सबध जितना ही अधिक आध्यात्मिक होता है, उतना ही अधिक जीवनमे शाति, सुख तथा बल मिलता है।

पुस्तिकाके लेखकने स्त्री-पुरुषका 'एक शरीर' होजाना, अटूट विवाह-बधनमे बध जाना,' उच्चतम जीवनके विकासके लिए आवश्यक माना है। लेखकके अनुसार स्त्री-पुरुषोके लिए प्रौढ होने पर विवाह एक प्राकृतिक तथा वाछनीय अवस्था है तथा यह आवश्यक नहीं कि वह केवल शारीरिक समिलन ही हो वह पूर्णतया आध्यात्मिक संमिलन भी हो सकता

है। स्त्री-पुरुषकी वृत्ति तथा उनके धर्म-अधर्म, वाञ्छनीय-अवाञ्छनीयके विवेकके अनुसार उनका संबंध आध्यात्मिक अथवा शारीरिक होता है, परन्तु यह सिद्ध है कि उनका संबंध जितना आध्यात्मिक होता है, उतना ही उन्हें संतोष-लाभ होता है।

चूंकि लेखकने यह माना है कि स्त्री-पुरुषके आकर्षणकी परिणति आध्यात्मिक संबंध—प्रेम अथवा शारीरिक संबंध—काम, दोनोंमें हो सकती है और वे अपनी इच्छानुसार अपने संबंधोंको एक क्षेत्रसे हटा कर दूसरे क्षेत्रमें लेजानेकी क्षमता रखते हैं, अतः उसने स्वीकार किया है कि ब्रह्मचर्य असंभव नहीं है। इतना ही नहीं, उसने यह भी कहा है कि स्त्री-पुरुषोंके लिए विवाहसे पहले और बादमें ब्रह्मचर्य पालना शरीरके लिए श्रेयस्कर होता है।

लेखक ने अपने कथनोंके प्रमाणमें अनेक दृष्टांत दिये हैं, शरीर-विज्ञानका वर्णन किया है तथा बताया है कि मैथुनसे शरीरमें क्या-क्या प्रतिक्रियाएं होती हैं तथा किस प्रकार वृत्तियोंको प्रेम अथवा कामकी ओर मोड़ा जा सकता है। अपने विचारोंकी पुष्टिमें उसने हर्बर्ट स्पेंसरके इन शब्दोंको उद्धृत किया है—'यदि कोई नियम मानव-जातिके लिए कल्याण-कर होता है तो मानव-स्वभाव अपनेको उसके अनुकूल बना लेता है, जिससे उस नियमका पालन मनुष्यके लिए आनंददायक होजाता है' तथा लिखा है—इसलिए हमें वर्तमान प्रचलित रूढियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, हमें तो उस अवस्थाका विचार करना चाहिए, जो मनुष्य-को अपने उज्ज्वल भविष्यमें प्राप्त करनी चाहिए।

लेखकने अपने समस्त विचारोंका सार इस प्रकार दिया है—'डायना'-में मूल-रूपमें दिखाया गया है कि स्त्री-पुरुषमें दो प्रकारका संबंध हो सकता है, एक तो वैषयिक, दूसरा प्रेममय। यदि संततिकी इच्छा न हो तो उन्हें अपनी वृत्तियां सात्विक प्रेम संबंधकी ओर मोड़नी चाहिए। इसके लिए उन्हें अपने विचार भी तदनुकूल बना लेने चाहिए तथा अपनी आदतें भी वैसी ही डालनी चाहिए। इस प्रकार अनेक कष्टोंसे मुक्ति

पा जायगे तथा सतोष-लाभ करेगे।

पुस्तिकाके अतमे माता-पिताओके नाम एलिजा वर्न्सका एक पत्र छपा है। इस पत्रमे गोपनीय विषयोका उल्लेख है। इसका सभवत उन युवको पर अच्छा प्रभाव पडेगा जो असयम तथा व्यभिचारमे पड कर नाना दुख भोग रहे है। अत' इस पत्रका ऐसे युवकोमे, जो अपनी सर्वोत्तम शक्तियोका क्षय कर रहे है, तथा गरीब लडको व स्कूलो, कालिजोमे प्रचार करना मगलकारी होगा।

: ३

चयनिका'

विषयोपभोगके सबधमे मै अपने विचार 'क्रूजर सोनाटाके उपसहार मे व्यक्त कर चुका हूं। इस सारे प्रश्नका उत्तरएक वाक्यमे दिया जासकता है—मनुष्यको सदा, वह चाहे विवाहित हो या अविवाहित, ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करना चाहिए, जैसाकि ईसाने और उनके बाद पालने उपदेश किया है। यदि वह पूर्ण ब्रह्मचर्यका (स्त्री-संगसे सदा दूर रहना) पालन न कर सके, तो भी उसे यही अपना सर्वोपरि ध्येय बनाना चाहिए। यदि वह सयम न रख सके तो उसे यथासभव कम-से कम अपनी इस कमजोरीमे प्रवृत्त होना चाहिए और विषयोपभोगको कभी आनददायी न मानना चाहिए। मेरे विचारसे सभी विचारशील व्यक्ति इस प्रश्न पर विचार करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुचेगे तथा वे इस सबधमे एकमत हैं।

स्वतंत्र-प्रेम

'एडल्ट (प्रौढ)के सपादकने स्वतंत्र प्रेमके संबधमे एक पत्र भेजा है। यदि मुझे समय मिला तो मैं इस पर लिखना चाहूगा। शायद मैं लिखूगा। सबसे अधिक यह इंगित करना है कि सारा जोर अपने कार्योंके परिणाम पर विचार किये बिना अधिक-से-अधिक आनद-लाभ करने पर दिया जाता है। इसके अलावा वे ऐसी बातोका प्रचार करते हैं, जो प्रचलित हैं और बहुत बुरी हैं। अंकुश न रहने पर अवस्था-

१—पत्रों तथा डायरियों आदिसे सकलित।

मे सुधार कैसे हो सकता है ? मैं सभी प्रकारकी कानूनी-बंदिशोंके विरुद्ध हूं, तथा पूर्ण स्वाधीनताके पक्षमे हू, पर हमारा ध्येय ब्रह्मचर्य होना चाहिए, आनद-लाभ नहीं ।

आध्यात्मिकता कामुलम्मा

विषयोपभोगसे, प्रेमसे सारी बुराइया इसीलिए उत्पन्न होती है कि हम विषयवासनाको आध्यात्मिक सुखसे, सात्विक प्रेमसे मिला देते है । हम वासनाओंकी निंदा करके उन पर अकुश लगानेकी चेष्टा नहीं करते, इसके विपरीत हम उनपर आध्यात्मिकताका मुलम्मा चढ़ानेका प्रयत्न करते है ।

स्त्री-पुरुषके आकर्षणका कारण

इसी रीतिसे दोनो विचारोंका सामजस्य होता है । स्त्री-पुरुषके आकर्षणका समस्त कारण विषयेच्छा पर थोपना बड़ा पदार्थवादी दृष्टिकोण मालूम पडता है, पर वस्तुतः वह अत्यत आध्यात्मिक दृष्टिकोण है । जो बाते आध्यात्मिक क्षेत्रकी नहीं है, उन्हे उस क्षेत्रसे हटा देने पर ही उसका महत्व पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है ।

हमारी शिकायत

हमारे नाना दु.खोंका कारण विषय-वासना है, पर उसकी निंदा करने, उसपर अकुश लगानेके बजाय, हम उसे हर प्रकारसे उभाडनेकी चेष्टा करते है । इसके बाद हम शिकायत करते है कि हम दुख भोगते है ।

व्यभिचारी पुरुष

व्यभिचारी स्त्री-पुरुषोमे, शराबियोंकी भाति, एक बेचैनी, एक जिज्ञासा, नित नूतनताकी एक इच्छा होती है, जो अनेकोंसे सबध करनेके कारण उत्पन्न होती है । एक व्यभिचारी व्यक्ति सयम कर सकता है, परतु उसकी स्थिति शराबी जैसी होती है, सयमकी लगाम जरा ढीली होते ही वह फिर व्यभिचारके गढेमे गिर पडता है ।

प्रलोभनोंसे सघर्ष

प्रलोभनोंके विरुद्ध सघर्षमे, विजय प्राप्त करनेका विचार पहलेसे ही अपने सामने रख लेने पर, हम कमजोर पड जाते हैं। हम पहलेसे ही विजय

प्राप्त करनेके विचारसे अपना पग आगे बढाते है। हम अपनी सामर्थ्यसे बाहरका काम अपने लिए नियत कर लेते है जिसे पूरा कर पाना या न कर पाना हमारे हाथमे नही है। सन्यासियोकी भाति हम पहलेसे ही अपने मनमें कहते है, मैं ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा करता हू। यहा ब्रह्मचारी रहनेका अर्थ बाह्य ब्रह्मचर्य पालनसे होता है। और यह असभव है, क्योकि एक तो हम पहलेसे कल्पना नही कर सकते कि हमे किन-किन अवस्थाओं-से होकर गुजरना पडेगा, हमारे जीवनमे ऐसी अवस्था भी आ सकती है जब हम प्रलोभनोका प्रतिकार न कर सके। दूसरे यह गलत रास्ता है, क्योकि इस प्रकार हम अपने लक्ष्य, पूर्ण ब्रह्मचर्यकी ओर नही बढ पाते, बल्कि उल्टी दिशामे जाते है।

बाह्य ब्रह्मचर्य पालन अपना लक्ष्य बना लेने पर, मनुष्य या तो संन्यासियोकी भाति ससार त्याग देते है और स्त्रियोसे दूर भागते हैं, या अपना अगभग कर डालते है और सबसे मुख्य बातको—ससारमे प्रलोभनो-के विरुद्ध जो आतरिक विचार-संघर्ष चलता है, उसे आखोसे ओट कर देते है। यह ऐसा ही हुआ, जैसे कोई सैनिक कहे कि मैं युद्धमे इसी शर्त पर उतरूगा कि मैं सदा विजयी रहूं। ऐसा सैनिक सदा वास्तविक शत्रुओं-से बचेगा और काल्पनिक शत्रुओसे लडेगा। वह युद्ध करना नही सीख सकेगा और सदा विफल होता रहेगा।

इसके अलावा, बाह्य-ब्रह्मचर्यका लक्ष्य अपने सामने रख लेना और यह सोचना कि इससे पूर्ण ब्रह्मचारी बननेमें सहायता मिलेगी, अनिष्ट-कारी होता है, क्योकि प्रलोभनोका सामना पग-पग पर रहता है और पतन होने पर निराशा आ घेरती है और कभी-कभी अपने लक्ष्य पर ही सदेह होने लगता है। ऐसा मनुष्य सोचने लगता है—'ब्रह्मचारी बनना असभव है, मैने अपने सामने गलत लक्ष्य रखा।' और वह एकदम व्यभिचारके गड्ढेमे गिर पडता है। यह ऐसा ही हुआ; जैसे कोई योद्धा टोना बाधकर चले और सोचे कि यह टोना मृत्यु या आघातसे मेरी रक्षा करेगा। इसके बाद जरा-सा आघात या खरोचा लगते ही वह अपना

पुरुषार्थ खो बैठता है और मैदानसे भाग खड़ा होता है। मनुष्यका लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह अपने चरित्र, अपने स्वभाव तथा अपने अतीत व वर्तमान अवस्थाके अनुकूल अधिकसे-अधिक ब्रह्मचर्यकी साधना करे। यह साधना मनुष्योंके सामने नहीं, बल्कि ईश्वरको साक्षी रखकर करनी चाहिए, क्योंकि मनुष्योंको पता नहीं रहता कि हमें कितना सघर्ष करना पड रहा है। ऐसा करने पर कोई भी बाधा हमारी प्रगति नहीं रोक पाती, प्रलोभन हमारा कुछ बिगाड नहीं पाते और हम बराबर अपने अनत लक्ष्यकी ओर—पाशविकता त्याग कर ईश्वरकी ओर बढते जाते हैं।

ईसाई शिक्षामें विवाहका विधान नहीं

ईसाई शिक्षामे जीवनकी व्याख्या नहीं की गई है, केवल आदर्शकी दिशाका सकेत किया गया है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष सबधके बारेमे भी। पर ईसाई शिक्षाको हृदयगम न करने वाले लोग व्याख्याए ढूढते हैं। ऐसे ही लोगोंके लिए पादरियोंने विवाहका विधान खडाकर दिया है, ईसाई शिक्षामे विवाहका विधान नहीं है। चाहे स्त्री-पुरुष संबधका प्रश्न हो, चाहे हिंसा, क्रोध आदिके अन्य प्रश्न, हमे अपना आदर्श कभी नीचा नहीं करना चाहिए, उसे कभी मलिन नहीं होने देना चाहिए। परन्तु पादरियोंने विवाहके सबंधमे ऐसा ही किया है।

ब्रह्मचर्य और विवाह

ईसाई धर्मका मर्म न समझनेके कारण, मनुष्योंको बहुधा ईसाई और गैर-ईसाईमे बाट दिया जाता है। सबसे मोटा श्रेणी-विभाजन बपतिस्मा पाये हुए लोगोंको ईसाई पुकारना है। जो लोग ईसाकी शिक्षाओंके अनुसार शुद्ध पारिवारिक जीवन बिता रहे हो, तथा हत्या आदि जघन्य पापोंके दोषी न हो, उन्हे ईसाई मानना तथा इसके विरुद्ध जीवन बिताने वालोंको ईसाई न मानना, यह श्रेणी-विभाजन यद्यपि कम स्थूल है, फिर भी गलत है। ईसाई धर्ममे ईसाई और गैर-ईसाईके बीच कोई विभाजन-रेखा नहीं है। एक ओर प्रकाश है, पूर्ण आदर्श है, ईसाका मार्ग है, दूसरी ओर अधकार है, पाशविकता है। और इन

दोनो मार्गोंके बीच, ईसाका नाम लेकर ईसाके मार्ग पर बढो।

इसी प्रकार स्त्री-पुरुष सम्बधमे, आदर्श पूर्ण ब्रह्मचर्य है। एक ईश्वर-भक्तमे विवाह करनेकी इच्छा उसी प्रकार नही होगी, जिस प्रकार उसमे शराब पीनेकी इच्छा न होगी। पर ब्रह्मचर्यकी कई सीढिया है। विवाह करे या न करे जो लोग इस प्रश्नका उत्तर चाहते है उनसे यही कहा जा सकता है—यदि तुम्हे ब्रह्मचर्यका आदर्श नही दिखाई पडता तो कभी घुटने मत टेको तुम विवाहके विकार पूर्ण मार्गसे ब्रह्मचर्यकी ओर बढो (चाहे तुम उसे जानो नही)। जैसे, मै यदि लबा हूं और मुझे अपने सामने ऊची इमारत दिखाई पडती है, पर मेरा साथी नाटा है और उसे वह इमारत नही दिखाई पडती तो मुझे चाहिए कि मैं उस मार्ग-से उसे कोई नीची इमारत दिखा दू। इसी प्रकार जो लोग ब्रह्मचर्यके आदर्शको नही देख पाते उन्हे उसके मार्गमे विवाहके नीचे आदर्शका सकेत कर देना चाहिए। किन्तु हम-आप यह कर ले, पर ईसाने हमारे सामने ब्रह्मचर्यका ही आदर्श रखा है।

संघर्ष ही जीवन-सार है

सघर्ष ही जीवन है, उसीमे जीवनका सार है। विश्राम कही नही है। आदर्श सदा सामने है और जब तक—मैं यह नही कहूंगा कि जब तक मैं उसे प्राप्त नही कर लेता—बल्कि जब तक मैं उसकी तरफ बढता नही रहता, मुझे चैन नही मिलता।

उदाहरणके लिए ब्रह्मचर्यके आदर्शको लीजिए। जो इस आदर्शकी ओर बढ रहा है, उसे केवल इतनेसे सतोष नहीं होगा कि उसने कुछ समयके लिए सयम करके अपनी इद्रियोका दमन कर लिया, जैसे अपने आसपासके भूखोको खिला कर आर्थिक क्षेत्रमे संतोष नहीं प्राप्त किया जा सकता। सतोष तभी प्राप्त होगा, जब आदर्श पूर्ण रूपमे सामने हो, उसी पूर्ण रूपसे अपनी कमजोरियोका ज्ञान तथा आदर्शसे अपनी दूरीका ज्ञान हो तथा उसकी तरफ बढनेका प्रयत्न हो। तभी सतोष हो सकता है। उस अवस्थामें सतोष नही हो सकता कि हम अपनी आखे बंद कर

ले और आदर्शमे तथा हमारे जीवनमे कितना अंतर है, इस पर दृष्टिपात न करे।

विकारी-भावोंपर विजय प्राप्त करनेके उपाय

वासनाओसे सघर्ष सबसे कठिन सघर्ष है, बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्थाको छोडकर, अन्य किसी अवस्थामे मनुष्यको इस सघर्पसे छुटकारा नही मिलता। अतः हमे सघर्पसे निराश नही होना चाहिए और न यह आशा करनी चाहिए कि ऐसी कोई अवस्था प्रात हो सकती है जब सघर्पसे मुक्ति मिले। हमे एक क्षणकेलिए भी कमजोर नही पडना चाहिए, तथा विकारी भावो पर विजय प्रात करनेके लिए सभी उपाय काममे लाने चाहिए, शरीर तथा मनको उत्तेजन देनेवाली वस्तुओसे बचना चाहिए, तथा अपनेको हर समय काममे लगाये रहना चाहिए। यह एक उपाय हुआ। दूसरा उपाय यह है कि यदि तुम विकारो पर विजय नहीं पा सकते तो विवाह कर लो। ऐसी स्त्री चुन लो जो तुमसे विवाह करनेको राजी हो और इसके बाद प्रतिज्ञा कर लो कि मैं यदि अपने विकारोका शमन नही कर सका तो केवल इसी स्त्रीके साथ पाप करूगा तथा यदि बच्चे हुए तो उनको शिक्षा दूंगा, तथा अपनी स्त्रीके सहयोगसे ब्रह्मचर्य का पालन करनेका यत्न करूगा। जितनी जल्दी ब्रह्मचर्यका पालन आरभ किया जा सके, उतना अच्छा है। और कोई दूसरा उपाय नही है। इन उपायोसे सफलता प्रात करनेके लिए आवश्यक है कि हम ईश्वरसे अपना सबध बढाये—हम बराबर याद रखे कि हम उसीके पाससे आये है और उसीके पास लौट जायगे, तथा इस जीवनका उद्देश्य तथा अर्थ उसकी इच्छाए पूरी करना है।

जितना ही तुम उसे याद करोगे, उतना ही वह तुम्हारी सहायता करेगा।

एक बात और। यदि तुम्हारा पतन हो जाय तो निराश मत हो। यह मत सोचो कि तुम्हारा नाश होगया—अब तुम्हे अपनी रक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं, अब तुम अपनेको पतनके गढेमे गिरने दे सकते हो। इसके विपरीत, यदि तुम्हारा पतन हो जाय, तो तुम्हे दूने उत्साहसे विकारो

पर विजय प्राप्त करनेका जीवन-संघर्ष आरंभ करना चाहिए।

काम-ज्वर

कामज्वरसे मतिभ्रम उत्पन्न होता है, अथवा मति भ्रष्ट हो जाती है। सारा संसार अंधकारमय हो जाता है। मनुष्य खो जाता है। अंधकार और विफलता ही नजर आती है।

तुमने काम-ज्वरसे पीड़ित होकर बहुत दुख उठाये हैं, विशेष रीतिसे उस समय जब तुमने अपनेको कामके हाथ पूरी तौर सौंप दिया। मैं जानता हूं कि वह किस प्रकार सब वस्तुओं पर छा जाता है, कुछ कालकेलिए हृदय और बुद्धि नष्ट कर देता है। परंतु इससे मुक्ति पानेका एक उपाय यह है कि तुम अपने मनमें समझ लो कि यह एक सपना है, माया-मरीचिका है, जो भंग हो जायगी और तुम पुनः अपना सच्चा स्वरूप जान लोगे। काम-ज्वरसे पीड़ित होनेके समय भी तुम ऐसा भान कर सकते हो। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे।

उद्बोधन

तुझे भूलना नहीं चाहिए कि तू कभी पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं रहा और न रहेगा पर तू कुछ हद तक ब्रह्मचर्य की तरफ बढ़ सकता है। और इसमें तुझे कभी निराश नहीं होना चाहिए। प्रलोभनके समय, पतनके समय भी अपने ईप्सित लक्ष्यका ध्यान रख तथा अपने मनमें सोच-'मेरा पतन हो रहा है, मैं पतनसे घृणा करता हूं और मैं जानता हूं कि यदि अभी नहीं तो बादमें विजय मेरी होगी'।

लक्ष्य स्थिर करनेमें गलती

मनुष्यको पूर्ण ब्रह्मचर्यका नहीं, वरन पूर्ण ब्रह्मचर्यकेलिए यत्न करनेका लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए। एक जीवित मनुष्य सच्चे अर्थोंमें पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं बन सकता। वह केवल ब्रह्मचारी बननेका यत्न कर सकता है क्योंकि उसमें काम-विकार हैं। यदि मनुष्यमें काम-विकार न होते तो उसके लिए ब्रह्मचारी बननेकी आवश्यकता भी न होती और ब्रह्मचर्यकी कल्पना भी न की जाती। हमसे गलती यह हो जाया करती

है कि हम बहुधा अपना लक्ष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यके लिए यत्न करना (जीवन-की परिस्थितियोंमें विकारों पर विजय प्राप्त करने तथा अधिक पवित्र बननेकी आवश्यकता अनुभव करना) नहीं, बल्कि पूर्ण ब्रह्मचर्य (बाह्य ब्रह्मचर्य) निर्धारित कर लेते हैं।

यह गलती बहुत बड़ी है। जो मनुष्य बाह्य ब्रह्मचर्य अपना लक्ष्य बना लेता है, उसके लिए पथभ्रष्ट होने पर, सब कुछ नष्ट होजाता है और बहुधा उसकी गति, उसका आगेका जीवन अवरुद्ध होजाता है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यके लिए यत्न करना अपना लक्ष्य बनाता है, उसका पतन कभी नहीं होता, उसकी गति कभी नहीं रुकती, प्रलोभनोंका शिकार होने तथा पतन होने पर वह ब्रह्मचर्यकेलिए यत्न करना त्याग नहीं देता, बल्कि दूने उत्साहसे यत्न आरंभ करता है।

प्रेम

जब तक मनुष्य अपने सुखके अलावा और कोई रस नहीं जानता, तब तक 'प्रेम'को वह जीवनमें एक कदम आगे बढ़ना मानता है, पर यदि उसने ईश्वर-प्रेम, मानव-प्रेमका रस चखा है, वह ईसाई बन चुका है, तो इस ऊंची मनःस्थिति पर पहुँच कर, उसके मनमें 'प्रेम'से मुक्ति पानेकी इच्छा होने लगती है। आप इस ईसाई, मानव-प्रेमसे संतुष्ट क्यों नहीं रहते? इसलिए आप क्षमा करें, आपने उसके प्रेमसे अपनेको पवित्र बनानेकी शक्ति मिलनेकी जो बात लिखी है, वह उस स्त्रीका अपमान है। प्रत्येक मनुष्यको, विशेष रीतिसे एक ईसाईको शारीरिक प्रभाव नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रभाव डालनेकी कामना करनी चाहिए। आपको अपनी पवित्रताकी रक्षा अपनी शक्तिसे करनी चाहिए तथा उसे अपना निःस्वार्थ-प्रेम अर्पित करना चाहिए। ईश्वरके स्थान पर मनुष्यकी प्रतिष्ठा मत करो। ईश्वर आपको आप जितनी आशा करते हैं, उससे बहुत अधिक देगा, और उसका प्रेम भी आपको प्रदान करेगा।

आप लिखते हैं कि मुझे अपने प्रेमसे उसकी रक्षा करनी चाहिए। मेरी समझमें नहीं आया—'किस चीजसे रक्षा? और आप क्यों और

किसलिए उस पर दया करते है ? हमसे बहुधा गलती होती है कि हम नये ढगसे विवाह करना चाहते है। जैसा कि ईसाने कहा है और पालने उसका समर्थन किया है और हमारी बुद्धि भी उसका समर्थन करती है— 'जो उसे पानेको सामर्थ्य रखता है, उसे उसको पाना चाहिए, और जो उसे पानेकी सामर्थ्य नहीं रखता उसे विवाह कर लेना चाहिए।' और विवाह नये ढगसे नहीं हो सकता। जिस ढगसे विवाह होता है, उसी ढगसे हो सकता है. अर्थात् हम एक साथी चुन ले, उसके प्रति वफादार रहने. उसे मृत्यु पर्यंत न त्यागनेकी प्रतिज्ञा कर ले और उसके साथ मिल कर खडित ब्रह्मचर्यको पुनः स्थापित करनेका प्रयत्न करे। यदि हम विवाह सस्कारोको तथा अन्य प्रथाओको महत्व नही देते,तो भी हमे विवाहको उसी अर्थमे लेना पडेगा, जिस अर्थमे अन्य लोग लेते है। विवाह पारस्परिक आकर्षणका परिणाम माना गया है और सदा माना जायगा। और यदि पारस्परिक आकर्षण नही है तो विवाह अनुचित है।

प्रेम आनंददायी किस प्रकार हो

मेरा खयाल है कि मैं तुम दोनोको समझता हू और मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारे सबधोमे जो कुछ कष्टदायी और दुखदायी है, उसको निकाल कर उसे सुखदायी और आनददायी बनानेमे तुम्हारी सहायता करू। उसका कहना सही है कि यह उत्कट पारस्परिक प्रेम ईश्वर-प्रेमसे दूरकी चीज है और उसमे बाधा पहुचाता है। परतु इसके प्रति तुम्हारा यह उत्कट प्रेम एक सत्य-वस्तु है, जिसकी तुम उसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर सकते जिस प्रकार तुम अपने शरीरकी अथवा व्यक्तिगत स्वभावकी उपेक्षा नहीं कर सकते। किंतु इस तथ्यको स्वीकार करते हुए तुम्हे जो कुछ शिव है. उसे स्वीकार करके जो-कुछ अशिव है उसे निकाल फेकनेकी चेष्टा करनी चाहिए। शिव है अपने प्रेम-पात्रके प्रेममय होनेकी अनुभूति। हमे अपनी अहपूर्तिकेलिए नहीं, बल्कि ईश्वरकी इच्छा पूरी करनेमे एक दूसरेकी सहायता करनेके लिए प्रेम करना चाहिए। तब सच्चा आनद मिलेगा। परतु इस आनदकी प्राप्तिकेलिए आवश्यक है कि प्रेममे पडने-

से (और यह तुम्हारी कमजोरी है) ईर्ष्या, जुगुप्सा आदि जो हीन भावनाएं सचारित हो जाती हैं, वे निकाल फेंकी जायं। मेरी सलाह है कि अपनी भावनाओंमें मत जाओ, उन्हें एक-दूसरेको मत लिख भेजो (यह चोरी नहीं, सयम है), बल्कि अपने जीवन, अपने कार्यके बारेमें लिखो। तुम उसे अति प्रेम करते हो और वह तुम्हें करती है, यह वह भी जानती है और तुम भी जानते हो। मनुष्यको एक सीमा तक अपनी भावनाओंको व्यक्त करना चाहिए, उस सीमाका उल्लघन नहीं करना चाहिए—और तुमने उस सीमाका उल्लघन किया है। सीमाका उल्लघन करनेके बाद भावनाओंकी अभिव्यक्ति आनददायी न होकर भारपूर्ण हो जाती है।

ईश्वरने हमें प्रेममें आनद अनुभव करनेकी क्षमता दी है, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि वह प्रेम है, अर्थात् अपना नहीं बल्कि दूसरेका उपकार करनेकी इच्छा। और जैसे ही तुम्हारा प्रेम सच्चा हो जायगा, अर्थात् उसका उपकार करनेकी तुम्हारी इच्छा होगी, तुम्हारे उसके प्रेममें जो कुछ भी कष्टदायी है, वह दूर हो जायगा।

प्रेम हानिकारक नहीं हो सकता जब तक वह प्रेम है, प्रेमकी ओटमें अहताका भूत नहीं है। हमें अपनेसे पूछना चाहिए—क्या मैं उसके उपकारके लिए उसे कभी न देखने तथा उससे सबध तोड लेनेके लिए तैयार हूँ। यदि आप तैयार नहीं है, तो अहताका भूत है, जिसे मार डालना चाहिए। मैं जानता हूं कि तुम्हारी वृत्ति धर्मपरायण तथा उदार है और यदि तुम पर अहताका भूत सवार है तो तुम उसे परास्त कर दोगे।

तुम्हारा यह कहना ठीक है कि मनुष्य सबको समान रूपसे प्यार नहीं कर सकता। केवल एक ही व्यक्तिसे उत्कट प्रेम करनेमें सुखानुभूति होती है, पर स्मरण रहे कि प्रेम उसके लिए हो, अपनी अहपूर्तिके लिए नहीं।

प्रेमका स्थान

मैंने 'प्रेम' पर बहुत विचार किया है, परतु मुझे उसका कोई अर्थ न दिखाई पडा। फिर भी मानव-जीवनमें उसका स्थान तथा अर्थ स्पष्ट

तथा निश्चित है। वह भोग और ब्रह्मचर्यमे चलने वाले संघर्षकी तीव्रता कम करता है। जो युवक-युवती ब्रह्मचर्य न धारण कर सके, वे विवाह करनेके लिए प्रेम कर सकते है और इस प्रकार १६से लगा कर २० वर्ष-की अवस्था तक जीवनके अत्यंत नाजुक समयमे भीषण मंत्रणाओंसे बच सकते है। जीवनकी इसी अवस्थामे प्रेमका स्थान है। पर विवाहके बाद प्रेमके लिए स्थान नही है. वह कुत्सित होता है।

प्रेम करना अच्छा है या बुरा ?

प्रेम करना अच्छा है या बुरा ? मेरे लिए तो इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट है।

यदि मनुष्य सेवापूर्ण आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसके लिए प्रेम तथा विवाह करना पतन है, क्योंकि तब उसे अपनी शक्तिका एक भाग अपनी पत्नी या अपने कुटुंब या अपने प्रेमपात्रको देना होगा। यदि वह पशु-जीवन बिता रहा है, खाना,कमाना तथा लिखना ही उसका जीवन-ध्येय है तो प्रेमकी अवस्था उसके लिए उन्नतिकारी होगी, जैसा कि पशुओं तथा कीडे-मकोडोमे होता है।

उत्पादक शक्ति

मैं नही समझता कि तुम्हे स्त्रियोसे किसी प्रकारके आध्यात्मिक संबंधकी आवश्यकता है। स्त्रियोसे सामाजिक संबंध तभी आनंददायी होगा. जब तुम्हारे मनने स्त्री-पुरुष विषयक कोई भेदभाव न रह गया हो, तुम स्त्रियोको भी अन्य प्राणियोके समान देखने लगो।

मै समझता हूं कि तुम्हे श्रमकी आवश्यकता है। तुम्हे कोई ऐसा श्रम करना चाहिए जिससे तुम्हारी सारी शक्ति व्यय हो सके।

मुझे एलाइस स्टाकहमकी पुस्तिका अच्छी लगी, जिसमे उन्होने विषयेच्छाको 'उत्पादक-शक्ति' बताया है। वे कहती हैं कि जब मनुष्यमे अन्य प्राकृतिक इच्छाओंके साथ विषयेच्छा उत्पन्न हो तो उसे जान लेना चाहिए कि यह कोई उत्पादक कार्य करनेकी इच्छा है। यही इच्छा निम्न स्तरमें कामेच्छाके रूपमे प्रकट होती है। यह उत्पादक कार्य करनेकी

इच्छा है और दृढ इच्छा-शक्ति तथा अनवरत प्रयत्नसे अन्य उपयोगी शारीरिक कार्यों अथवा आध्यात्मिक जीवनकी दिशामे मोडी जा सकती है।

मैं भी सोचता हू कि सचमुच यह एक शक्ति है जो परमात्माकी इच्छाको पूर्ण करनेमे, पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना करनेमें सहायक हो सकती है। प्रजननमें इसका उपयोग करके हम इसी कार्यको (पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापनाके कार्यको) अपनी संतति पर डाल देते हैं। ब्रह्मचर्य तथा सेवाव्रत ले लेने पर यह शक्ति परम मगलमय रूप धारण कर लेती है। इस दिशामे इसे मोडना कठिन है, पर असभव नहीं है। हम देखते हैं कि हमारी आखोंके सामने सैकडों-हजारों आदमियोंने ऐसा करके दिखा दिया है।

यदि तुम अपने विकारोंको जीत सको तो बहुत अच्छा है, यदि न जीत सको तो विवाह कर लो—वह बहुत अच्छा तो नहीं होगा, पर बुरा भी नहीं होगा।

बुरा तो, कामाग्निसे जलते हुए इधर-उधर फिरना है, जैसा कि पालने कहा है।

हा, यह कल्पना कभी मत करो कि स्त्रियोंका सान्निध्य कल्याणकर, करुण-कोमल भावनाओंका सचार करने वाला होता है। यह भ्रम कामुकतासे उत्पन्न होता है। पुरुषोंकी भाति स्त्रियोंका सान्निध्य भी आनद उत्पन्न करता है, परतु स्त्रियोंके सान्निध्यमें कोई विशेष आनद-दायक बात नहीं होती। और यदि ऐसा मालूम पडे तो उसे कामुकता-जनित भ्रम मानो।

दरिद्रताका वरण करो

.....तुम पूछते हो कि विकारोंसे सघर्ष करनेका उपाय बताओ। श्रम, उपवास आदि गौण उपायोंमे सबसे अधिक कारगर उपाय है, दरिद्रताका वरण, अपनेको अकिंचन प्रकट करना, जिससे तुम्हारी ओर कोई स्त्री आकर्षित ही न हो। परतु मुख्य तथा सर्वोत्तम उपाय तो विकारोंसे अनवरत सघर्ष ही है, तुम्हारे दिलमे सदा यह भाव रहना

चाहिए कि यह संघर्ष कोई नैमित्तिक या अस्थायी अवस्था नहीं, बल्कि जीवनकी स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था है।

स्वेच्छापूर्वक नपुंसकत्व

तुमने मुझसे स्कोपत्सी[1] जातिवालोंके विषयमें पूछा है। लोगोंका उन्हें बुरा बताना क्या उचित है? क्या वे मैथ्यूके प्रवचनके १६-वें अध्याय-का आशय ठीक-ठीक समझे हैं कि उसके १२-वें पद्यके प्रमाण पर वे अपनी तथा दूसरेकी जननेंद्रिय काट डालते हैं। पहले प्रश्न पर मेरा उत्तर है कि 'बुरे नहीं हैं। सभी मनुष्य एक ही परमपिताकी संतान हैं, सब आपसमें भाई-भाई हैं, न कोई बुरा है न भला। स्कोपत्सी लोगोंके बारेमें मैंने जो-कुछ सुना है, उससे मालूम पड़ता है कि वे नीतिपूर्ण तथा श्रमपूर्ण जीवन बिताते हैं। दूसरे प्रश्नके संबंधमें, क्या वे प्रवचनका ठीक-ठीक आशय समझते हुए अपनी जननेंद्रिया काट डालते हैं, मेरा निर्भ्रांत उत्तर है कि वे प्रवचनका गलत अर्थ समझे हैं, और अपनी तथा विशेष रीतिसे दूसरोंकी जननेंद्रिया काटकर वे सच्चे ईसाई धर्मके विरुद्ध जाते हैं। ईसाने ब्रह्मचर्य-का उपदेश दिया है, पर अन्य सद्गुणोंकी भांति ब्रह्मचर्यका महत्व भी तभी है जब वह श्रद्धाके साथ दृढ इच्छाशक्तिसे प्राप्त किया जाय। उस ब्रह्मचर्यका कोई महत्व नहीं, जो पाप करनेकी संभावना ही दूर करके प्राप्त किया जाय। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे कोई मनुष्य अधिक खानेके प्रलोभनसे बचनेके लिए कोई ऐसी दवा खा ले कि मंदाग्नि उत्पन्न होजाय या युद्ध न करनेके लिए अपनी बांहें बांध ले, या गाली न देनेके लिए अपनी जबान काट डाले। ईश्वरने मनुष्यको वैसा ही बनाया है, जैसा वह है। उसने उसके विकारपूर्ण शरीरमें आत्मा प्रतिष्ठित की है, जिससे वह शारीरिक विकारोंको अपने वशमें कर सके (जीवनका यही उद्देश्य है)। परमात्माने मनुष्यको सर्वांग पूर्ण शरीर इसलिए नहीं दिया कि वह ईश्वरके कार्यमें संशोधन करने के लिए अपनेको विकलांग बना ले।

१—रूसी किसानोंका एक सम्प्रदाय जो ब्रह्मचर्य पालनके लिए स्वेच्छा-से नपुंसक बन जाता है, अर्थात् अपनी जननेंद्रिय काट डालता है।

स्त्री और पुरुष एक-दूसरेकी ओर इसीलिए आकर्षित होते हैं कि वे जिस पूर्णताको नहीं प्राप्त कर सके, वह अगली पीढीके लिए सभव हो जाय। धन्य है उस दयानिधानकी इस चातुरीको! मनुष्य पूर्ण बनने-के लिए बनाया गया है, 'अपने स्वर्गीय पिताके समान पूर्ण बन। पूर्णता-का एक चिह्न ब्रह्मचर्य प्राप्ति है—सच्चा ब्रह्मचर्य, मनसा, वाचा, कर्मणा; विषयवासनासे पूर्ण मुक्ति। यदि मनुष्य पूर्ण बन जाय और ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे तो मानव-जातिका जीवनोद्देश्य पूरा होजाय, फिर पृथ्वी पर जन्म लेनेकी कोई आवश्यकता न रह जाय, मनुष्य फरिश्ते बन जाय, जो विवाह नहीं करते। परतु अभी मनुष्य पूर्ण नहीं बन सका है, इसलिए वह नई पीढीको जन्म देता है और नई-पीढी ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन करती हुई अपना जीवन-यापन करती है। इस प्रकार मानव-जाति उत्तरो-त्तर पूर्णताके निकट पहुच रही है। यदि मनुष्य स्कोपत्सी लोगोंके उपदेश पर चलने लगे तो मानव-जातिका पूर्णता प्राप्त किये विना ही, ईश्वरकी इच्छा पूरी किये विना ही, अतको प्राप्त होजाय।

मेरे स्कोपत्सी लोगोंको गलत माननेका पहला कारण तो यह है। दूसरा कारण यह है कि बाइबिलकी शिक्षा मगलकारी है। (ईसाने कहा है—मेरे पथ पर चलना बड़ा सरल और कष्ट-रहित है), और उसमें हिंसा-का निषेध है। अतः दूसरोंको दु:ख और कष्ट देना पाप तो है ही, अपने-को भी विकलाग बनाना तथा कष्ट देना ईसाई धर्मके विरुद्ध है।

तीसरा कारण यह है कि स्कोपत्सी लोगोंने मैथ्यूके प्रवचनके १६ वें अध्यायके १२-वें पद्यका अर्थ स्पष्टतया गलत लगाया है। यह सारा अध्याय विवाहके सबधमें है। ईसाने विवाहका निषेध नहीं किया, बल्कि पत्नियां बदलने अर्थात् तलाकका निषेध किया है। इस प्रकार विवाहावस्थामें भी ईसाने अधिकसे-अधिक समय पालनेकी आज्ञा दी है, मनुष्योंको एक पत्नीव्रतका पालन करना चाहिए। जब स्त्रियोंने उनसे कहा (पद्य १०) कि इस प्रकारका सयम पालन अर्थात् एक पत्नीव्रत तो बड़ा कठिन है तो उन्होंने उत्तर दिया—यद्यपि सभी लोग जन्मजात नपुंसकों

अथवा मनुष्य द्वारा बनाये गए नपुंसकोंकी भांति संयम पालन नहीं कर सकते. परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने स्वर्ग प्राप्तिके लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है. अर्थात् आत्मबलसे काम विकारको जीत लिया है, और लोगोंको उन्हींका अनुकरण करना चाहिए। यहां 'कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने स्वर्ग-प्राप्तिके लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है,' इन शब्दोंका अर्थ शरीर पर आत्माकी विजय करनी चाहिए। इनसे यह अर्थ नहीं निकलता कि शरीरको विकलांग बना लिया जाय, क्योंकि जहां पर शरीरको विकलांग बनानेका उल्लेख है. वहां 'मनुष्य द्वारा बनाये गए नपुंसकों' लिखा गया है, तथा जहां पर शरीर पर आत्माकी विजयसे तात्पर्य है, वहां 'अपनेको नपुंसक बना लिया है.' लिखा गया है।

मैं १२वें पद्यका यही अर्थ लगाता हूं. पर मैं इतना और कह दूं कि यदि तुम्हें इन शब्दोंका यह अर्थ ठीक न जंचे तो भी तुम्हें याद रखना चाहिए कि सदा मूल-भाव पर ही जाना उचित है। बलपूर्वक अथवा स्वेच्छासे अंग-भंग करना ईसाई-धर्मके विरुद्ध है।

जघन्य-पाप

मैं समझता हूं कि विवाह कर लेने पर स्त्री-पुरुषोंका विषयोपभोग करना अनीतिपूर्ण नहीं है। पर इस पर अधिकारी रीतिसे कुछ लिखनेसे पहले मैं इस प्रश्नका सूक्ष्म रीतिसे अध्ययन कर लेना आवश्यक समझता हूं. क्योंकि इस मतमें भी बहुत सत्यांश है कि केवल अपनी विषयवासना शांत करनेके लिए अपनी स्त्रीसे भी विषय-सेवन करना पाप है। मेरा तो ख्याल है कि विषय-सेवनसे बचनेके लिए अपनी इंद्रियको को काट डालना भी उतना ही बड़ा पाप है, जितना कि केवल आनंद प्राप्तिके लिए विषय-सेवन करना। यह वैसा ही पाप है, जैसे प्रलोभनमें आकर अधिक खाना. या भूखों मर कर प्राण दे देना या विषपान कर लेना। जिस प्रकार मनुष्योंकी सेवा करनेके लिए अन्न खाकर शरीरकी रक्षा करना धर्म सम्मत है. उसी प्रकार वंश रक्षाके लिए विषय-सेवनभी धर्म-सम्मत है।

स्वेच्छासे नपुंसक बन जाने वालोंका यह कहना सही है कि आध्यात्मिक प्रेमके बिना, केवल शरीर सुखके लिए अपनी स्त्रीसे भी विषयोपभोग करना अनीतिपूर्ण है, व्यभिचार है। पर उनका यह कहना गलत है कि आध्यात्मिक प्रेम होने पर संतानोत्पत्तिके लिए भी विषयोपभोग करना पाप है। वह पाप नहीं, ईश्वरकी इच्छा पूर्ण करना है।

मेरी समझमें इंद्रिय काट डालना पाप है। मान लीजिए, एक आदमी अनीतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अनाजसे शराब बनाकर पीता है और नशेमें चूर रहता है। वह अनुभव करने लगता है, यह बुरा है, पाप है। अब वह अपनी इस बुरी आदतको छोड़कर अनाजका मनुष्यों तथा पशुओंके लिए सदुपयोग करनेके बजाय, यह सोचता है कि पापमार्गसे बचनेका एकमात्र उपाय यही है कि मैं सारा अनाज ही जला डालूं और वह अपने अनाजके कोठोंमें आग लगा देता है। फल यह होता है कि उसकी पापवृत्ति उसके अंदर ज्यों की-त्यों वर्तमान रहती है, उसके पड़ौसी पहले हीकी तरह अनाजसे शराब बनाते है, पर वह अपनी अथवा अपने परिवार वालोंकी क्षुधा शांत करनेमें असमर्थ होजाता है।

ईश्वरने नन्हे-नन्हे बालकोंकी प्रशंसा व्यर्थ ही नहीं की कि स्वर्गका राज्य उन्हींका है तथा बुद्धिमान लोगोंको भी जो बात समझमें नहीं आती उसे वे सहज ही जान लेते हैं। हम स्वयं इस कथनकी सचाई अनुभव करते हैं। यदि बालक न हों, वे जन्म लेना बंद कर दें तो पृथ्वी पर स्वर्गके राज्य की आशा भी न रह जाय। वे ही हमारी आशा है। हम पापमें डूबे हैं, अपनेको शुद्ध बनाना बहुत कठिन है, परंतु हमारे परिवार में हर पीढ़ीमें, नई-नई, निर्दोष, शुद्ध आत्माएं जन्म लेती है और वे आजन्म शुद्ध बनी रह सकती हैं। नदीका पानी गंदा होता है, पर उसमें कितने ही निर्मल जलके स्रोत मिलते रहते हैं, जिससे नदीके पानीकी भी शुद्ध होनेकी आशा बनी रहती है।

यह प्रश्न बहुत बड़ा है, और इस पर मनन करनेमें मुझे आनंद मिलता है। केवल इतना ही जानता हूं कि शरीर सुखके लिए विषय-

सेवन तथा विषय-सेवनसे बचनेके लिए अपनी इंद्रिय काट डालना दोनों ही समान रूपसे पाप-पूर्ण है। परन्तु इंद्रिय काट डालना तो जघन्य-पाप है। विषयाधीन होनेमें गर्व नहीं होता, लज्जा होती है, परन्तु इंद्रिय काट डालने वालोंको तो अपने काय पर लज्जा तक नहीं आती, वे गर्व करते हैं कि उन्होंने प्रलोभनोंसे काम-विकारके संघर्षसे बचनेके लिए ईश्वरका नियम भंग कर डाला। यथार्थतः हमें अपने हृदयके विकारोंको काट फेंकना चाहिए, तब शरीरको काट फेंकना आवश्यक होजायगा। इंद्रिय-को काट फेंकनेसे प्रलोभनोंसे मुक्ति नहीं मिल जाती। मनुष्य इस जालमें क्यों फंस जाते हैं? इसका कारण यह है कि हृदयसे काम-विकारको दूर करना बड़ा कठिन है—इसके लिए मनुष्यको अपने हृदयके सभी विकारोंका शमन करना पड़ता है, तथा खुदीको भूल कर तन-मन-धनसे ईश्वरको प्यार करना पड़ता है। यह रास्ता बड़ा लंबा है, यही कारण है कि कुछ लोग भूलसे सोच बैठते हैं कि वे जीवनमें सबसे बड़े पापसे बचनेके लिए यह छोटा रास्ता अख्तियार कर सकते हैं। पर दुःखकी बात तो यह है कि इस प्रकारके छोटे रास्ते ईप्सित लक्ष्यकी ओर नहीं ले जाते, बल्कि किसी दलदलमें ले जाकर फंसा देते हैं।

वंशरक्षाके लिए विवाह

वंशरक्षाके लिए विवाह करना अच्छा और जरूरी है, पर यदि लोग इस ध्येयसे विवाह करते हैं, तो उन्हें अपने अंदर यह शक्ति पैदा करनी चाहिए कि वे अपनी सन्तानोंको परान्नजीवी बननेके बजाय मनुष्य तथा परमात्माके सच्चे सेवक बननेकी शिक्षा दे सकें। और इसके लिए आवश्यक है कि वे दूसरोंके श्रम पर नहीं, बल्कि अपने श्रम पर जीवन-यापन करनेकी सामर्थ्य अर्जित करें।

हम लोगोंमें यह विचार घुस गया है कि मनुष्यको शादी तभी करनी चाहिए जब वह दूसरोंकी गर्दन पर अच्छी तरह सवार होगया हो, अर्थात् 'साधन-सम्पन्न' होगया हो। परन्तु होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। उन्हींको शादी करनी चाहिए जो साधन-विहीन होने पर भी जीवन-

यापन करने तथा बच्चोंको शिक्षा देनेकी सामर्थ्य रखते हों। ऐसे ही माता पिता अपने बालकोंको ठीक रीतिसे शिक्षा दे सकते हैं ?

विषय-वासना—ईश्वरके नियमोंकी पूर्त्तिका साधन

विषयेच्छा ईश्वरके बनाये नियमोंको यदि स्वयं न पूरा कर सके तो उसे अपने वंशजों द्वारा पूरा करानेका साधन है। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें इसकी सत्यताकी अनुभूति होती है। मनुष्य ईश्वरके बनाये नियमोंकी पूर्त्तिकी दिशामें जितना ही आगे बढ़ता है, उतना ही वह विषय-वासनासे दूर भागता है। इसके विपरीत वह ईश्वरके नियमोंकी पूर्त्तिसे जितना ही दूर रहता है, उतना ही विषयवासना उसे सताती है।

विषय-भोग इसीलिए इतना आकर्षक है कि वह हमारे एक महान् कर्त्तव्यकी पूर्त्तिका साधन है मानो वह मनुष्यको एक महान कर्तव्य-बोझसे मुक्त करके उसे अगली पीढ़ी पर डाल देता है। मैं नहीं, तो मेरी संतति स्वर्गीय राज्य प्राप्त करेगी। इसीलिए स्त्रियां अपने बच्चोंमें इतनी तन्मय रहती हैं।

ब्रह्मचर्य-पालनका स्थान प्रथम है

'एन' ने ब्रह्मचर्यके आदर्शके विरुद्ध यह दलील दी कि इसका पालन करनेसे मनुष्य जातिका अंत होजायगा। इसके उत्तरमें मैंने कहा—पादरियोंके विश्वासके अनुसार संसारका अंत एक-न-एक दिन होगा। विज्ञान भी यही कहता है कि एक दिन पृथ्वीके तमाम मनुष्य और स्वयं पृथ्वी नष्ट होजायगी। फिर इस कल्पनासे मनुष्य क्यों इतना चौंकता है कि नीतियुक्त सदाचार-पूर्ण जीवन व्यतीत करनेसे भी मनुष्य जातिका अंत किया जा सकता है ? शायद दोनों बातें साथ-साथ हों। एक लेखमें यही इंगित भी किया गया है। उसमें कहा गया है—ब्रह्मचर्यका पालन करके मनुष्य क्यों न अपनेको ऐसी बुरी मौतसे बचा ले ? बिल्कुल ठीक कहा है !

हरशेलने हिसाब लगाया है, जिससे प्रकट होता है कि यदि सृष्टिके आरंभकालमें, इस समयकी भांति मनुष्यकी संख्या प्रति साल दूनी होती रहती, तो (आदम-हौवासे लेकर अब तकका समय ७००० वर्ष मान लेने

पर) अब तक मनुष्य संख्या इतनी अधिक बढ जाती कि यदि वे एकके सिर पर एक खडे कर दिये जाते तो वे न केवल पृथ्वीसे सूरज तक, बल्कि उससे २७ गुना अधिक ऊंचे पहुंच जाते।

इससे क्या नतीजा निकला ? सिर्फ दो नतीजे निकलते हैं—या तो हम प्लेग और युद्धोकी आवश्यकता माने या हम ब्रह्मचर्य पालनका प्रयत्न करे। ब्रह्मचर्य पालनसे ही बढती हुई मनुष्य संख्या रोकी जा सकती है।

युद्धो और प्लेगोके आकडोकी ब्रह्मचर्य-पालनके आकडोसे तुलना मनोरंजक होगी। निश्चय ही इन आकडोसे प्रकट होगा कि दोनो एक-दूसरे-की पूर्ति करते हैं। यदि युद्ध और प्लेग कम हुए होगे तो मनुष्य-जातिके ब्रह्मचर्य पालन करनेके अधिक उदाहरण मिलेगे। दोनो संतुलन बनाये रखते है।

एक दूसरा नतीजा यह निकलता है, यद्यपि मैं इसे स्पष्ट रूपमे रख सकनेमे समर्थ नही हू, कि मनुष्य-संख्या घटनेकी चिंता करना, उसका हिसाब लगाने बैठना ठीक नही है। केवल प्रेम ही श्रेष्ठ मार्ग है, पर प्रेम अकेला नही रहता, उसका आंचल थामे हुए पवित्रता रहती है। मान लीजिए, हम एक ऐसे आदमीकी कल्पना करे, जो एक ओर तो जन-संख्या बढानेके लिए व्यग्र है और दूसरी ओर उसे घटानेके लिए। दोनो कार्य एक साथ होनेकी आशा करना हास्यास्पद नहीं है। वह तभी हो सकता है जब एकका प्राण लिया जाय और दूसरेको जन्म दिया जाय !

एक ही बात तर्क-संगत है। 'अपने परम पिताकी भांति पूर्ण बन।' और यह पूर्णता पहले ब्रह्मचर्य और फिर प्रेमकी साधनासे मिलती है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि ब्रह्मचर्य-पालनका स्थान प्रथम है और वंश रखनेका स्थान द्वितीय।

मनुष्यके नियम

एन के पत्र पर, जिसने उसने लिखा है कि विषयोपभोग एक पवित्र कार्य है, क्योंकि उससे वंश रक्षा होती है मैं यह सोच रहा हू कि जिस प्रकार मनुष्य पशुओंकी भांति, जीवन-संघर्षके नियमके अधीन है, उसी

प्रकार वह पशुओंकी भांति, प्रजननके नियमके भी अधीन है, पर मनुष्य मनुष्य है। उसने जीवन संघर्षसे भिन्न अपना नियम बनाया है—प्रेम। इसी प्रकार उसने प्रजननके विपरीत अपना नियम बनाया है—ब्रह्मचर्य।

स्त्री-त्यागका अर्थ

'अपने माता-पिता तथा बीवी और बच्चोंको छोड़ कर मेरा अनुसरण कर', बाइबिलके इन शब्दोंका तुमने संकुचित अर्थ लिया है। इन शब्दोंका सही-सही अर्थ क्या है, विशेष रीतिसे जब पारिवारिक बंधनों और धार्मिक कर्त्तव्योंमें वैषम्य उपस्थित हो, तब किस प्रकार समस्या सुलझाई जाय, इस संबंधमें मेरा मत यह है कि समस्याका हल बाहरी नियमों और आदेशोंमें नहीं मिल सकता, उसका हलतो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार ही कर सकता है। आदर्शतो स्थिर रहेगा, जैसा कि ईसाने कहा है—'अपनी स्त्रीको छोड़ दे और मेरे पीछे चल।' पर इस आदेश का पालन मनुष्य कहां तक कर सकता है, यह तो वह स्वयं या परमात्मा जानता है।

तुम पूछते हो 'अपनी स्त्रीको छोड़ दे का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ उसका 'परित्याग'कर देने अथवा उसके साथ शयन करना तथा संतानोत्पत्ति करना छोड़ देनेसे है?

निश्चयही 'छोड़ दे का अर्थ है कि उससे पत्नीत्वका संबंध त्याग दे, और उसे संसारकी अन्य स्त्रियोंकी तरह अपनी बहिन माने। यह आदर्श है। इसकी पूर्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि स्त्रीको क्षोभ न हो, उसे दुस्सह न मालूम पड़े, वह ईर्ष्या तथा विकारोंकी शिकार न बन जाय। यह बड़ा कठिन कार्य है। ब्रह्मचर्य-पालनका यत्न करनेवाले विवाहित पुरुषों को अपने ही द्वारा पहुंचाये गए इस घावको भरने में बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। फिर भी मैं केवल एक ही बात सोच और कह सकता हूं, वह यह कि विवाह होजाने पर भी, पापका बोझ अधिक न बढ़ानेके लिए, अपनी सारी शक्तिसे ब्रह्मचर्य-पालन करनेका यत्न करना चाहिए।

मेरा सवाल ब्रह्मचर्यका है

मेरा सवाल ब्रह्मचर्यका, ब्रह्मचर्यकी शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य-पालनका है।

जिस क्षण मनुष्य ब्रह्मचर्यमें अपना कल्याण देखेंगे, उसी क्षण विवाहोंकी संख्या कम हो जायगी।

विवाहेच्छु स्त्री-पुरुषोंको सीख

.. यदि आनंदोपभोगके लिए ही विवाह करेंगे तो संयम पालनमें कभी सफलता नहीं मिलेगी। विवाह-बंधन ही जीवनका सर्वोपरि लक्ष्य बनालेना बहुत गलत है। यदि गंभीरतासे विचार करोतो यह गलती स्वतः प्रकट हो जाती है। क्या जीवनका अंतिम लक्ष्य विवाह-बंधन है? विवाह कर लिया। उसके बाद? यदि विवाहसे पहले दोनोंने अपना कोई जीवन-लक्ष्य नहीं बनाया है तो विवाहके बाद कोई लक्ष्य स्थिर करना अति कठिन, लगभग असंभव हो जायगा। यह निश्चित है कि यदि विवाहसे पहले दोनोंका समान जीवन-लक्ष्य नहीं है, तो विवाहके बाद दोनोंके दिल एक दूसरेसे मिलेंगे नहीं, बल्कि फिरेंगे। विवाह तभी सुखकर होता है जब दोनोंका जीवन-लक्ष्य समान तथा एक होता है।

दो व्यक्ति एक ही रास्ते पर जाते हुए मिलते हैं और कहते हैं, 'आओ, हम साथ-साथ चलें। ठीक है। दोनों एक दूसरेको सहारा देते हुए आगे बढ़ेंगे।

पर जब वे पारस्परिक आकर्षणसे खिंचकर अपने अलग-अलग रास्ते छोड़कर एक होते हैं तो वे एक दूसरेकी सहायता नहीं कर पाते। और इसलिए कुछ लोगोंका यह मत है कि जीवनमें आंसू ही आंसू हैं, अथवा अधिकांश लोगोंका यह मत कि जीवन क्रीडास्थल है, दोनों ही गलत हैं।

जीवन सेवाका क्षेत्र है। इसमें मनुष्यको कभी-कभी असीम कष्ट भी उठाने पड़ते हैं, पर बहुधा इसमें अनेक प्रकारके आनंद मिलते हैं। सच्चा आनंद तभी मिलता है जब मनुष्य अपने जीवनको सेवामय बना लेते हैं, वे अपने व्यक्तिगत सुखोंसे आगे, अपना कोई निश्चित जीवन-लक्ष्य बना लेते हैं। बहुधा विवाह करते समय मनुष्य इस बातको भूल जाते हैं। विवाहके सुख निज बननेका सुख इनकी कल्पनामें ही वे इतने मग्न हो जाते हैं कि वे समझने लगते हैं कि यही जीवन है पर यह भारी गलती है।

यदि माता-पिता कोई विशेष लक्ष्य स्थिर किये बिना ही जीवन-यापन और बच्चे पैदा करते है, तो कहना होगा कि वे जीवनका प्रश्न हल करना केवल आगेके लिए टाल रहे हैं, और इस प्रकार निरुद्देश्य जीवन बितानेका पूरा-पूरा फल उन्हे बादमें भुगतना पड़ेगा। पर वे इस प्रश्नको केवल टाल सकते हैं, उससे बच नहीं सकते, क्योंकि एक दिन उन्हे अपने बच्चोंको शिक्षा देनी ही होगी, स्वयं कोई पथ ज्ञात न होने पर भी उनका पथ-प्रदर्शन करना ही होगा। ऐसी अवस्थामें बहुधा माता-पिता अपने मनुष्योचित गुणों और फलस्वरूप उनसे उत्पन्न होने वाले सुखोंसे हाथ धो बैठते हैं, और केवल बच्चे पैदा करनेकी कल बन जाते हैं।

इसीलिए मैं विवाहेच्छु सभी स्त्री-पुरुषोंसे कहूंगा कि आपको अभी अपना जीवन चाहे हरा-भरा ही क्यो न दिखाई पडता हो, पर आप पहले-से अपने जीवनके लक्ष्य पर विचार कर लीजिए, उसे स्पष्ट कर लीजिए। इसके लिए आपको अपने जीवनकी वर्त्तमान स्थिति पर तथा अपने अतीत पर नजर डालनी चाहिए। आपके जीवनमें कौन सी चीज महत्व-पूर्ण लगती है, कौन-सी व्यर्थ आप शाश्वत सत्य किसे मानते है, आप किन सिद्धांतों पर अपना जीवन गढ़ना चाहते है इन सब प्रश्नोंका उत्तर आपको मांगना चाहिए। और आप इन सब बातोंका केवल विचार और निश्चय करके ही न ठहरे, उन पर अमल करना भी शुरू कर दे, क्योंकि मनुष्य जब तक किसी सिद्धांत पर अमल नहीं करता, वह नहीं जानता कि वह उनमें श्रद्धा रखता है या नहीं। मैं तुम्हारे जीवन-सिद्धांतोंको जानता हूं। इन सिद्धांतोंके जिन अंगों पर तुम अमल कर सको, अभीसे उन पर अमल करना शुरू कर दो। मनुष्योंसे प्यार करना चाहिए और उनका प्रेम-भाजन बनना चाहिए—इस जीवन-सिद्धांतको पूर्णतौरसे अमलमें लानेके लिए मैं इस समय तीन सीखों पर चल रहा हूं। इस दिशामें अति नहीं हो सकती। तुम्हें भी इस समय इन सीखों पर चलना चाहिए।

तो तुम्हे यह चाहिए कि तुम दूसरोसे अधिक आशा न रखो, क्योंकि यदि तुम दूसरोसे अधिक आशा रखोगे तो तुम्हे अनेक यत्रणाए होगी। तुम उनसे परिपूर्ण प्रेम नहीं कर सकोगे, उन्हे उलहने देने लगोगे। इस दिशामे तुम अपनेको बहुत-कुछ सुधार सकते हो।

दूसरे, केवल शब्दोसे ही नहीं, बल्कि अपने कार्योसे भी प्रेम प्रकट करनेके लिए तुमको सेवाव्रत सीखना चाहिए। इस क्षेत्रमे तुम बहुत-कुछ कर सकते हो।

तीसरे, सबको प्यार करने और उनका प्रेमभाजन बननेके लिए लघुता, विनम्रता सीखनी चाहिए। अप्रीतिकर व्यक्तियो तथा चीजोको भी सहन करना चाहिए, सबके प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उन्हे चोट न पहुचे और यदि इतना न हो सके, तो कम-से-कम इतना तो अवश्य करो कि तुमसे किसीका अपमान न हो। और इस दिशामे भी तुम बहुत-कुछ कर सकते हो। सोते-बैठते तुम्हे इन सीखो पर चलनेका प्रयत्न करना चाहिए, और इसमे तुम्हे आनद मिलेगा। प्रतिदिन मैं कितनी उन्नति कर रहा हू, यह देखना बडा आनदप्रद होता है। इसके अलावा तुम्हे शनैः-शनैः लोगोका प्रेमभाव भी प्राप्त होगा, जो बडा सुखकर पुरस्कार होगा।

इसलिए मै तुम दोनोको सलाह दूगा कि पहले तुम दोनो अपने जीवन पर गभीरतासे विचार करो, अपने जीवनको गभीर बनाओ। क्योकि केवल इसी रीतिसे तुम जान सकोगे कि तुम एक राहके पथिक हो या नहीं, तुम दोनोका विवाह-बधनमे बधना उचित होगा या नहीं। और यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा हो तो तुम्हे भावी जीवनकी तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारे जीवनका उद्देश्य विवाह-सुख नहीं, बल्कि अपने निर्मल प्रेममय जीवनसे ससारमे और अधिक प्रेम और सचाईका प्रचार करना होना चाहिए। विवाह इसीलिए किया जाता है कि पति पत्नी दोनो इस उद्देश्य-की पूर्तिमे एक-दूसरेकी सहायता कर सके।

कहावत है, दोनो छोर मिल जाते है। सबसे अधिक स्वार्थपूर्ण और

अवाञ्छनीय जीवन उनका है, जो शरीर-सुखके लिए विवाह करते हैं। इसके विपरीत सबसे ऊंचा जीवन उनका है, जो ईश्वरकी सेवा करनेके लिए, संसारमें सत्य और प्रेमकी वृद्धि करनेके लिए विवाह करते हैं।

इसलिए सावधान रहो, गलती मत करना। दोनों रास्ते ऊपरसे कभी-कभी एक दिखाई पड़ते हैं, पर वस्तुतः हैं जुदे-जुदे। इसलिए ऊंचे रास्तेको ही क्यों न चुनो ? ऊंचा रास्ता चुन लेने पर, उस रास्ते पर चलनेमें अपनी आत्माकी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, थोड़ी-शक्ति लगाना व्यर्थ होगा।

सोच-समझ कर विवाह करो

सदाचारपूर्ण जीवन बितानेकी इच्छा रखने वाले प्रौढ स्त्री-पुरुषोंको अवश्य विवाह कर लेना चाहिए, पर उन्हें केवल प्रेमके आवेशमें नहीं, बल्कि खूब सोच-समझकर विवाह करना चाहिए।

अर्थात्, उन्हें ऐंद्रिक प्रेमके लिए नहीं, बल्कि यह सोच-समझ कर विवाह करना चाहिए कि जिस व्यक्तिसे वे विवाह कर रहे हैं, वह मनुष्योचित जीवन बितानेमें कहां तक सहायक अथवा बाधक होगा (जीवनका गुजारा कैसे होगा, यह सोचना बेकार है, क्योंकि पेट तो किसी-न-किसी प्रकार भर ही जाता है)।

विवाह तभी करो जब अनिवार्य हो जाय

. . . . विवाह करनेसे पूर्व सौ नहीं, हजार बार सोच-समझ लो। एक निष्ठावान व्यक्तिके लिए किसी स्त्रीसे संबंध करना, विवाह-बंधनमें बंधना सबसे महत्वपूर्ण कृत्य है, जिसके परिणामोंको भली-भांति सोच लेना चाहिए। विवाह तभी करो जब कि वह अनिवार्य हो जाय, जैसे कि आदमीके लिए मौत अनिवार्य हो जाती है।

विवाह मृत्युके समान महत्वपूर्ण है

जीवनमें महत्वकी दृष्टिसे मृत्युके बाद विवाहका दूसरा नंबर है। जिस प्रकार वही मृत्यु अच्छी होती है, जो अनिवार्य हो, उसी प्रकार वही विवाह अच्छा होता है, जो अनिवार्य हो। अकाल-मृत्युकी भांति अकाल-विवाह भी बुरा होता है। विवाह जब अनिवार्य हो जाय वह बुरा नहीं होता।

ख्वामख्वाह गिरने वाले लोग

मैं कहूगा कि जो लोग विवाहसे बचनेकी गुंजाइश होते हुए भी विवाह करते है, वे उन व्यक्तियोके समान है, जो ठोकर खाये बिना ही जमीन पर लेट जाते है। ..यदि कोई गिर पडे तो लाचारी है, पर ख्वाम-ख्वाह क्यो गिरा जाय ?

विकट प्रश्न

.....विवाहका प्रश्न उतना सरल नहीं, जितना ऊपरसे दीख पडता है। प्रेममे पड जाना पथभ्रष्ट होना है, पर कोरी सिद्धातकी बाते हाकना उससे भी बुरा है। आप कहते हैं, मनुष्यको जो लडकी मिल जाय, उसी-से शादी कर लेना चाहिए, अर्थात् उसे अपने सुखके ख्यालसे लडकी नही चुननी चाहिए, इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य अपनेको भाग्य पर छोड दे अपनी पसदगी अलग रख कर दूसरेकी पसदगीके आगे सिर झुका दे। जटिल तथा पाप-पूर्ण परिस्थितियोमे हम अविवेकसे नही चल सकते, क्योकि यदि हमने उन परिस्थितियोको सुलझानेकी कोशिश न की, उनसे फदा तोड कर निकल भागनेकी कोशिशकी, तो हम दूसरोको कष्टमे डाल देगे। पर यदि भावुकता मनुष्यको एक उलझनमे डालती है, तो कोरी सिद्धातकी बाते उससे भी गहरी उलझनमे डाल देती हैं। हमको जीवनमे अपना लक्ष्य विवाह नही बनाना चाहिए, बल्कि सत्य-पथ पर चलना अपना जीवन-ध्येय बनाना चाहिए और उसी पथ पर सदा चलते रहना चाहिए। उस पथ पर चलते हुए ऐसा समय आयगा, ऐसे सयोग उपस्थित होगे जब विवाह न करना असंभव हो जायगा। इस पथ पर चलनेसे मनुष्य न तो कभी गलती करेगा और न पाप का भागी होगा।

यदि कोई महत् उद्देश्य नही है

विवाहके सबधमे रूढिगत विचार सर्वविदित है—'यदि साधन न होते हुए विवाह करोगे तो इसका फल यह होगा कि बच्चे होगे, दरिद्रता रहेगी और दो-एक सालमे एक-दूसरेसे ऊब उठोगे ...दस सालके भीतर-भीतर कलहसे तुम्हारा जीवन नरक बन जायगा।' यदि विवाह करने

वालोंका कोई दूसरा अदरूनी हेतु नहीं है, तो अन्य रूढ़िगत विचार सही ठहरेंगे, उनमें प्रस्तुत किया गया चित्र सत्य सिद्ध होगा। पर यदि विवाहके भीतर कोई महत् उद्देश्य है, तब अन्य विचार गलत साबित होंगे। जीवनका कोई लक्ष्य न होने पर विवाह दुःखमय सिद्ध होता है।

अपना हृदय अच्छी तरह टटोल लो

तुम दोनों दो बधनोंसे बंधे हो—अपने समान विश्वासोंके बधनसे, और प्रेमके भी बधनसे। मेरे मतमें इनमें से एक बधन काफी है। सच्चा बधन निर्मल प्रेमका बधन है। यदि निर्मल प्रेम है और उससे ऐंद्रिक प्रेम भी उत्पन्न होगया है तो अच्छा है, बधन और दृढ़ हो जायगा। यदि केवल ऐंद्रिक प्रेम है, तो यद्यपि वह उतना अच्छा नहीं है, फिर भी बुरा नहीं है और निभाया जा सकता है, काफी कशमकश करने पर जीवनकी गाड़ी उससे ठेली जा सकती है। पर यदि न निर्मल प्रेम है, न ऐंद्रिक प्रेम ही, बल्कि दिखावा है, तब स्थिति बड़ी खराब होगी। इसलिए मनुष्यको अपने हृदयको अच्छी तरह टटोल कर देख लेना चाहिए कि उसमें कौन-सा भाव आंदोलित हो रहा है।

उपन्यासोंका आरंभ और अंत

उपन्यासोंका अत नायक-नायिकाके विवाहमें होता है। यथार्थमें आरभ विवाहसे तथा अत विवाहका अत हो जाने अर्थात् ब्रह्मचर्य-व्रत ले लेने पर हो। अन्यथा मानव-जीवनका वर्णन आरभ करके उसे विवाह पर समाप्त कर देना ऐसा ही है, जैसे किसी यात्राका वर्णन आरभ किया जाय और यात्रीके चोरोंके हाथ लुट जाने पर वह यकायक समाप्त कर दिया जाय।

बाइबिलमें विवाहका आदेश नहीं

बाइबिलमें विवाहका आदेश नहीं है। उसमें विवाहका जिक्र तक नहीं है, हां, उसमें दुराचार, विलासिता तथा जिनका विवाह हो गया है, उनके द्वारा तलाक दिये जानेकी कड़ी निंदाकी गई है। पर उसमें विवाह विधानका रचमात्र भी उल्लेख नहीं है, यद्यपि पादरी लोग ऐसा कहते हैं।

विवाह पाप है

डा. मेरा ख्याल है कि विवाह-विधान गैर-ईसाई है। ईसाने कभी विवाह नहीं किया। न उनके शिष्योंने विवाह किया। उन्होंने विवाहितोंसे कहा कि अपनी स्त्रियोंका अदला-बदल मत करो (अर्थात् तलाक मत दो), जिसकी मूसाने अनुमति दे रखी थी (मैथ्यू, अध्याय ३२)। अविवाहितोंसे उन्होंने कहा—यथासंभव विवाह मत करो (मैथ्यू, अध्याय १६, पद्य १०-१२)। विवाहितों, अविवाहितों दोनोंसे उन्होंने कहा कि स्त्रीको भोग-सामग्री मानना पाप है (मैथ्यू, अध्याय ५ पद्य २८)। (यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यही बात स्त्रियों पर भी लागू है)।

इन प्रवचनोंसे स्वभावतया हम निम्न निष्कर्षों पर पहुंचते है :—

यह न मानना चाहिए, जैसा कि लोग मानते है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुषको विवाह करना चाहिए। इसके विपरीत यह मानना चाहिए कि स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए अपनी पवित्रताकी रक्षा करना उत्तम है, जिससे अपनी सारी शक्ति ईश्वर-सेवामें लगा देनेमें कोई बाधा न पहुंचे।

किसी स्त्री या पुरुषका पतन (दूसरेसे शरीर-संबंध) एक गलती न समझी जाय, जो किसी दूसरे व्यक्तिसे विवाह करके सुधारी जा सकती है, न उसे शारीरिक आवश्यकताकी क्षम्य-पूर्ति माना जाय। इसके विपरीत यदि किसी पर-स्त्री या पर-पुरुषसे संबंध हो जाय तो उसे ही अटूट विवाह-बंधन मान लेना चाहिए (मैथ्यू, अध्याय १६, पद्य ४-६) और दंपतिको अपने पापसे मुक्त होनेके लिए अपने कर्तव्योंका पालन करना चाहिए।

विवाह विषय-भोगका साधन नहीं मानना चाहिए, जैसा कि इस समय माना जाता है; बल्कि एक पाप मानना चाहिए जिससे मुक्ति पानेकी चेष्टा करनी चाहिए।

इस पापसे मुक्तिका उपाय है कि पति पत्नी, दोनों विकारोंके अधीन होनेसे बचे इस कार्यमें एक दूसरेकी सहायता करें, तथा यथासंभव प्रेमी-प्रेमिकाका नहीं वरन भाई-बहिनका पवित्र संबंध आपसमें स्थापित करनेका प्रयत्न करें। दूसरे उन्हें अपने बच्चोंको सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाना

चाहिए, जो ईश्वरके भावी-सेवक हैं।

इस विचारधारामे, और इस समय समाजमे विवाहके विषयमे जो धारणाए प्रचलित है, उनमे बहुत अतर है। लोगोके विवाहहोते रहेगे, माता-पिता अपने लडके-लडकियोके विवाह तय करते रहेगे, पर उनका समस्त दृष्टिकोण बदल जानेसे इसमे महान अतर हो जायगा। तब विवाह विषय-भोगका क्षम्य साधन नही, बल्कि एक पाप माना जायगा। ईसाई-शिक्षाओपर चलने वाला एक व्यक्ति तभी विवाह करेगा, जब वह अनिवार्य हो जायगा, विवाह कर लेने पर वह विषय-भोगमे नही डूब जायगा, बल्कि वह विकारोका दमन करनेका प्रयत्न करेगा। माता-पिता अपने लडके-लडकियोकी आध्यात्मिक उन्नतिका ध्यान रखेगे और उनकी शादी करना आवश्यक नही मानेगे, (अर्थात् उनको पतनकी सलाह अथवा सुविधायें नहीं देगे), बल्कि उनको शादी तभी करगे जब यह देख लेगे कि वे अब इसके बिना पवित्र-जीवन बिता नही सकते अथवा शादी अनिवार्य हो गई है। विवाहित स्त्री-पुरुष बहुत अधिक बच्चे पैदा करनेकी इच्छा नही करेगे, बल्कि पवित्र-जीवन व्यतीत करनेकी चेष्टा करते हुए थोडे-से बच्चोसे खुश होगे। वे अपनी सारी शक्ति अपने बच्चोकी (और यदि हो सके तो दूसरोके बच्चोकी भी) शिक्षा-दीक्षामे लगायेगे, और इस प्रकार ईश्वरके भावी-सेवक तैयार करके स्वय ईश्वर सेवाके भागी बनेगे।

यह अतर वैसा ही होगा, जैसा अंतर जीवन-निर्वाहके लिए खानेवालोमे और रसनाका आनद लेनेके लिए खानेवालोमे है। पहले प्रकारकेव्यक्ति इसलिए अन्न ग्रहण करते है कि वह आवश्यकहै। वे भोजनकी तैयारी और उसे खानेमे यथासभव कम-से-कम समय देते है। दूसरे प्रकारके व्यक्ति नाना प्रकारके व्यजन तैयार करवानेमे, अपनी भूख बढाने तथा अधिक अन्न खानेमे अपना सारा समय लगा देते है। उनकी दशा उन रोमनो जैसी है, जो खानेके बाद केकी दवाई लेते थे, जिससे और अधिक भोजन कर सके।'

१-बिलकुल यही दशा आजकल कृत्रिम उपायोंसे संतति-निरोध करने वालोंकी भी है।

'ईसाई' विवाह नही हो सकता

'ईसाई विवाह' न तो कभी हुआ है और न हो सकता है, जैसे कि 'ईसाई' संपत्ति नही हो सकती. पर ईसाई-धर्मसे विवाह और संपत्तिका नियमन हो सकता है।

एक सच्चा ईसाई संपत्तिके संबधमे इस तरहका विचार रखता है— यद्यपि मैं अपनी कमीजको अपनी समझता हू, पर यदि कोई दूसरा इसे मागे तो उसे दे देना मेरा कर्त्तव्य है। इसी प्रकार विवाहके संबंधमे भी वह सोचता है—विवाह बंधन अटूट है, विवाहके बाद मैं अपनी पत्नी सहित दो बाते पूरी करनेकी चेष्टा करूगा. एक तो हम अपने बच्चो-को सुशिक्षित बनायेगे, दूसरे हम यथासंभव विकारोसे मुक्त होकर आपसमे शारीरिक संबंधके बजाय, आध्यात्मिक-प्रेम-संबंध स्थापित करेगे।

मनुष्य जब समझ लेगे कि विषय-भोग पतन है, पाप है तथा एक स्त्री-के साथ किया हुआ पाप दूसरी स्त्रीके साथ विवाह कर लेनेपर धुल नहीं जाता. बल्कि पापसे मुक्ति तभी होती है जब उसी स्त्रीसे अटूट विवाह-बंधनमे बंध जाय. तभी मनुष्य-जातिमे संयमकी मात्रा बढ़ेगी।

प्रेम और विवाह

.. जब मैं यह कहता हू कि विवाहित मनुष्योको अमुक-अमुक रीतिसे रहना चाहिए, तब मेरे कहनेका यह मतलब नहीं रहता कि मैं स्वयं इसप्रकार रहता आया हूं या रह रहा हूं। इसके विपरीत मैं अपने अनुभवसे जानता हू कि कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिए, क्योकि मेरा जीवन जैसा बीता है वैसा न होना चाहिए।

मैंने जो कुछ कहा है, उसमेसे मैं कुछ भी वापस नहीं लूगा, बल्कि उन बातोपर और जोर देना चाहूगा। हा, उन बातोको और समझाने की आवश्यकता अवश्य है। यह आवश्यकता इसलिए है कि हमारा जीवन ईसाके बताये मार्गसे इतना भिन्न है कि इस विषयमे यदि कोई सत्य बात कहता है तो हम चौंक उठते हैं (यह मैं अपने अनुभवसे कहता हू) हम उसी प्रकार चौंक उठते हैं, जिस प्रकार कोई धनी व्यापारी इस

सीखपर चौंक उठता है कि अपने परिवारके लिए धन इकट्ठा करना पाप है, गिरजाघरोंमे घण्टे लगवानेके लिए भी धन एकत्रित करना अनुचित है, धनका सदुपयोग उसका दान कर देनेमे है।

इस विषयमे मेरे जो विचार है, मैं लिखे देता हू:—

अविवाहित स्त्री-पुरुषोंमे प्रेमकी प्रबल भावना उत्पन्न होती है, इस भावनाके फलस्वरूप विवाह होता है, और विवाहके फलस्वरूप बच्चे पैदा होते है। स्त्री गर्भधारण करती है, और फलस्वरूप कामवासना मद पड जाती है—यदि पुरुष विषय-भोगको जायज मानना छोडदे तो यह बात तत्काल लक्षित होजाय और सभोग बद होजाय, जैसा कि गर्भावस्थामे पशुओंमे होता है। कामवासना मद पड जानेपर, उसके स्थानपर वात्सल्य भावकी, शिशु-सवर्द्धनके भावकी वृद्धि होती है। जब तक बच्चा दूध पीता रहता है, यही भाव प्रबल रहता है। जब बच्चा दूध पीना छोड देता है तब पुनः कामाकर्षण बढ़ जाता है (यही मनुष्य और पशुमे अतर है)।

यह प्राकृतिक स्थिति है, और यही होना चाहिए, भले ही हम इससे चाहे कितनी दूर हो। कारण, एकतो जब स्त्री गर्भवती होती है तब विषय-भोग अनुचित होता है;वह केवल कामवासनाकी तृप्तिके लिए होता है, वह अप्राकृतिक सबधोकी भाति हेय और लज्जाजनक होता है। इस अवस्थामे रमण करने वाला पुरुष पशुसे भी गया-बीता होजाता है,क्योंकि वह प्रकृति-के साधारण नियमोका भी अतिक्रमण करता है। दूसरे, सब लोग यह बात मानते हैं कि विषय-भोगसे मनुष्यकी शक्ति क्षीण होती है, सबसे अधिक उसकी आध्यात्मिक शक्तिका क्षय होता है। इस प्रकारके विषयभोगका समर्थन करने वाले कहेंगे—नियमशीलता बरती जाय, पर मनुष्य जब प्राकृ-तिक नियमोंको भग करता है तो नियमशीलता कहा बरती जा सकती है। सभव है नियमशीलता बरतनेसे पुरुषको कम नुकसान हो। (राम! राम! इस पाशविकताको नियमशीलता कहे?) पर उस स्त्रीके लिए तो यह असयम घोर दुखदायी होजाता है, जो गर्भवती है, अथवा जिसकी गोदमे बच्चा है।

मेरा ख्याल है कि स्त्रिया चिड़ी हुई तथा चिड़चिड़े स्वभावकी इसी

कारण होती है स्त्रियोको पुरुषोके बराबर लाने तथा उन्हे ईश्वरकी सच्ची सेविका बनानेके लिए यह आवश्यक है कि वे इस अनाचारसे मुक्त कोजाय। यह एक दूरवर्ती आदर्श है, पर है महान। मानव क्यो नही इसके लिए अमल करता ?

मेरी विवाहके चित्रको कल्पना इस प्रकार है—युवक और युवतीमे जब इस प्रकारका प्रेम होजाय कि उनके लिए अलग रहना असभव होजाय तो वे विवाह कर ले। बच्चा पेटमे आने पर वे ऐसे सभी कृत्योसे बचे, जो शिशु-सवर्द्धनके लिए हानिकर हो। इस अवस्थामे वे आजकलकी तरह एक-दूसरेको लुभानेका प्रयत्न न करे, इसके विपरीत प्रलोभनोसे बचे और आपसमे भाई-बहिनकी तरह रहे। (आज कल तो यह होता है कि पहलेसे बिगडे हुए पति महोदय अपनी बुरी आदते अपनी पत्नीमे भी उत्पन्न कर देते है, उसमे भी वैषयिकताका विष बो देते है। इसका फल यह होता है कि पत्नीको एक साथ प्रेमिका, कथित माता तथा बीमार चिडचिडे स्वभाव वाली स्त्री होनेका बोझ वहन करना पडता है)। पति महोदय प्रेमिकाके नाते अपनी पत्नीको प्यार करते है, माताके नाते उसकी उपेक्षा करते है तथा बीमार चिडचिडे स्वभाव वाली स्त्री होनेके नाते उससे घृणा करते है, यद्यपि उन्होने ही उसे बीमार तथा चिडचिडा बनाया है। मैं समझता हू कि अधिकाश परिवारोमे क्लेशका यही कारण है। इस प्रकार मैं पति-पत्नीके भाई-बहिनके रूपमे रहनेकी कल्पना करता हूं। पत्नी शिशुका पोषण करती है, साथ ही उसे प्रतिदिन नैतिक शिक्षा भी देती है। शिशुके बडे होजाने पर, माताका दूध पीना छोड देनेपर ही, पति-पत्नी एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं, और कुछ सप्ताहोके बाद फिर उनका जीवन शातियुक्त होजाता है।

मेरी समझमे प्रेमका आवेश इजिनके भापकी तरह होता है, जो बद करके रखी जाती है। इजनमे जब बहुत भाप इकट्ठा होजाती है, तब उसका सेफ्टीवाल्व स्वत हट कर भापको निकल जानेका रास्ता देदेता है, जिससे वह भाप इजिनको ही न तोड डाले। इसी प्रकार मनुष्यको भी प्रेमका वेग अधिक होजाने पर ही उसे मार्ग देना चाहिए, अन्यथा उसे रोक रखना

चाहिए। इंजनका वाल्व भी तभी हटता है जब भाप बहुत इकट्ठा होजाती है, अन्यथा वह मजबूतीसे बंद रखा जाता है। इसी प्रकार प्रेमका वाल्व भी अन्य समय मजबूतीसे बंद रखना चाहिए।'[१] 'जो उसे ग्रहण कर सके, करे'—बाइबिलके इन शब्दोंका मैं यही आशय लेता हूं। अर्थात् प्रत्येक मनुष्यको अविवाहित रहनेकी चेष्टा करनी चाहिए, पर विवाह कर लेनेके बाद उसे अपनी पत्नीके साथ भाई-बहिनकी तरह रहना चाहिए। जब भाप बहुत इकट्ठा होजायगा तो वाल्व अपने आप हट जायगा, पर हमें स्वयं उस वाल्वको नहीं हटाना चाहिए, जैसा कि विषयोपभोगको जायज आनंद माननेवाला व्यक्ति करता है, जब प्रेमका वेग हम रोक न सकें, तभी उसे मार्ग देना क्षम्य है।

'पर मनुष्य यह निर्णय कैसे करे कि अब वह अपने वेगको नहीं रोक सकता?'

इस प्रकारके न मालूम कितने सवाल हैं और वे अबूझ मालूम पड़ते हैं। पर यदि मनुष्य उनको दूसरोंके लिए नहीं, बल्कि अपने लिए और दूसरोंसे हल करवाने नहीं, बल्कि स्वतः हल करने बैठे तो वे अबूझ नहीं रहते। दूसरोंके लिए निश्चित मापदंड हैं। एक वृद्ध मनुष्य वेश्यागामी है, वह घृणित माना जाता है, वही बात एक जवान आदमी करता है, वह उतना बुरा नहीं माना जाता। एक वृद्ध पुरुष अपनी पत्नीसे काम चेष्टायें करता है, वह बुरा माना जाता है, पर उतना बुरा नहीं जितना एक युवा पुरुषका किसी वेश्याके साथ ऐसी चेष्टाएं करना। एक युवा पुरुष अपनी स्त्रीके साथ काम-चेष्टायें करता है, वह उससे भी कम बुरा माना जाता है, इसे शोभा-जनक मानते हैं। दूसरोंके लिए इसी प्रकारका मापदंड है और हम सब उसे जानते हैं, विशेष रीतिसे निर्दोष बालक और युवा पुरुष। पर अपने लिए दूसरा मापदंड होता है। प्रत्येक कुमार और कुमारीकी अंतरात्मा बतलायेगी (यद्यपि मिथ्या विचारधाराओंके फलस्वरूप उसकी आवाज बहुधा दब जाती है) कि पवित्रता एक अमूल्य धन है और उसकी सदा

१—मैथ्यू १६, १२।

रक्षा करनी चाहिए तथा इस धनकी हानि उसके मनमे शोक और लज्जा उत्पन्न करेगी। अतरात्मा पापकर्मसे पूर्व भी और पश्चात् भी कहती है कि यह बुरा है, लज्जापूर्ण है।

ससारमे विषय-भोगको अच्छा समझा जाता है, जैसे कि इंजनमे सेफ्टीवाल्वको हटाकर भापका निकल जाना। पर ईश्वरके नियमानुसार तो सत्यतापूर्ण जीवन बिताना, अपनी शक्तिका उपयोग ईश्वर सेवामे करना ही अच्छा है। अर्थात् मनुष्यको सब मनुष्योसे प्यार करना चाहिए, उसे अपने प्रियजनोको, अपनी पत्नीको अपना प्रेम सबसे पहले देना चाहिए, उसे सत्यमार्ग समझानेमे मदद देनी चाहिए, उसे अपने भोगका साधन बनाकर उसकी आध्यात्मिक शक्तियोको कुठित नही करना चाहिए। दूसरे शब्दोमे भापका सदुपयोग करना चाहिए और उसे रोक रखनेमे पूरा जोर लगा देना चाहिए।

'पर इस प्रकार तो मनुष्य जातिका अंत होजायगा?' सबसे पहिले, मनुष्य विषय भोगसे बचनेकी चाहे जितनी कोशिश करे, पर जब तक सेफ्टीवाल्वकी जरूरत है वह रहेगा और बच्चे पैदा होगे। दूसरे, हम झूठ क्यो बोले? जब हम विषयभोगको उचित ठहराते हैं, तब क्या हमे जाति रक्षाकी चिंता सताती है? हमे वस्तुत अपने सुखकी चिंता रहती है। हमे साफ-साफ कहना चाहिए। क्या मनुष्य-जाति ससारसे उठ जायगी? पशुओका, मनुष्योका अंत होजायगा? कितनी भयानक बात लगती है! प्रलयसे पहलेके सब प्राणी जब नष्ट होगए तो एक दिन मनुष्य-जातिका भी नाश हो जायगा (यदि हम अनतकाल और आकाशकी दृष्टिसे देखे)। हो जाने दो नाश। मुझे इन दो पैरके पशुओके नष्ट होजाने पर कोई दुःख नही होगा, जबतक ससारमे सच्चा जीवन और सच्चा प्रेम वर्तमान है। यदि विषय-भोगको छोड देनेके कारण मनुष्य जाति नष्ट होजाय तो भी सच्चा प्रेम कदापि नष्ट नही हो सकता। वह इतना बढ जायगा कि सच्चे प्रेमका रस चख लेने वालोके लिए मनुष्य जातिकी रक्षाकी कोई आवश्यकता नही रह जायगी।

ऐंद्रिक प्रेमका एकमात्र यही उद्देश्य है—कि मनुष्योंके इतने ऊंचे उठ जानेकी सभावना नष्ट न होजाय।

इन अस्तव्यस्त पक्तियोंको पढकर समझ लेना कि मैं क्या कहना चाहता हू, क्या कह पाया और क्या नही कह पाया। ये विचार आकस्मिक नही है ये मेरी अतरात्मासे, मेरे जीवनमे उत्पन्न हुए है। यदि ईश्वरने चाहा तो मैं इन्हे कभी और सुस्पष्ट रूपमे व्यक्त करनेकी चेष्टा करूंगा।

पशुओंसे भी गया बीता

पशुओंमें मैथुन तभी होता है जब सतानोत्पत्तिकी सभावना होती है। मूढ मनुष्य हर समय मैथुनमे रत रहता है और उसने यह सिद्धात तक आविष्कृत कर लिया है कि वह आवश्यक है। और इस आवश्यकताका आविष्कार कर लेनेके बाद वह स्त्रीके गर्भवती होने अथवा उसकी गोदमे बच्चा होनेपर भी उसे सताता है। स्त्री मातृत्व और पत्नीत्वके बोझके नीचे मर मिटती है। हमने स्वय इस प्रकारके अनाचारसे स्त्रियोंकी विचार-शक्ति नष्ट कर डाली है और इसके बाद हम उसके विचारहीन होनेकी शिकायत करते हैं, किताबो और कालिजोंकी सहायतासे उसके मानसिक विकासका प्रयत्न करते है। सच मानिए, इन बातोंमे मनुष्य पशुओंसेभी गया-बीता होगया है और उसे कम-से-कम इन बातोंमे अपनेको पशु जीवनकी सतह पर तो ले आना चाहिए। यह तभी सभव होगा जब वह ज्ञानपूर्वक जीवन आरभ करे अन्यथा उसकी बुद्धिका उपयोग अपने पाशविक जीवनको और विकृत बनानेमे होता रहता है।

बाइबिलका उत्तर

स्त्री-पुरुषका सबध कहा तक जायज है, यह ईसाई धर्मका उतना ही महत्वपूर्ण सवाल है, जितना सपत्तिका सवाल और मै इसका सदा मनन किया करता हूं। बाइबिलमें, अन्य सवालोंकी भाति, इस सवालका भी हल दिया है, परन्तु हमारा जीवन ईसाके बताये मार्गसे इतना दूर है कि हमारे लिए उस हलपर चल पानेकी बात कौन कहे, उसे समझ पाना भी दूभर होगया है। मैथ्यूके प्रवचनके १६वे अध्यायमे लिखा है-—सभी आदमी

इस उपदेशको ग्रहण नहीं कर सकते, इसे केवल वे ही ग्रहण कर सकते हैं जिन्हें वह दिया गया है। संसारमें कुछ जन्मजात नपुंसक होते हैं, कुछ ऐसे होते हैं, जिन्होंने स्वर्ग प्राप्तिके लिए अपनेको नपुंसक बना लिया है। जो इसको ग्रहण कर सके, करे (पद्य ११, १२)।

इन पद्योंका बहुत गलत अर्थ लगाया गया है। इनमें साफ-साफ बताया गया है कि मनुष्यको अपनी विषय-वासनाके संबंधमें क्या करना चाहिए? उसे किस दिशामें आगे बढ़नेका प्रयत्न करना चाहिए? आधुनिक भाषामें कहें कि मनुष्यका क्या आदर्श होना चाहिए? ईसाने इन प्रश्नोंका उत्तर दिया है—स्वर्ग-प्राप्तिके लिए नपुंसक बन जाओ। जो इस स्थितिको प्राप्त कर सका है, उसने सबसे श्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करली है, जिसने इस स्थितिको प्राप्त नहीं किया है, उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। 'जो इसको ग्रहण कर सके, करे।'

मेरे विचारसे मनुष्यको अपने कल्याणके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेका यत्न करना चाहिए। उसे सजग होकर ब्रह्मचर्यकी ओर बढ़ना चाहिए, तभी वह ईप्सित अवस्था तक पहुंच सकेगा। लक्ष्य-भेदके लिए लक्ष्यसे ऊपर दृष्टि रखना आवश्यक है। यदि मनुष्य विषय-प्रेम पर दृष्टि रखेगा (चाहे विवाहित जीवनके भीतर ही क्यों नहीं) तो वह निश्चय ही पतनके गड्ढेमें दुराचारके दलदलमें गिर जायगा। यदि मनुष्य पेटके लिए नहीं, बल्कि जीवन-रक्षाके लिए भोजन करेगा तो अन्नके प्रति उचित दृष्टिकोण रख सकेगा। पर यदि वह पहले से ही सुस्वादु भोजनके लिए तैयारी कर लेगा तो वह अवश्य रसना-लोलुपतामें फंस जायगा।

हृदय-मंथन

विवाहित जीवनके बारेमें मैंने बहुत-कुछ सोचा है और सोचता रहता हूं। जब कभी मैं किसी विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करता हूं, तब यही होता है। मुझे बाहरसे भी प्रेरणा मिलती रहती है।

परसों मुझे अमेरिकाकी एक डाक्टर, श्रीमती एलाइस स्टाकहम, एम० डी०की पुस्तक प्राप्त हुई है। यह पुस्तक स्वास्थ्य-विचारकी दृष्टिसे

उत्तम पुस्तक है। जिस विषयपर इतने दिनोंसे हमारा पत्र-व्यवहार चल रहा है; उसपर भी इसमे एक अध्याय है और लेखिका भी ठीक उसी नतीजे पर पहुची है, जिस पर हम पहुचे है। जब आदमी अधेरेमे रहता है और उसे अचानक कहीसे प्रकाश दिखाई पडता है तो उसे बडा आनद मिलता है। यह सोचकर बडा दुख होता है कि अहकारवश मैने एक पशु-का जीवन बिताया और अब उसे मिटाया नही जा सकता। दुख इसलिए होता है कि लोग कहेगे—तुम कब्रमे पैर लटकाये हो; तुम्हारे लिए यह सब कहना ठीक है, पर तुम्हारा पूर्व जीवन कैसा था? जब हम बूढे हो जायगे तो हम भी तुम्हारी जैसी बाते करेगे। पाप-कर्मका यही फल मिलता है—मनुष्य सोचता है कि मैं तो गया बीता हूं, मैं परमात्माका पवित्र सदेश प्रचारित करनेके सर्वथा अयोग्य हूं पर उसे यह ढाढ़स बधती है कि दूसरे लोग ऐसी गलती नही करेगे। परमात्मा तुम्हारा और सबका कल्याण करे।

अधिकार स्त्रीको है

'परिशिष्ट'से सबंधित विषयोपर विचार करते हुए मै सोचता हू कि पहले विवाहका अर्थ था, सपत्तिकी भाति स्त्री प्राप्त कर लेना। युद्धमे बदी बनाई गई स्त्रिया हरममे डाल ली जाती थी। पुरुष उन्हे अपनी विषय-वासना तृप्त करनेका खिलौना समझता था। एक विवाह प्रचलित होने पर स्त्रियोकी सख्या घट गई, पर स्त्रियोके सबधमे पुरुषका दृष्टिकोण नही बदला। सच्चा सबंध ठीक इससे उल्टा होना चाहिए। पुरुष हमेशा विषयोपभोगके योग्य रहता है और हमेशा सयम भी रख सकता है। स्त्री कुमारीत्व भग होजानेके बाद, प्रकृतिकी चाह होने पर अपने ऊपर बडी कठिनाईसे सयम रख पाती है, बहुधा दो सालमे एक बार उसमे इस प्रकारकी इच्छा प्रबल होती है। इसलिए विषय वासना तृप्त करनेका अधि-कार पुरुषको कदापि नही, स्त्रीको ही है। स्त्रीके लिए विषय-वासनाकी तृप्ति आनदोपभोग नही है, जैसा कि पुरुषके लिए है। उसके लिए तो विषय-वासना दुख, कष्ट-सहनका आमत्रण है। मैं समझता हूं, विवाहका रूप इस प्रकार होना चाहिए। दपति एक-दूसरेके प्रति आध्यात्मिक प्रेमके

दबनसे दबे रहे। वे प्रतिज्ञा करले कि उन्हें बच्चोकी आवश्यकता होगी तो वे आसनसे ही उत्पन्न करेंगे, अन्यथा ब्रह्मचर्य पालन करेंगे। सभोगकी प्रार्थना पुरुषकी ओरसे नही स्त्रीकी ओरसे होनी चाहिए।

स्त्रीका कर्त्तव्य

..सबसे पहले मैं तुम्हारा यह ख्याल गलत मानता हूं कि तुम्हे स्वय बच्चेके पिताने प्रार्थना नही करनी चाहिए। तुमने लिखा है—'मैं न चाहती हू न कर सकती हूं।' परन्तु जब बच्चे पैदा होजायं तो स्त्री और पुरुषका संबध अटूट होजाता है, पादरियोंके हाथसे विवाह-संस्कार चाहे हुआ हो या न हुआ हो। इसलिए तुम्हारे बच्चोके पिताकी चाहे जो स्थिति हो, वह चाहे विवाहित हो या अविवाहित, चाहे अच्छा हो या बुरा, मेरा ख्याल है कि तुम्हे उसके पास जाना चाहिए और यदि उसने अपने कर्त्तव्योकी उपेक्षाकी है तो तुम्हे उसे बताना चाहिए कि उसका कर्त्तव्य अपनी स्त्री तथा बच्चोकी सेवा करना है। यदि वह तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करके तुम्हे झिड़क दे, तुम्हारा अपमान करे तो भी ईश्वरके प्रति, अपने प्रति, बच्चोके प्रति और सबसे अधिक उसके प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसे हर तरहसे समझाओ कि वह अपने ही भलेके लिए अपने कर्त्तव्यका पालन करे। तुम उसे विनयके साथ, प्यारके साथ, आग्रहके साथ अपने कर्त्तव्यका भान कराओ, जैसाकि बाइबिलमें वर्णित विधानने किया था। यह मेरा सुविचारित तथा हार्दिक मत है। तुम इस सीखकी चाहे अवहेलना करो और चाहे उस पर चलो पर मैंने अपना कर्त्तव्य यही समझा कि मैं तुम्हें अपना विचार बता दूं।

सत्य प्रकट करनेका साधन

आध्यात्मिकतासे शून्य स्त्री-पुरुषोंका सम्मिलन परमात्माका सत्यको प्रकट करनेका साधन है। जो सबल है वे ब्रह्मचर्य पालनकी ओर बढते हैं, जो निर्बल हैं, वे सत्यकी किरणोका दर्शन करते हैं।

शंका-समाधान

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारी शकाओंका समाधान करनेकी चेष्टा

करूँगा, जो बहुधा हमारे हृदयोंमें उत्पन्न होती है और बिना समाधान पाये रह जाती है।

बाइबिलमें लिखा है कि पति और पत्नी दो नहीं एक ही प्राणी हैं। यह सत्य है, इसलिए नहीं कि ईश्वर-वाणी है, बल्कि इसलिए कि यह अनुभव सिद्ध है। जब स्त्री-पुरुषका संयोग होता है और फलस्वरूप संतान पैदा होती है, तब दोनों रहस्यपूर्ण ढंगसे एकाकार होजाते हैं और कुछ बातोंमें वे दो प्राणी न होकर, एक प्राणी होजाते हैं।

और इसलिए मेरा ख्याल है कि इन संयुक्त प्राणियोंको (अर्थात् दोनोंको) साथ-साथ संयम-पालनके लिए, विषय-भोगके त्यागकेलिए प्रयत्न-शील होना चाहिए, दोनोंमें जो अधिक उन्नत हो, उसे सरल जीवन, अपने उदाहरण तथा उपदेश द्वारा दूसरेको इस दिशामें प्रेरित करनेका प्रयत्न करना चाहिए। पर जब तक दोनोंकी समान दिशा न होजाय, उन्हें संयुक्त रूपसे अपने पापोंका बोझ ढोते रहना चाहिए।

वासनाके उद्रेकमें हम बहुधा ऐसे काम कर बैठते हैं, जिनसे हमारी अंतरात्मा घृणा करती है। इसी प्रकार संयुक्त जीवनमें दांपत्य-जीवन भी अपनेको अलग प्राणी न मानते हुए, हमें कभी-कभी ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनसे हमारी अपनी अंतरात्मा घृणा करती है। कहनेका मतलब यह है कि एकाकी जीवनकी भाँति विवाहित जीवनमेंभी प्रलोभनोंमें पड़ना पाप मानना चाहिए और उनके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए।

तुम्हारा यह कहना सही है कि मनुष्य परमात्माकी प्रतिमा है और उसे पापाचरणसे अपना शरीर-रूपी मंदिर दूषित न करना चाहिए, पर यह बात बाल-बच्चेवाले गृहस्थ पर लागू नहीं होती। संतानोत्पत्ति और उसके पालन-पोषणसे पापका बोझ बहुत कुछ हलका होजाता है, इसके अलावा गर्भावस्था और शिशु-संवर्द्धनके समय दीर्घकालके लिए पापसे मुक्ति मिल जाती है।

बच्चे पैदा करना अच्छा काम है, या बुरा, यह तर्क करना हमारा काम नहीं है। ईश्वरने पवित्रता-भंगके पापको धोनेकेलिए यह उपाय निकाला है और भला-बुरा वह जानता है।

यदि मेरी बात अप्रिय लगे तो क्षमा करना, पर मै कहूंगा कि तुमने जो यह लिखा है कि सतानोत्पत्तिसे मनुष्यकी घबडाहट अधिकाधिक बढती जाती है, उससे तुम्हारी निष्ठुर अहन्वृत्ति प्रकट होती है । तुम ससारमे आनद-मगल मनानेके लिए नही बल्कि अपने नियत कर्त्तव्यको पूरा करनेके लिए आये हो । अपना आत्म-कल्याण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है ही, इसके अलावा तुम्हारा कर्त्तव्य, यदि तुम पवित्रतामे अपने पतिसे आगे हो, तो उसे भी उस दिशामे आगे बढाना है । तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम स्वय यदि नियत-कार्य पूर्ण न कर सको तो ससारको ऐसे प्राणी दो जो उस कार्य-को पूरा कर सके ।

दूसरे, दपतिमे जो सबध होते है, उसमे दोनोका योग होता है । यदि पति-पत्नीमेसे एकमे अधिक वासना है तो दूसरा चाहे यह भले ही समझे कि वह पूर्ण रूपसे पवित्र है, पर यह सही नही है ।

मैं समझता हू कि तुम्हारे सबधमे भी यही बात लागू होती है । दूसरे-के पापके आगे तुम्हे अपना पाप दिखाई नही पडता । यदि तुम पूर्ण रूपसे पवित्र होती तो तुम्हारा पति कहा अपनी वासना-तृप्ति करता है, इसके प्रति तुम उदासीन होती—अर्थात् तुम उससे ईर्ष्या न करती, तुम उसके पतन पर केवल दया करती, पर ऐसी बात नही है ।

तुम क्या करो, इस सबधमे यदि तुम मेरी व्यावहारिक सलाह चाहती हो तो मै कहूंगा कि जिस समय तुम्हारे पतिमे तुम्हारे प्रति निर्मल प्रेमका प्राबल्य हो, तुम उसे बतादो कि तुम्हे विषय सबधसे कितनी यातना, कितना दुख होता है और तुम किस प्रकार इससे छुटकारा पानेके लिए तडप रही हो। यदि वह तुमसे इस बात पर सहमत न हो (जैसा कि तुम लिखती हो) कि पवित्रता अच्छी चीज है और वह तुमसे आग्रह करे तो उसके आगे सिर झुकाओ और जब बच्चे हो तो अपने पतिसे प्रार्थना करो कि वह गर्भावस्था और शिशु-सवर्द्धनके कालमे तुमसे दूर रहे । इसके बादभी यदि आवश्यकता पड जाय तो उसकी इच्छा पूरी करो और इसका फल क्या होगा, इसकी चिंता मत करो ।

इससे तुम्हारा, तुम्हारे पतिका और तुम्हारे बच्चों का कल्याण ही होगा। क्योंकि ऐसा करने पर तुम अकेले अपने ही सुख और शांतिकी साधना नहीं करोगी, बल्कि परमात्माकी इच्छा भी पूरी करोगी।

यदि मैंने कुछ गलत कहा हो तो मुझे क्षमा करना। परमात्माको साक्षी रखकर, मैंने वही लिखनेका प्रयत्न किया है जो इस विषयमें मैंने स्वय अनुभव और चिंतन किया है।

गुत्थी सुलझानेका उपाय

पति और पत्नीके बीच यदि कोई गाठ पड जाय तो वह विनम्रतासे ही दूर हो सकती है, जैसे सीते वक्त तागेमें गुत्थी पड जाने पर, धैर्य पूर्वक प्रत्येक गुत्थीका अनुशीलन करने पर ही वह गुत्थी सुलझती है।

सब समान रूपसे दुखी

. . . मालूम पडता है कि वह अपने विवाहित जीवनसे असतुष्ट है वह अपने विवाह-कर्म पर पछताता है, सोचता है—हे ईश्वर यदि विवाह न करता तो अच्छा था। विश्वास करो, सुख बाहरी अवस्थाओंपर निर्भर नहीं करता। एक राक्षसकी शादी एक देवीसे हो जाती है, एक दिव्य पुरुषकी शादी राक्षसीसे हो जाती है, दोनो ही अपने विवाहित जीवनसे असतुष्ट होते हैं। अधिकाश व्यक्ति, अधिकाश नहीं, सभी व्यक्ति, अपने विवाहसे असतुष्ट रहते हैं। सभी सोचते हैं कि हमसे दुखी कोई न होगा। अतः सभीकी स्थिति समान है।

स्त्री को भोग-वस्तु न मानो

यदि नर स्त्रीको, चाहे वह नेरी पत्नी क्यो न हो, भोग-वस्तु मानता है तो नर व्यभिचार करता है। अपने श्रमका पसीना बहाकर जीवनयापन करने वालेकेलिए विवाहका उद्देश्य, सुखोपभोग नहीं, एक सहायक, एक उत्तराधिकारी प्राप्त करना होता है। परतु वैभवकी गोदमे लोटनेवालोंके लिए विवाह दुराचार है।

अनाथ बच्चे

बागवानकी स्त्रीके बच्चा हुआ है। बूटी दाई फिर आयी और बच्चे-

को ले गई. ईश्वर जाने कहा ।

सबको बड़ा क्रोध हो रहा है । यदि संतति-निरोधके उपायोका अव-लम्बन किया जाय तो चिंता नहीं, पर इसे धिक्कारनेके लिए तो शब्द ढूंढे नहीं मिलते ।

आज मालूम हुआ कि बूढी दाई बच्चेको लौटा लाई है । रास्तेमे उसे अन्य दाइया मिली. जो इसी प्रकार बच्चे लिये जा रही थी । एक बच्चेके मुंहमे स्तन बहुत ज्यादा दे दिया गया । बच्चेने जैसे ही स्तन मुह-मे दबाया वह उसके गलेमे चला गया और वह दम घुटकर मर गया । मास्कोके नाजायज बच्चोके अनाथालयमे एक दिनमे ऐसे पचीस बच्चे लेजाय गए थे । उनमेसे ६ बच्चे लौटा दिये गए जो या तो नाजायज न थे या बीमार थे ।

'एन ने आज सुबह बागबानकी स्त्रीको फटकारा । उसने अपने पति-की वकालत करते हुए कहा कि ऐसी गरीबी तथा अनिश्चित अवस्था मे वह बच्चेको पाल नहीं सकती इसके अलावा उसके दूध नहीं होता । एक शब्द-मे बच्चे उसके लिए असुविधाजनक हैं ।

इससे पहले मैं तीन अनाथ बच्चोको पालनेमें झुला रहा था । बच्चोकी पैदाइश बेहद बढ गई है । वे बड़े होने पर शराबखोर, सिफलिससे पीडित होने तथा जगली बन जानेकेलिए पैदा होते हैं ।

लोग एक तरफ तो मनुष्यो और बच्चोकी जान बचाने और दूसरी तरफ उनका नाश करनेके उपाय करते है। पर जंगली पशुओंको पालन ही क्यो किया जाय ? इससे लाभ क्या ?

पर उन्हे मारना न चाहिए और न उनका पालन बंद कर देना चाहिए, बल्कि उन्हे जगली पशुसे मनुष्य बनानेमे सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, इससे कल्याण होगा । और यह बातोंसे नही, बल्कि स्वय उदाहरण प्रस्तुत करने ही हो सकता है ।

पाप-मोचनके उपाय

यदि उनका पतन हो गया है तो उन्हे जानना चाहिए कि उनके पाप

मोचन के ये ही उपाय है— (१) वासनाके जाल से अपनेको निकाले, तथा (२) बच्चोंको शिक्षा देकर उन्हे ईश्वरका सच्चा सेवक बनावें।

नव-दंपतिको सीख

प्रिय 'एम' और 'एन' तुम्हारे विवाहसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर तुम्हे सुख-शाति और प्रेम प्रदान करे, इससे अधिककी तुम्हे आवश्यकता नही।.....पर प्रिय मित्रो, मुझे क्षमा करना, मैं इतना जरूर कहूंगा—तुम दोनो सावधान रहो, अपने पारस्परिक सबधोमे चिडचिडापन और दुरावको कभी मत आने देना। एक शरीर और एक प्राण होना सरल कार्य नहीं है। इसके लिए बहुत प्रयत्न करना पडता है। पर पुरस्कार भी उतना ही बडा मिलता है। इसका उपाय यदि पूछो तो मैं एक ही उपाय जानता हू। विषय-वासनाके बहावमे कभी इतने मत बह जाओ कि व्यक्तिके प्रति जो प्रेम और समान प्रदर्शित करना चाहिए, उसे भूल जाओ। पति और पत्नीका सबध रखो, पर एक अजनबी, एक 'पडोसी के प्रति जैसा बर्ताव रहता है, उसे आपसमे बनाये रखनेकी सदा चेष्टा करे, गह सबध प्रमुख रहे।

आपसमे झगड़ेका कारण

एक दूसरेके प्रति आसक्ति न बढाओ, बल्कि आपसमे कटुता न उत्पन्न होने देनेके लिए अपनी सारी शक्ति सावधान रहने, अधिक सवेदनशील बननेमे लगाओ। आपसमे झगडना बडो भयकर आदत है। पति-पत्नीमें इतनी घनिष्ठता होती है, इतने प्रकारके सबध होते है कि हम उनके प्रति सजग रहना छोड देते है, जैसे हम अपने शरीरके बारेमे सजग रहना छोड देते हैं। और इसीसे सब खराबी पैदा होती है।

दंपतिमे मेल कैसे रहे

उपन्यासोंमे दपति-सुखका जैसा वर्णन मिलता है, अथवा मनुष्य जैसी कामना करता है उसके अनुसार दपतिके सुखी होनेकेलिए आवश्यक है कि दोनोका पूरा मेल हो। मेल तभी होसकता है, जब ससार जीवनके [illegible] और विशेष रीतिसे बच्चोके सबधमे पति-पत्नीके विचार एक हो। पर

पति-पत्नीकी रुचि और संस्कृति बिल्कुल एक समान होना असंभव है. एक ही पेड़की दो पत्तियाँ समान नहीं होतीं, अतः मेल (और सुख) तभी हो सकता है जब दोनोंमेसे एक अपने विचार दूसरेके अधीन कर दे।

यही मुख्य कठिनाई है। दोनोंमे जो अधिक ज्ञानवान होगा, वह कोशिश करने पर भी अपनेको दूसरेके अधीन नहीं कर सकेगा। मेल रखनेके लिए वह खाना-पीना और सोना छोड़ सकता है. वह बागवानी कर सकता है, पर जिसे वह पाप मानता है, अनुचित मानता है,अधर्म मानता है वह कार्य नहीं कर सकता। पति-पत्नी अपने दिलमे भले ही समझते हों कि हमारा सुख हमारे मेल-मिलाप पर निर्भर है, बच्चोंको यथारीति शिक्षा देनेके लिए हमारा मेल-मिलाप आवश्यक है, पर पत्नी कभी अपने पतिको शराबखोरी और जुआखोरीकी अनुमति नहीं दे सकती और पति कभी अपनी पत्नीको अनुमति नहीं दे सकता कि पत्नी नाच-गानमे मस्त रहे और बच्चे वाहियात बात सीखे।

मेल-मिलापके लिए. सुख-शांति और जीवन-कल्याणके लिए (जो प्रेम और एकताका दूसरा रूप है), यह आवश्यक है कि दोनोंमे जो अपनेको (विद्या-बुद्धिमे) छोटा समझता हो, वह न केवल घरेलू मामलोंमे, खाने-पीने. पहनने. रहने आदिके मामलोंमे, बल्कि जीवनका क्या उद्देश्य हो, जीवन किस तरह व्यतीत किया जाय, इन सब बातोंमे भी अपनेको (विद्या-बुद्धिमे) अपनेसे बड़ेके अधीन कर दो।

पति. पत्नी. बच्चे और साथमे रहने वाले सब व्यक्तियोंके सुख-शांति तथा कल्याणके लिए आपसमे मेल परमावश्यक है। पति-पत्नीकी अनबन, उनकी कलह और उनके झगड़े. न केवल उनके लिए, बल्कि उनके बच्चोंके लिए भी दुखदायी होते हैं. इनसे जीवन नरक बन जाता है। इनसे बचनेके लिए जरूरी है कि दोनोंमे एक अपनेको दूसरेके अधीन करदे।

मेरा तो खयाल है कि पति-पत्नीमेसे एक जब अनुभव करता है कि दूसरा मुझसे अधिक ऊंचे स्तर पर है, वह साधु प्रकृतिका है तो उसे अपनेको उसके अधीन कर देनेमे आनंद मिलता है।

मानवताकी सेवा और परिवारकी सेवा

पति-पत्नीमें मेल-मिलापके लिए यह जरूरी है कि यदि संसार तथा जीवनके संबंधमें उनके विचार एक न हों तो दोनोंमें जो कम विचारशील हो, वह अपनेको अधिक विचारशीलके अधीन कर दे।

मनुष्यको चाहिए कि वह मानवता और अपने परिवारकी सेवाको एकाकार करदे। अपने परिवारकी सेवा, परिवारके लोगोंकी शिक्षा, बच्चोकी शिक्षाको ही समस्त मानव-जातिकी सेवाका साधन बनाले। धर्म-विवाह जो संतानोत्पत्तिके रूपमें फलीभूत होता है, अपरोक्ष रूपमें ईश्वर-सेवा ही है, माता-पिता अपने बच्चोंके लिए ईश्वरकी सेवा करते हैं। इसीलिए विवाहसे हमें सुख-शांति मिलती है। उसके लिए हम अपना कार्य दूसरों पर सौंप देते हैं। 'यदि मैंने अपना समस्त कर्त्तव्य पूरा नहीं किया तो मेरे बच्चे मेरा स्थान लेंगे और उसे पूरा करेंगे।'

पर बच्चे ऐसे होने चाहिए कि वे कार्य पूरा कर सकें। उन्हें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वे ईश्वरके कार्यके बाधक नहीं, साधक बनें। यदि मैं आदर्श सिद्ध न कर सकूं, तो मुझे शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए कि मेरे बच्चे सिद्ध कर सकें। इस रीतिसे संपूर्ण शिक्षा-क्रम बन जाता है, शिक्षा धर्म सम्मत होजाती है। इस रीतिसे मनुष्य अपने परिवारकी सेवाको मनुष्य-जातिकी सेवासे एकाकार कर देनेके योग्य बन जाता है।

नवीन शिशुके जन्मका रहस्य

मैं नवजात इवान[1]का स्वागत करता हूं। वह कहांसे आया है? क्यों आया है? कहां आया है? वह कौन है? जो लोग विज्ञानके उत्तरसे सन्तुष्ट होजाते हैं, उनके लिए ठीक है। पर जो लोग विज्ञानके उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं होते वे विश्वास करते हैं कि नवीन शिशुका जन्म बहुत अर्थ-पूर्ण होता है हम जितने ही अंशोंमें शिशुके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं यह अर्थ उतने ही अंशोंमें हमारी समझमें आता है।

१—अपने एक मित्रके परिवारमें बालकका जन्म होनेकी ओर संकेत है।

स्त्री-परित्याग पाप है

...विवाहित पुरुषोंको या तो अपने बीवी-बच्चोंको छोड देना चाहिए; जिसकी सलाह नहीं दी जा सकती, या एक जगह पर बस जाना चाहिए। दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिए बडा दुखदायी होता होगा, जो (मुझे क्षमा करें) ईश्वर-प्रेमसे नहीं, बल्कि पति-प्रेमसे खिचकर पवित्र जीवन व्यतीत करती है (और यह उन बेचारी स्त्रियोंके लिए बडा कष्टदायी होताहै) अतः मेरी समझमें उन पर दया करनी चाहिए। पति-पत्नी एक जगह अपनी गृहस्थी जमा पाते हैं कि अचानक उन्हें घरबार उठाकर दूसरी जगह कूच करना पडता है। यह सब उनकी शक्तिके बाहर होता है और इससे बडे परिश्रमसे तैयार की गई इमारत ढह जायगी। मैं जानता हूं कि तुम कहोगे, ईसाका आदेश है कि मनुष्यको अपने परिवारके साथ नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने बीवी-बच्चोंको छोड देना चाहिए, परन्तु मेरा खयाल है कि ऐसा परस्पर अनुमतिसे करना चाहिए, और ईसाका इससे भी बडा आदेश है—'पति और पत्नी दो नहीं एक शरीर है' तथा 'जिन्हें परमात्माने एक कर दिया है, उन्हें मनुष्य जुदा-जुदा नहीं कर सकता।' तुम्हारे जैसे सुखी और स्वस्थ मनुष्यको शादी नहीं करनी चाहिए, पर शादी करने और बाल बच्चे वाले होजानेके बाद, अपने किये पापका परिणाम भोगना चाहिए। मेरी समझमें पतियोंसे अपनी पत्नियोंको छोड देनेकी आज्ञा या सलाह देना महापाप है। यह सच है कि शुरूमें यह ख्याल होता है कि स्त्री और बच्चोंको अलग रखकर परमात्माकी अधिक सेवाकी जा सकती है, पर यह भ्रम है। (यदि तुम पूर्णरूपसे पवित्र तथा निष्पाप हो तब तो तुम्हारे लिए ऐसा सम्भव है)। दूसरोंको अपनी स्त्री और बाल-बच्चे छोड देनेका उपदेश न देना चाहिए, क्योंकि इससे पाप करने वाले अर्थात् विवाह कर लेनेवाले लोगोंको अपनी स्थिति बडी निराशापूर्ण प्रतीत होगी। यह अच्छा नहीं होगा। मेरी समझमें पापी तथा निर्बल भी ईश्वरकी सेवा कर सकते हैं।

एक बार विवाहका पाप कर लेनेके बाद मनुष्यको ईसाई ढगसे जीवन बिताते हुए अपने पापका फल भोगना चाहिए। उसे एक दूसरा पाप करके

अपनेको पहले पापसे मुक्त करनेकी चेष्टा न करनी चाहिए, बल्कि अपनी अवस्थामे सतुष्ट रह कर अपनी सारी शक्तिसे ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए।

वंश-रक्षाकी चिंता छोड़ दो

हा, ईसाने परमात्माकी सेवाका जो आदर्श रखा है, उसमे जीवन तथा वश-रक्षाकी चिंता त्याग देनेके लिए कहा गया है। अभी तक इन चिंताओं-से मुक्त रहनेका प्रयत्न करनेसे मनुष्य-जातिका नाश नहीं हुआ। आगे क्या होगा, मैं नहीं जानता।

स्त्री-पुरुषके संबंधमे गड़बड़ी

'अपने समय की विचित्रताओंके सबधमे मेरी कुछ कहनेकी इच्छा नहीं होती। परन्तु सभी ईसाई देशोंमे, क्या गरीब, क्या अमीर, पति और पत्नी, स्त्री और पुरुषका सबध कुछ विचित्र है। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि स्त्रियोंके कारण, पति और पत्नीका सबध बिगड गया है, वे पुरुषोंके साथ न केवल उद्धत, बल्कि घृणा-पूर्ण व्यवहार करती है। वे दिखा देना चाहती है कि वे पुरुषोंसे किसी बातमे कम नहीं है। उनमे नैतिक भावनाका अभाव होता है, और यदि होता भी है तो मातृत्वकी भावना उसे दबा देती है।

मेरा ख्याल है कि स्त्री और पुरुष समान है, पर उनके विवाह कर लेने और माता बन जानेके बाद, स्वभावतया उनके कार्यक्षेत्र बट जाते है। मातृत्व भारमे स्त्रीकी इतनी शक्ति खर्च हो जाती है कि उसमे नैतिक पथ-प्रदर्शनकी शक्ति नहीं रह जाती, यह कार्य स्वभावतया पति पर आ पडता है। सृष्टिके आदिसे यह क्रम चलता आया है . . .।

पर आजकल यह स्वाभाविक क्रम गडबडा गया है। कुछ तो इसलिए कि पुरुषोंने अपने अधिकारका दुरुपयोग किया, उन्होंने बलपूर्वक स्त्रियों-को अपने पथ पर चलनेके लिए विवश किया, कुछ इसलिए कि स्त्रियोंने अब ईसाई धर्म छोड़ दिया है। . . . स्त्रियोंने भयसे पुरुषोंकी आज्ञाओं-का पालन करना छोड़ दिया है और अभी स्वेच्छासे पुरुषोंके मार्गदर्शनको कल्याणकारी समझकर उनका अनुकरण करना शुरू नहीं किया है। इससे समाजके सभी क्षेत्रोंमे गडबड़ी दिखाई पड़ती है।

दोनों एक-दूसरेको नही समझते

स्त्रियो और पुरुषोको मुख्यतया इसलिए दुखी देखा जाता है कि दोनो एक-दूसरेको समझते नही ।

पुरुष यह नही समझ पाते कि स्त्रीके लिए बच्चे कितने महत्वपूर्ण होते है और स्त्री यह नही समझ पाती कि पुरुष अपने सामाजिक और धार्मिक कर्तव्योके पालनको कितना महत्व देता है ।

स्त्रीकी समझ

पुरुष यद्यपि स्वय बच्चे नही जनते, पर वे समझते हैं कि बच्चोको पेटमे रखना और जन्म देना कितना कष्टदायी और दुखदायी होता है । पर ऐसी विरली स्त्रिया होगी जो यह समझ सके कि नये आध्यात्मिक जीवन-को जन्म देना कितना कठिन और गुरुतर कार्य है । वे क्षण भरके लिए यह अनुभव करती है और तुरत भूल जाती हैं। जैसे ही उनकी कोई अपनी बात उठती है,वह चाहे कोई घरेलू बात हो या पहनने-ओढ़नेकी, वे पुरुषोके दृढ जीवन-सिद्धातोको भूल जाती है और अपने रुपये-पैसे,कपडेकी बातके आगे वे जीवन-सिद्धात उन्हे अवास्तविक और हवाई मालूम पडने लगते हैं ।

परिवार और पत्नी

मैं सोचता हू कि पति और पत्नीमे कलहका प्रधान कारण पारिवारिक जीवन-क्रमके सबधमे उनके भिन्न-भिन्न विचार होते हैं ।

एक स्त्री कभी यह स्वीकार नही कर सकती कि उसका पति होशियार और व्यवहार चतुर है, क्योकि यदि वह यह स्वीकार कर ले तो उसे पति-की सभी बाते माननी पडे ।

यदि मैं अब 'क्रूजर सोनाटा' लिखता तो उसमे यह बात मुख्य रूप-से दिखाता ।

शासन स्त्रियोंके हाथमे

अततोगत्वा वही शासन करते है, जिन पर जोर-जबर्दस्ती की गई है, अर्थात् जिन्होने अप्रतिरोधके नियमका पालन किया है । आज स्त्रिया अधिकारोके लिए लड रही हैं, पर वे वास्तवमे शासन करती हैं,क्योंकि उन-

पर जोर-जबर्दस्ती की जाती रही है। सत्ताएं पुरुषोंके हाथमें हैं, पर लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है। लोकमत कानूनों और फौजोंसे लाखों गुना अधिक शक्तिशाली होता है। लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है, इसका सबूत यह है कि न केवल गृह-व्यवस्था, भोजन-व्यवस्था आदि स्त्रियोंके अधीन है; बल्कि धनका व्यय और अतः मानव-श्रमका नियन्त्रण भी स्त्रियोंके हाथमें है। कला-कृतियों और पुस्तकोंकी सफलता, शासकोंका चुनाव तक लोकमतके हाथ रहता है और लोकमत स्त्रियोंके हाथमें है।

किसीने कहा है कि स्त्रियोंको नहीं, पुरुषोंको स्वाधीनता प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

पति : अपनी पत्नीकी नजरोंमें

एक सुंदर स्त्री अपने मनमें कहती है—'मेरा पति चतुर है, विद्वान् है, यशस्वी है, धनवान है, महान है, नीतिवान है, पवित्र है, पर मेरे निकट मूर्ख, अज्ञानी, दरिद्र, क्षुद्र तथा अनीतिवान है—वह मेरे प्रलोभनमें आ जाता है, अतः उसकी विद्या, बुद्धि और सब कुछ वृथा है।' यह असंयम पत्नीको गिराता है, उसका नाश करता है।

जीवनकी व्यर्थताका कारण

हमारे जीवनकी व्यर्थताका कारण स्त्रीका हम पर हावी होना है, स्त्री हमारे असंयमके कारण हम पर हावी होती है, अतः जीवनकी व्यर्थताका कारण हमारा असंयम है।

'क्रूजर सोनाटा'की कहानी

कहानी ('क्रूजर सोनाटा') लिखते समय मैंने बराबर उसमें निम्न नाटकीय स्थिति उत्पन्न करनेकी चेष्टा की—पति पत्नीकी विषय-लोलुपता बढ़ाता है। डाक्टर बच्चे न पैदा करनेका आदेश देते हैं। पत्नीमें लोलुपता भर गई है फिर कलाकृतियां उसकी लोलुपता बढ़ाती हैं। वह कैसे अपनेको रोके? पतिको जानना चाहिए कि उसीने उसका पतन किया है। जिस समय वह उससे घृणा करने लगा वह उसका नाश कर चुका था। इसके बाद तो वह बहाना ढूंढता रहा और वह उसे मिल गया।

घरेलू काम

यदि प्रश्न यह है कि पति अपने बच्चोके पालन-पोषण तथा उनकी शिक्षा आदिके भारसे मुक्त होना चाहताहै, यदि वह बच्चोको सुलाने, नहलाने, कपडे पहनाने, उनका और दूसरोका भोजन बनाने, कपडे सीने आदि कार्योंसे मुक्त होना चाहता है तो अत्यत अनुचित, निर्दयतापूर्ण और अन्याय है।

आज भी बच्चोको जन्म देने और उनका पालन करनेका अधिकाश भार स्त्री पर पडता है, इसलिए यदि पति अवकाशके समय अन्य कार्योंका भार अपने ऊपर ले ले तो वह अस्वाभाविक न होगा। यदि हमारे समाजमे सारा कार्यभार निर्बल आज्ञाकारी स्त्रीपर लाद देनेकी बर्बर प्रथा न चल गई होती तो ऐसा ही होता। यह बर्बर प्रथा हमारे समाजमें ऐसी घुस गई है कि हम यद्यपि स्त्रियोको पुरुषोके समान मानते हैं, उदार और सुसस्कृत लोग कहते हैं कि स्त्रियोको कालिजमे प्रोफेसर आदि होना चाहिए, यदि किसी महिलाका रूमाल गिर जाताहै तो हम अपनी जानपर खेलकर उसे उठाने दौडते हैं, पर हम अपने बच्चोके मलमूत्रके कपडे धोना, पत्नीके बीमार होने या थक जाने या बच्चेको खिलानेसे ऊबकर कुछ पढने या सोचनेके लिए अवकाश चाहने पर उनके कपडोकी मरम्मत स्वय करना, अपना काम नही समझते।

इस संबधमे लोकमत इतना पतित है कि इस प्रकारके काम हास्यास्पद माने जायगे, उन्हे करनेके लिए बडे पुरुषार्थकी आवश्यकता है।

सो इस विषयमे मैं तुमसे पूरी तरह सहमत हूं, मैं तुम्हारा बडा आभारी हू कि तुमने मुझे इस विषयका अपने निकट स्पष्ट करनेका मौका दिया।

लड़कियोंकी शिक्षा

स्त्री-स्वातन्त्र्यका सच्चा अर्थ यह है—कोई काम स्त्रियोका विशेष कार्य मत मानो, जिसे तुम्हे स्वय करनेमे लज्जा आती हो, बल्कि अपनी सारी शक्तिसे उनकी सहायता करो, क्योकि वह अबला है, जितना हो सके उतना उनका कार्य हलका करनेकी कोशिश करो।

इसी प्रकार लड़कियोकी शिक्षाके संबंधमें हमे यह ख्याल रखना

चाहिए कि वे भविष्यमे माताए बनेगी और उन्हे अवकाश नही मिलेगा, अतः उनके स्कूल ऐसे होने चाहिए, जहा वे पहलेसे इसके लिए शक्ति तथा ज्ञान अर्जित कर सके।

भयंकर बुराई

यह सच है कि स्त्रियो और उनके कार्यके बारेमे हमारे समाजमे बहुतसी हानिकारक तथा बुरी धारणाए प्रचलित होगई है और हमे उनके खिलाफ अपनी आवाज उठानी चाहिए। परतु मेरी समझमे जो समाज स्त्रियोके लिए पुस्तकालय और सस्थाए खोलता है, वह इसके लिए झगड न सकेगा।

स्त्रियोको कम वेतन मिलता है, पुरुषोको अधिक, इससे मुझे गुस्सा नही आता, क्योकि मजूरी काम पर दी जाती है। पर मुझे गुस्सा इस पर आता है कि स्त्री बच्चेको कोखमे रखती है, उसे दूध पिलाकर उसका पोषण करती है और ऊपरसे खाना पकानेका बोझ भी उसके सिर पर डाल दिया जाता है—वह चूल्हेमे तपे, बर्तन मले, कपडे धोये, घरकी झाड़ू-बुहार करे और फिर सीये-पिरोये। इतने कामोका बोझ केवल स्त्रीपर ही क्या डाल दिया जाता है। एक किसान, मजदूर या सरकारी मुलाजिम खुद तो बैठकर मजेसे धूम्रपान करता है और घरका सारा काम स्त्रीपर छोड देता है। भले ही वह गर्भवती हो या बीमार हो, पर उसे ही चूल्हे-के सामने तपना पड़ता है, कपडे धोने पडते है और रातभर बच्चेको रखना पडता है। यह सब उसे समाजमे प्रचलित इस कुधारणाके फलस्वरूप करना पडता है कि ये स्त्रियोके काम है।

यह भयकर बुराई है। इससे असहाय स्त्रियोमे नाना रोग उत्पन्न होते है, उनकी तथा बच्चोकी बुद्धि कुंठित होजाती है और वे असमयमे बूढी होजाती है तथा मर जाती है।

एक ही उपाय

स्त्रिया सदासे पुरुषोका अधिकार मानती आयी है। गैर-ईसाई देशोमे भी ऐसा ही था। पुरुष शक्तिशाली होनेके कारण शासन करते थे। सारे ससारमे यही होता आया है और आज भी हजार पीछे ९९९ पुरुष ऐसा

ही करते है। ईसाई धर्मका उदय हुआ और उसने मनुष्यकी पूर्णता पशु-बलमे नहीं, प्रेममे मानी। इस प्रकार उसने तमाम गुलामो और स्त्रियोको स्वाधीन बनाया। परंतु गुलामो और स्त्रियोकी स्वाधीनता विपत्ति न बने, इसके लिए आवश्यक है कि वे ईसाई धर्म अगीकार ले अर्थात् अपना जीवन ईश्वर तथा मनुष्य जातिकी सेवाके लिए अर्पित कर दे। पर गुलाम और स्त्रिया स्वाधीन तो हो गई है, पर उन्होने ईसा धर्म अगीकार नहीं किया है। इसीलिए वे ससारके लिए भयानक बनी हुई हैं, वे ससारकी सारी विपत्तियोकी जड हैं। तब क्या किया जाय? क्या उन्हे फिर गुलाम बना दिया जाय? पर यह असभव है, क्योकि ऐसा कोई करेगा नहीं। ईसाई दूसरेको गुलाम नहीं बना सकते और गैर-ईसाई गुलामीको कबूल नहीं करेंगे, वे लडेगे। सच तो यह है कि वे आपसमे लड रहे है और ईसाइयोको अपना गुलाम बना रहे हैं। तब क्या किया जाय? केवल एक ही उपाय है—उन्हे ईसाई धर्मकी ओर खींचा जाय, उन्हे ईसाई धर्ममे दीक्षित किया जाय। और ऐसा अपना जीवन ईसाके बताये मार्ग पर ढाल कर किया जा सकता है।

अधःपतनकी ओर

जो स्त्रिया पुरुषोका काम और पुरुषोके समान स्वाधीनता मागती हैं, वे नहीं जानतीं कि वे अज्ञात रूपसे स्वच्छंदचारिताकी माग कर रही हैं और फलत वे परिवारके दायरेको तोडकर अध:पतनकी ओर जा रही हैं, जबकि वे समझती हैं कि वे उन्नति कर रही हैं।

उलटी सीख

मैं अन्य बातोके साथ स्त्रियो और विवाहके संबंधमे बहुत-कुछ सोचता रहा हू और अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूं। निश्चय ही मैं छोटी-छोटी बातो (महिला विद्यापीठ आदि)के बारेमे नहीं, बल्कि स्त्रियोके महत्त्वके बारेमे सोचता रहा हू। इस सबधमे बहुतसी उलटी सीखे शिक्षित महिलाओंको दी जारही है। उदाहरणके लिए यह उपदेश दिया जारहा है कि स्त्रियोको अपने बच्चोको दूसरे बच्चोसे अधिक प्यार न करना

चाहिए। स्त्रियोंके विकास, पुरुषोंसे स्त्रियोंकी समानता आदिके संबंधमें बहुत-सी गोलमाल और भ्रमपूर्ण बातें प्रचारितकी जाती हैं, पर यह उपदेश सर्वत्र दिया जाता है कि स्त्रियोंको अपने बच्चेको दूसरोंके बच्चोंसे अधिक प्यार न करना चाहिए। यह इन सब उपदेशोंका सार कहा जा सकता है। पर यह उपदेश बिलकुल गलत है।

स्त्री-पुरुषके कर्त्तव्य

प्रत्येक स्त्री-पुरुषका कार्य मानव-जातिकी सेवा है। मैं समझता हूं कि सभी नीतिवान पुरुष इस कथनसे सहमत होंगे। इस कार्यको पूरा करनेके स्त्रियों और पुरुषोंके साधन अलग-अलग हैं। पुरुष अपने शारीरिक, मानसिक तथा नीति-सम्मत कार्योंसे सेवा करता है। वह विविध रूपोंसे सेवा करता है। बच्चे पैदा करने और उन्हें पालनेके कामको छोड़कर अन्य सभी कामोंको वह अपनी सेवाका क्षेत्र बना सकता है। स्त्री भी सब क्षेत्रोंमें सेवा कर सकती है, पर उसके शरीरकी बनावटने एक सेवा-कार्य विशेष रीतिसे उसके लिए नियत कर दिया है, जो पुरुष नहीं कर सकता। मनुष्य जातिकी सेवा दो प्रकारसे की जा सकती है—एक तो मनुष्योंकी अधिक-से-अधिक भलाई करना, दूसरे मनुष्य-जातिको कायम रखना।[1] पहला कार्य विशेष रीतिसे पुरुषोंके जिम्मे है, क्योंकि वे दूसरा कार्य नहीं कर सकते। स्त्रियोंके लिए विशेष रीतिसे दूसरा कार्य है, क्योंकि इसे वे ही कर सकती हैं। यह भेद-भाव भुलाया नहीं जा सका और न भुलाना चाहिए,

१—यहां पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि यह टाल्सटायके 'क्रूजर सोनाटाका परिशिष्ट' लिखनेसे पहलेका लिखा हुआ है। 'क्रूजर सोनटाका परिशिष्ट' लिखनेके समय टाल्सटायके विचार और परिपक्व होगए थे और वे पूर्ण ब्रह्मचर्यको मानव-जीवनका आदर्श मानने लगे थे और मानव-जातिको कायम रखना जरूरी कार्य नहीं मानते थे। आगे भी कुछ ऐसे अवतरण हैं, जिनमें पूर्ण ब्रह्मचर्यके आदर्शसे मेल न खानेवाले विचार आये हैं। उन्हें पढ़ते समय पाठक ध्यानमें रखें कि यह टाल्सटायके पहले विचार हैं।—अनु०

इसे मिटानेकी कोशिश नही करना चाहिए, जैसा कि कुछ लोग करते है, (यह पाप है अर्थात् गलत है) इस भेद-भावसे स्त्रियो और पुरुषोके अलग-अलग कर्त्तव्य निर्धारित होते है, ये स्वाभाविक है, पुरुषोके बनाये कृत्रिम नही है। इस भेद-भावसे स्त्रियो और पुरुषोके गुण-दोषोकी कसौटी निर्धारित होती है—यह कसौटी युगोसे चली आयी है और आज भी कायम है और (जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा) कायम रहेगी।

जो पुरुष अपना जीवन विविध पुरुषोचित कार्योंको करनेमे बिताते है और जो स्त्रिया अपना जीवन बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करनेमे बिताती है, वे सदा अनुभव करेंगे कि उन्होने अपना जीवन पुण्य कार्योंमे बिताया, और मनुष्य-समाज सदा उन्हे आदरकी दृष्टिसे देखेगा, क्योंकि उन्होंने अपने कर्त्तव्योका पालन किया। पुरुषोका कार्य बहुमुखी और विस्तृत है, स्त्रियोका कार्य सीमित, पर गम्भीर है। इसलिए पुरुष एक, दस अथवा सौ कामोमे गलती भी करे तो वह बुरा नही माना जाता, क्यो कि उसने अन्य हजार काम ठीक किये। पर स्त्रियोके इने-गिने कार्य हैं, इसलिए यदि वह इनमेसे एक कार्यभी नहीं करती तो वह बुरी मानी जाती है। लोकमत सदासे ऐसा ही रहा है और रहेगा, क्योकि यह एक तात्त्विक प्रश्न है। पुरुषको शरीर तथा बुद्धिसे ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए, वह अनेक क्षेत्रोसे अपने कर्त्तव्यकी पूर्ति कर सकता है। परन्तु स्त्रीके लिए ईश्वर-सेवाका एकमात्र बच्चोका लालन-पालन है (क्योकि और कोई यह सेवा-कार्य नहीं कर सकता)।

पुरुषको अपने कार्योंसे ईश्वर और मनुष्य जातिकी सेवा करनेका आदेश दिया गया है, पर स्त्रीको बच्चो द्वारा ही सेवा करनेके लिए आदेश दिया गया है। इसलिए स्त्रियोका अपने बच्चोको विशेष रीतिसे प्यार करना सर्वथा स्वाभाविक है। इसके खिलाफ जो दलीले दी जाती हैं, वे व्यर्थकी है। माता सदा अपने बच्चोको विशेष रीतिसे प्यार करेगी। माताका अपने बच्चोको शैशवावस्थासे प्यार करना अहम्वृत्तिका द्योतक नही है, जैसी कि उलटी सीख कुछ लोग देते हैं, यह प्यार वैसाही है, जैसे कोई कारीगर

अपने हाथसे बनाये कार्यको प्यार करता है। यदि वह प्यार निकाल दिया जाय तो फिर उसके लिए काम करना असंभव हो जाय।

यदि मैं कोई जूता बना रहा हूं तो मैं उसे उसी प्रकार प्यार करूंगा, जिस प्रकार कोई माता अपने बच्चेको प्यार करती है। यदि कोई उस जूते-को नुकसान पहुंचाये तो मुझे क्लेश होगा। मेरा यह विशेष प्रेम तभी तक रहेगा, जब तक मैं उस कार्यको करता रहूंगा। जब मैं अपना कार्य पूरा कर लूंगा तो उसके प्रति मेरा मोह बना रहेगा, एक क्षीण ममता। यही बात किसी माताके संबंधमें भी चरितार्थ होती है।

पुरुषको विविध कार्योंसे मनुष्य जातिकी सेवा करनेका आदेश दिया गया है और वह अपने इन कार्योंसे प्रेम करता है। स्त्रीको अपने बच्चोंसे सेवा करनेका आदेश दिया गया है और वे बच्चे जब तक ३ अथवा ७ अथवा १० वर्षके न होजायं, तब तक उनका पालन-पोषण करते हुए, उसका उनसे प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।

मेरी समझमें इस तरह स्त्रियों और पुरुषोंकी पूर्ण रूपसे समानता सिद्ध होती है, क्योंकि दोनों समान रूपसे ईश्वर तथा मनुष्य-जातिकी सेवा करते हैं, यद्यपि उनके कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंकी समानता इस बातसे भी सिद्ध है कि दोनोंका योग समान रूपसे महत्त्वपूर्ण है, एककी दूसरेके बिना कल्पना नहीं की जा सकती, दोनों एक दूसरेके पूरक हैं, तथा दोनोंको अपने-अपने कार्य संपन्न करनेके लिए सत्यका जानना जरूरी होता है और उसे जाने बिना कार्य मानव जातिके लिए लाभदायी होनेके बजाय हानिकारक होजाते हैं।

पुरुषको विविध कार्य करनेका आदेश दिया गया है, पर उसका सारा शारीरिक-श्रम (अन्न उत्पन्न करना अथवा तोपें बनाना) उसका मानसिक-कार्य (मनुष्योंकी भलाई करना अथवा रुपये गिनना) तथा उसका धार्मिक-कार्य (मनुष्योंमें एकता स्थापित करना) तभी लाभदायी होता है, जब वह अनुभूत सत्यके आधार पर किया जाता है।

यही बात स्त्रियोंपर भी चरितार्थ होती है। उनका बच्चे पैदा करना

तथा उनका पालन-पोषण करना मनुष्य जातिके लिए तभी लाभदायी होगा जब वह अपने सुखके लिए बच्चोंका पालन-पोषण नहीं करेगी, बल्कि वह उन्हे मानव-जातिका भावी-सेवक बनायेगी, जब वह उन्हे सत्यकी शिक्षा देगी अर्थात् उन्हे यह सिखायेगी कि वे मनुष्यसे कम-से-कम ले और उसे अधिक से-अधिक दे। मैं उस स्त्रीको आदर्श स्त्री कहूगा जो जीवन सिद्धातोको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद अधिक-से-अधिक सख्यामे बच्चे पैदा कर तथा पाल-पोस कर उन्हे मानव-जातिकी सच्ची सेवा कर सकनेके योग्य बना देनेकी शिक्षा देती है। जीवन-सिद्धातकी शिक्षा महिला विद्यापीठोमे अथवा आख-कान बद रखनेसे नही मिलत। वह हृदयका द्वार मुक्तरूपसे खोल देने पर प्राप्त होती है।

अच्छा, जो नि.सतान हैं या अविवाहित है या विधवा होगई है, वे क्या करे? उन्हे चाहिए कि वे पुरुषोके विविध कार्योंमे हाथ बंटावे। प्रत्येक स्त्रीको बच्चे पैदा करनेके कर्तव्यको पूरा कर लेनेके बाद, शक्ति रहने पर अपने पतिके कार्योंमे हाथ बटाना चाहिए और इस प्रकारकी सहायता बडी मूल्यवान होती है।

हानिकारक फैशन

स्त्रियोकी अति प्रशसा करना तथा यह कहना कि वे बुद्धिमे न केवल पुरुषोके समान, बल्कि उनसे बढी-चढ़ी होती हैं, एक बुरा तथा हानिकारक फैशन है।

इसमे सदेह नही कि स्त्रियोके अधिकारो पर प्रतिबध नही लगने चाहिएं, उनका आदर और प्रेम भी पुरुषोके समान करना चाहिए तथा उनके अधिकार पुरुषोके समान होने चाहिए। परतु यह कहना कि साधारण स्त्रियोमे भी पुरुषोके समान आध्यात्मिक शक्ति होती है, स्त्रियोसे भी उतनी ही आशा करना जितनी आशा पुरुषोसे की जाती है, अपनेको जान-बूझ कर धोखा देना होगा, स्त्रियोको हानि पहुचाना होगा।....इन असभव बातोकी आशा करके आप उनसे वे ही बाते चाहेगे और उनके न मिलनेपर आप उनसे चिढेगे और उन्हे व्यर्थ दोष देगे।

इस लिए स्त्रीको आध्यात्मिक दृष्टिसे कमजोर स्वीकार करना उसके प्रति निर्दयता नहीं है, उस पर समताका आरोप करना निर्दयता है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे कमजोर होनेसे मेरा आशय है कि वह अपने शरीर-को अपनी आत्माके अधीन उतनी मात्रामें नहीं रख पाती, वह बुद्धिमें उतनी अधिक श्रद्धा नहीं रखती, जो कि स्त्रियोंका स्वभाव है।

पारिवारिक जीवन

पारिवारिक जीवन तभी अच्छा हो सकता है, जब स्त्रियोंको यह विश्वास दिला दिया जाय कि उन्हें सदा पतिका अनुकरण करना चाहिए। मैंने लिखा है कि यह क्रम सृष्टिके आरंभ कालसे चला आया है और बच्चोंके साथ पारिवारिक जीवनकी जर्जर नौका पर तभी भवसागरको पार किया जा सकता है जब पतवार एक व्यक्तिके हाथमें हो। और वह व्यक्ति पुरुष ही हो सकता है, क्योंकि उसे बच्चे पैदा करना और उन्हें पालना-पोसना नहीं पड़ता और वह अपनी स्त्रीकी अपेक्षा अधिक उत्तम रीतिसे पतवार खे सकता है।

'पर क्या स्त्रियां सदा पुरुषोंसे नीची होती हैं?' नहीं। अविवाहित अवस्थामें वे समान होती हैं। 'पर इसके क्या मानी कि स्त्रियां आजकल केवल समानता ही नहीं, श्रेष्ठताका भी दावा करती हैं?' इसके मानी यह है कि पारिवारिक जीवनमें विकास होरहा है और इसलिए पुरानी प्रथाएं छिन्न-भिन्न होरही हैं। स्त्री-पुरुषोंके संबंधोंको नये रूप देनेकी आवश्यकता है, पुराना रूप नष्ट होरहा है।

नया रूप क्या होगा, कोई कह नहीं सकता, यद्यपि उसकी भिन्न-भिन्न रूपरेखा बनाई जारही है। संभव है भविष्यमें अधिक संख्यामें लोग ब्रह्मचर्य पालन करें संभव है अस्थायी विवाह प्रचलित हो जाय तो बच्चे पैदा हो जानेके बाद टूट जाय और स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य पालनके लिए अलग-अलग रहने लगें। संभव है बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था समाज करने लगे। नये रूप क्या होंगे कल्पना नहीं की जा सकती, पर यह निश्चित है कि नये रूप विकसित होरहे हैं। पुराने रूप नहीं [illegible]

का अनुकरण करने लगे, जैसा कि सब जगह सदासे होता आया है और आज भी जहा सच्चा गार्हस्थ-सुख वर्त्तमान है, ऐसा ही होता है।

शुद्ध-प्रेम पर उपन्यास

कल मैं सेयनकीविजकी 'विदाउट डागमा (रूढि रहित विचार) पुस्तक पढ रहा था। उसमे स्त्रीके प्रति प्रेमका बडा सूक्ष्म चित्रण है, वह फ्रासीसियोके वैषयिकतापूर्ण, अंग्रेजोके पाखण्ड पूर्ण अथवा जर्मनोके दम्भपूर्ण चित्रणसे कही अधिक सुंदर है। उसे पढकर मेरे मनमे विचार उठा— क्या अच्छा हो कि पवित्र प्रेमका चित्रण करने वाला एक उपन्यास लिखा जाय ..ऐसा प्रेम जो वैषयिकतामे नही उतरजाता, बल्कि वैषयिकताके विरुद्ध रक्षा-कवचका काम देता है। क्या वैषयिकतासे बचनेका एकमात्र यही उपाय है? हा, यही उपाय है। इसीके लिए स्त्री और पुरुषकी उत्पत्ति हुई है। पुरुष स्त्रीके निकट जाने पर ही अपना ब्रह्मचर्य खण्डित करता है, और उसीके साथ रहकर अपना ब्रह्मचर्य अखड रख सकता है। जरूर इसे लिखना चाहिए . .

मनुष्य और पशु

मनुष्य पशु होनेके नाते जीवन-संघर्षके नियम तथा वश रक्षाके हेतु विषय-सस्कारके आगे झुकता है। पर एक विवेकशील प्राणी होनेके नाते वह इसके विपरीत नियम पर चलता है, वह प्रतिद्वद्वी तथा शत्रुसे संघर्ष नही करता, बल्कि उसके प्रति विनम्रता, क्षुद्रता तथा प्रेम प्रकट करता है, वह विषय-सस्कारोके वश नही होता, बल्कि सयम पालन करता है।

मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य

मनुष्य-जातिका एक प्रधान कर्त्तव्य ब्रह्मचारिणी स्त्रिया तैयार करना है।

शैतानकी खाला

कथाओमे वर्णित है कि स्त्रिया शैतानकी खाला होती हैं। सामान्य रूपसे उनमे बुद्धि नही होती, पर जब वे शैतानके वश होती हैं तो शैतान उन्हें अपनी बुद्धि दे देता है। तब वे नीच कार्योंको करनेमें कमालकी बुद्धि, दूरदेशी तथा दृढता दिखाती हैं। पर जब कोई नीच कार्य नहीं करना

होता तो सीधी बात भी उनकी समझमें नहीं आती, वे अपनी नाकके आगे नहीं देख पातीं, उनमें जरा भी धीरता या दृढता नहीं रहती (केवल बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन-पोषण करनेके कार्यको छोड़कर)।

पर यह सब गैर-ईसाई स्त्रियोंके लिए, कुलटाओंके लिए कहा गया है।...स्त्रियोंको स्त्री-धर्मका गौरव समझानेकी कितनी आवश्यकता है। मेरीकी कथा निराधार नहीं है।

प्रत्येक लड़कीसे

स्त्री-धर्म सर्वश्रेष्ठ मानव-धर्म है जिसके बारेमें मैं लिख चुका हूं। गृहस्थ-जीवनकी ब्रह्मचर्य-जीवनसे तुलना करना ग्राम्य-जीवनकी नागरिक-जीवनसे तुलना करनेके समान है। खाली गृहस्थ जीवन अथवा ब्रह्मचर्य जीवनका मनुष्यके चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रह्मचर्य जीवन पवित्र भी हो सकता है और पापमय भी, इसी प्रकार गृहस्थ-जीवन भी पापमय हो सकता है और पवित्र भी।

प्रत्येक लड़कीको और विशेष रीतिसे तुझे, क्योंकि तू आध्यात्मिकताकी ओर बढ रही है, मैं सलाह दूंगा कि समाजमें जो भी चीजें विवाहकी आवश्यकता तथा उपादेयता बताती हैं, उनसे घृणा कर। इस प्रकारके उपन्यास, संगीत, फजूलकी गपशप, नाच, खेल-कूद, ताश, यहां तक कि तड़क-भड़ककी पोशाकसे भी दूर रह। शामको बातूनी लोगोंके साथ बैठकर ताश खेलनेमें अपनी कमीज सीना अधिक आनंदप्रद होता है (और अपनी आत्माके लिए कितना कल्याणकर होता है) समाजमें प्रचलित यह विचार कि किसी युवतीके लिए अविवाहित रहना, कुमारी रहना बड़ा अपमानजनक है, नितान्त मिथ्या है, सत्यसे कोसों दूर है। ब्रह्मचारिणी रहकर मनुष्य जातिकी सेवा करना, दीन-दुखियोंकी सहायता करना, किसी विवाहित जीवनसे कहीं अधिक श्रेयस्कर है। मसीहके प्रवचनके अध्याय १९में लिखा है—'सब मनुष्य यह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, इसे वे ही कर सकते हैं जिन्हें यह दी गई है। सब युगोंमें समाजके सभी स्त्री-पुरुषोंने इस प्रवचनको इसी दृष्टिसे देखा है और उन्होंने सदा ईश्वर-सेवाके निमित्त

ब्रह्मचर्य पालन करने वाले स्त्री-पुरुषोंका सदा बड़ा आदर किया है। हमारा समाज ऐसे स्त्री-पुरुषों पर हसता है। पर वह तो जो लोग ईश्वर-सेवाके निमित्त दारिद्रताका वरण कर लेते है. जो लोग धनके पीछे दीवाने नहीं होते. उन पर भी हसता है। मैं प्रत्येक लड़की को. और तुझे भी सलाह दूंगा कि अपना आदर्श ईश्वरकी सच्ची सेवा बना अर्थात् अपने भीतर आध्यात्मिकताकी चिनगारी प्रज्वलित रख और यदि विवाह ईश्वर-सेवामें बाधक मालूम पड़े तो ब्रह्मचारिणी रह। यदि तू कभी किसी पुरुषके प्रेममें पड़कर विवाह कर ले तो पत्नी तथा माता बननेपर प्रसन्न मत हो, गर्व मत कर, बल्कि जीवनके अपने मुख्य ध्येय—ईश्वर सेवा—को सामने रख और यह कोशिश कर कि परिवारके प्रति तेरा विशिष्ट प्रेम ईश्वर सेवामे बाधक न बने।

नवयुवकोंको सीख

. . . तुम्हारी उम्र तथा परिस्थितिके सभी युवकोंके लिए बड़ा खतरा होता है। जिस अवस्थामे तुम्हारी आदते बनती है, जो बादमे वज्र लेपके समान होजाती हैं उस अवस्थामे तुम्हारे ऊपर कोई नैतिक या धार्मिक नियन्त्रण नहीं रहता। उस समय तो तुम्हे बस खाली सबक घुटाया जाता है, जिससे तुम येन-केन-प्रकारेण भागनेकी कोशिश करते हो। तुम्हारे चारों ओर प्रलोभनोंका बाजार लगा रहता है और उसके रास्ते तुम्हारे लिए खुले होते हैं। तुम्हें यह परिस्थिति बिलकुल स्वाभाविक लगती है और क्यो न लगे? तुम्हारा इसमें जरा भी दोष नहीं कि तुम्हे यह परिस्थिति स्वाभाविक लगती है. क्योंकि तुम और तुम्हारे अन्य साथी इसी परिस्थितिमे बड़े हुए है। फिर भी यह परिस्थिति बड़ी अस्वाभाविक और खतरनाक होती है। खतरनाक इसलिए होती है कि यदि नवयुवक इच्छाओंकी तृप्ति अपने जीवनका ध्येय बना लेते हैं तो आगे उन्हें बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। अच्छा खाने-पीने. पहनने ओढनेकी जो आदते बन जाती है. वे दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती हैं और नई-नई इच्छाओंको तृप्त करनेके लिए नये-नये साधन खोजने पड़ते हैं क्योंकि पुरानी इच्छाओंको तृप्त करनेमे थोड़े दिनोंके बाद कोई आनंद नहीं मिलता।

सब इच्छाओंमे विषयेच्छा सबसे दुखदायी होती है। यह प्रणय-व्यापार, हस्तमैथुन और शीघ्र ही स्त्री सभोगकी ओर ले जाती है। स्त्री-सुखका अनुभव कर लेनेके बाद मनुष्य मद्यपान, धूम्रपान, उत्तेजक सगीत आदि कृत्रिम उपायोंसे आनदोपभोगमे वृद्धि करनेका प्रयत्न करता है।

क्या गरीब, क्या अमीर, सभी युवक सामान्य रूपसे(कुछको छोड़कर) इस पथ पर चलते है। यदि वे समय रहते सभल गए तो छुटैले होकर पवित्र जीवनकी ओर बढते हैं, पर यदि न सभले तो बरबाद होजाते है। मैं अपनी आंखोंसे सैकडो युवकोंको बरबाद होते देख चुका हूं।

तुम्हारे लिए छुटकारा पानेका एक उपाय है—जरा ठहर कर अपने जीवनपर विचार करो, अपने चारो ओर गौरसे देखो और एक आदर्श नियत कर लो (अर्थात् यह निश्चय करलो कि तुम क्या होना चाहते हो) और उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।

प्रणय-पिपासा और विवाह

मेरा सदासे यह विचार रहा है कि किसी व्यक्तिके आचार-नीतिके विषयमे गभीर होनेका सबसे बढिया प्रमाण यह है कि वह कहा तक सयम पालनमे दृढ है।

'एन' जिस जालमे फस गया, वह एक सत्य और शीलस्वभाव वाले मनुष्यके लिए सर्वथा स्वाभाविक है। उसने आपसमें कायम होगए सबधोंको छिपाना नहीं चाहा, बल्कि उन्हे स्वीकार करके एक आध्यात्मिक रूप दे दिया।

मै उसका विचार भलिभाति समझता हूं, प्रेममे पडनेसे जो मानसिक उथल-पुथल पैदा होती है, उसका उपयोग ईश्वरकी सेवामे किया जाय। ऐसा सभव है। मै समझता हू कि जो लोग ऐसी स्थितिमे पड जाते है, वे अपनी शक्ति इस दिशामे लगाकर उसे बढा सकते है, तथा असीम लाभ उठा सकते है। मै स्वय ऐसे कई उदाहरणोंको जानता हू। पर इस मामलेमे एक खतरा देखता हू, यदि व्यक्तिगत भावना खतम होगई (जो बहुत सभव है) तो शायद न केवल सारी स्फूर्ति गायब होजाय, बल्कि

शायद ईश्वर सेवाके कार्योंमे सारी दिलचस्पी भी जाती रहे। मैं ऐसे कई उदाहरण देख चुका हूं। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरकी सेवा बाहरी अवस्थाओं पर निर्भर नही करनी चाहिए. वह अपनी आत्मप्रेरणासे करनी चाहिए. उसकी आवश्यकता स्वयंसिद्ध होनी चाहिए. वह स्वयं आनंद देने वाली होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रशंसा करके ईश्वरकी सेवाके लिए अधिक स्फूर्ति प्रदान की जा सकती है. पर यहां यही खतरा है. कहीं प्रशंसा न मिलने पर ईश्वर-सेवाके प्रति उदासीनता न आजाय।

यह सब हमने स्वयं अनुभव किया है और हमने लिखा भी है। मैंने पिछले पत्रमें 'एन'से अपने सहमत होनेकी जो बात लिखी थी. उसमें मैं एक बात और जोड़ देना चाहता हूं। मैंने लिखा था कि यदि स्त्री और पुरुष ईश्वर तथा मनुष्य जातिकी सेवा करनेके उद्देश्यसे विवाह करें तो वह शुभ होता है। वह शुभ इसलिए नहीं होता कि वैवाहिक संबंधसे सेवाकी शक्ति बढ़ जाती है बल्कि शुभ इसलिए होता है. कुछ लोग प्रणयके लिए विकल रहते हैं. और विवाह होनेसे वह विकलता दूर होजाती है, जो मनुष्य शक्तिको सेवा-कार्यमें लगा देनेमें बाधा डालती रहती है। इसलिए यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य सेवा-कार्यमें सबसे अधिक सहायक होता है, पर कुछ लोगोंके लिए विवाह. उनकी विकलता शांत करके. उनकी सेवा-शक्ति बढ़ाता है. पर इस संबंधमें मैं एक महत्वपूर्ण बात और कह देना चाहता हूं। वह यह कि पुरुषोंको यह समझ लेना चाहिए कि विवाहसे पूर्व तथा बादमें जो प्रेम-पिपासा अथवा प्रणय-लालसा और उसके साथ मानसिक उथल-पुथल पैदा होती है. वह आनंदोपभोग या कलात्मक तुष्टिके लिए नहीं (जैसा बहुत लोग सोचते हैं) या ईश्वर-सेवाकी शक्ति बढ़ानेके लिए (जैसा 'एन' का ख्याल है) नहीं. बल्कि वह संतानोत्पत्ति करके काम-विकारसे मुक्ति पानेके लिए शारीरिक सम्मिलनके उद्देश्यसे पैदा होती है। इस लालसाको किसी और दिशामें लगानेसे जीवन-पथ सरल नहीं होगा. बल्कि कठिनता और अधिक बढ़ जायगी।

इसलिए मैं तुमसे इस बातमें पूरी तरह सहमत हूं कि यह बहुत खतर-

नाक जाल है और इससे बहुत अधिक सावधान रहना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं—'जिस प्रकार पुरुषोंसे मैत्री रखी जाती है, उसी प्रकार स्त्रियोंसे मैत्री क्यों नहीं रखी जा सकती?' मैत्री रखी तो जा सकती है, और यह अच्छा है, पर 'एन' जैसे सत्य और शील स्वभाव वाले व्यक्तिका कहना है कि स्त्रियोंसे संबंध कुछ विचित्र होता है। यदि कोई पुरुष अपनेको धोखा नहीं दे रहा है, तो उसकी दृष्टिमें तत्काल यह बात आ जायगी कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंसे संबंध सरलतासे जुड़ जाता है और उसे बढ़ानेमें प्रयासकी आवश्यकता नहीं होती। इसका कारण होना चाहिए? और एक नीतिवान पुरुषकी दृष्टिमें जैसे ही यह बात आयगी, वह समझ जायगा कि यह घनिष्ठता बढ़ते-बढ़ते विवाह अथवा विशिष्ट प्रेमकी ओर ले जायगी और यदि वह पतनकी ओर बढ़ना नहीं चाहता तो तत्काल अपनेको इस ढलुआ रास्तेपर बढ़नेसे रोक लेगा।

संतति-निरोध

संतति निरोध विषयक पुस्तिका मैंने देख ली है।

इस पर मैं क्या लिखूं और कहूं। यदि कोई कहे कि शवसे संभोग करना आनंददायक और हानिकारक होता है, तो उसकी दलीलोंका क्या खंडन किया जाय? ऐसे आदमीको समझाना और उसकी गलती दिखाना असंभव है, जो यह अनुभव नहीं करता कि विषय-भोग, स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए पातक और घृणित होता है। अरे, पशुओंमें हाथी[१] तक यह अनुभव करते हैं। विषय-भोग तभी क्षम्य होता है जब उसका उद्देश्य संतानोत्पत्ति हो। इसीकेलिए यह घृणित और पातकी प्रवृत्ति मनुष्यकी प्रकृतिमें उपजाई गई है।

मैं माल्थूजियन सिद्धांत[२]पर विचार नहीं करूंगा, क्योंकि वह एक

१—कहा जाता है कि हाथी बहुत कम मैथुन करता है। हाथियोंको बंदी बनानेपर उनका जोड़ा लगाना बहुत कठिन होजाता है, क्योंकि वे दूसरोंके सामने मैथुन करनेमें बड़ा संकोच करते हैं।

२—माल्थस १८वीं शताब्दीके प्रसिद्ध अंगरेज़ अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने

धोखा-धडी है, वह एक नैतिक-प्रश्नपर यथार्थवादी दृष्टिकोण (जो भी गलत दृष्टिकोण) से विचार करता है। न मै यह उल्लेख करूंगा कि हत्या-कृत्रिम गर्भपात तथा सतति निरोधमे कोई अतर नही है।

मुझे क्षमा करना —इस विषयको गभीरतासे लेते हुए लज्जा और घृणा होती है। हमे तो इसकी निदा नही करनी चाहिए कि समाज कहा तक पातककी ओर चला गया है, मनुष्यकी नीतिशीलता किस हद तक मूर्च्छित होगई है कि वह इन कृत्रिम उपायोका अवलबन करता है। इस विषयपर वाद-विवादमे पडनेका समय अब नही, हमे तत्काल इन बुराइयो-को दूर करनेमे जुट जाना चाहिए। एक अपढ, शराबखोर रूसी किसान भी, जो अनेक अध-विश्वासोका शिकार रहता है, इन उपायोंसे घृणा करेगा। वह विषयभोगको हमेशा एक पाप मानता है। जो लोग इस प्रकारके जगलीपनका समर्थन करनेके लिए सिद्धातोको घसीटते है,उनसे तो वह अपढ़ रूसी किसान बहुत ऊंचा है।

ऐसा पाप जिसकी तुलना नही

ऐसा कोई अपराध नही, जिसे मनुष्य इतना अधिक छिपानेकी कोशिश करता हो, जितना कि वह अपनी विषय लोलुपता सबधी अपराध को छिपानेकी कोशिश करता है। ऐसा कोई अपराध नही, जो इतना व्या-पक और भयानक हो, सभी मनुष्य जिसके दोषी हो। ऐसा कोई अपराध-नही जिसके सबधमे मनुष्योके इतने परस्पर विरोधी विचार हो, कुछ तो उसे घृणित पाप समझे और कुछ साधारण सुख-भोग समझे। ऐसा कोई पाप नही जिसके सबधमे इतनी मक्कारी प्रकट की गई हो। ऐसा कोई अपराध नही, जिससे सबध लगाकर आसानीसे पता लगाया जा सके कि मनुष्य कितना नीतिवान है। ऐसा कोई पाप नहीं,जो व्यक्ति और समाजकी प्रगति-के लिए इतना अधिक विनाशकारी हो।

यह सिद्धात प्रतिपादित किया कि जनसख्याकी वृद्धि भोजन तथा वस्त्रकी सुविधाओंपर निर्भर करती है। और इन सुविधाओंको छीन लेने अथवा महामारी, युद्ध, प्लेग आदिसे जन-संख्याकी वृद्धि रुकती है।

जाकी जैसी भावना

जो सत्यकी शोधमे है, उसके लिए वे विचार बिलकुल सरल और स्पष्ट है। जो सत्यकी शोधके लिए नही, बल्कि अपने पाप और अनीतिपूर्ण जीवनको उचित ठहरानेकी गरजसे दलील करना चाहताहै, उसे वे विचार विचित्र, अद्‌भुत तथा अनुचित तक प्रतीत होगे।

अगाध विषय

इस पुस्तकका अंत नहीं हो सकता। अब भी मै बराबर इस समस्या-पर विचार किया करता हू, मै बराबर अनुभव किया करता हू कि अभी बहुत-सी बाते स्पष्ट करनी है, बहुत-सी बाते जोडनी हैं। यह विषय इतना विशाल महत्वपूर्ण तथा नया है और इसके मुकाबिलेमे मेरी शक्ति सच, इतनी कम तथा अयथेष्ट है कि ऐसा सर्वथा स्वाभाविक है।

इसलिए मेरे विचारमे जिन लोगोको इस विषयमे दिलचस्पी हो, उन्हे लिखना चाहिए। उन्हे अपनी शक्तिके अनुसार इस विषयकी शोध करनी चाहिए तथा इसका स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि सब लोग इस विषय पर अपने हृदयके सच्चे उद्‌गार और विचार लिखे तो बहुत-सी अस्पष्ट बाते स्पष्ट हो जायगी, बहुत-सी छिपी हुई बाते प्रकाशमे आ जायगी, बहुत-सी विचित्र लगनेवाली बाते अपनी विचित्रता खो बैठेगी, और अनीतिपूर्ण ढगसे रहनेके कारण जो बहुत सी बातें सही लगती है, वे गलत लगने लगेगी। मुझे कई सुविधाये थी, जिससे मै समाजका ध्यान इस विषयकी ओर आकृष्ट कर सका। अब अन्य लोगोको इस विषयपर विविध पह-लुओसे विचार करना चाहिए।

कुछ और विचार[1]

प्रेम

प्रेम दो प्रकारका होता है—शारीरिक और आध्यात्मिक। शारीरिक प्रेम संवेदना, काल्पनिक-सुखसे उत्पन्न होता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक प्रेम अपने भीतरकी पाप-वृत्तियोंसे युद्ध करनेसे, हमें घृणा नहीं प्रेम करना चाहिए, इस आत्म-बोधसे उत्पन्न होता है। वह सदा शत्रुओंकी तरफ दौड़ता है। यह प्रेम अत्यंत मूल्यवान् और सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।

स्वाभाविक अवस्था

सभी लोग, विशेष रीतिसे नवयुवक, ऊंचे आध्यात्मिक क्षेत्रसे फिसल कर तुच्छ वैषयिक क्षेत्रमें गिर पड़ते हैं। हमें जानना चाहिए कि मनुष्यकी कौनसी अवस्था स्वाभाविक है, कौनसी अस्वाभाविक है।

विवाहकी शर्तें

वंशरक्षाके लिए विवाह एक शुभ और आवश्यक वस्तु है। पर इसके लिए आवश्यक है कि माता-पिताओंमें अपने बालकोंको शिक्षा देकर परावलंबी नहीं, बल्कि ईश्वर तथा मनुष्य-जातिके सच्चे सेवक बनानेकी शक्ति हो। इसके लिए उन्हें दूसरोंके श्रम पर नहीं, बल्कि अपने श्रम पर रहना सीखना चाहिए। वे समाजसे जितना लें, उससे अधिक देनेकी क्षमता रखें। हम लोग बुर्जुआ लोगोंके इस नियम पर चलते हैं कि शादी तभी करनी चाहिए, जब तुम दूसरेकी गर्दन पर अच्छी तरह सवार हो जाओ अर्थात् साधन-संपन्न हो जाओ। इसके विपरीत नियम पर चलना चाहिए। शादी उन्हीं लोगोंको करनी चाहिए, जो बिना किसी साधनके गुजारा कर सकें तथा बच्चोंको पाल सकें। ऐसे ही माता-पिता बच्चोंका लालन-पालन उचित रीतिसे कर सकते हैं।

१—सन् १९०० से लेकर सन् १९०८ के बीच लिखी गई डायरियों तथा पत्रोंसे संकलित।

एक पत्नी-व्रत

तुम पूछते हो—प्रत्येक पतिको केवल एक ही स्त्री रखनी चाहिए तथा प्रत्येक स्त्रीको केवल एक ही पति, यह नियम किस सिद्धात पर बना है और क्यो इस नियमको भग करना बुरा है ?

यदि इस नियमको कि प्रत्येक पतिको केवल एक ही स्त्री रखनी चाहिए तथा प्रत्येक स्त्रीको केवल एक ही पति, एक धार्मिक नियम, अर्थात् आधार-भूत नियम, अनुल्लघनीय नियम माना जाय, तो तुम्हारी शका ठीक है। परतु यह एक आधारभूत धार्मिक नियम नही है, बल्कि इस आधारभूत धार्मिक नियमसे निकाला गया नियम है—अपने पडोसीको प्यार करो, उसके साथ ठीक वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो वह तुम्हारे साथ करे। यह वैसे ही निकाला गया है, जैसे 'जो काम नही करेगा, उसे खाना नही मिलेगा'. इस नियमसे यह निकाला गया है कि चोरी मत कर, खाली मत बैठ, काम कर। यह सब नियम पुराने ऋषियोने आधारभूत नियमोके आधारपर जीवनमे व्यवहारके लिए बनाये है। भौतिक सबधोको देखते हुए यह नियम बनाया गया है कि चोरी मत कर, जीविका प्राप्त करनेके उपायोके सबधमे यह नियम बनाया गया है कि अपने लिए स्वय परिश्रम कर, दूसरेके परिश्रमपर मत रह, मनुष्योके पारस्परिक सबधोके लिए यह नियम बनाया गया है कि बदला मत ले, अपराधीपर वार मत कर, बल्कि सहनकर, उसे क्षमा कर इसी प्रकार स्त्री पुरुष सबधोके लिए यह नियम बनाया गया है कि पति एक पत्नीव्रत रखे तथा स्त्री एक पतिव्रत रखे।

ऋषियोका कहना है कि मनुष्य यदि इन नियमोका पालन करेगा तो उसका कल्याण होगा, सामाजिक प्रथाओपर चलनेकी बनिस्बत इन नियमोपर चलनेसे उसका अधिक कल्याण होगा। यदि एकाध उदाहरणोमे इन नियमोका पालन न करनेसे कोई बुराई न हुई हो तो भी इन नियमोका पालन करना उत्तम होगा क्योकि इन नियमोको भग करनेपर मनुष्य जातिको अनेक विपत्तियोका सामना करना पडा है। दूसरे, इस एक पत्नीव्रत अथवा एक पति व्रतका पालन करनेसे मनुष्य ब्रह्मचर्यके आदर्शके अधिक निकट पहुचता है।

मैं चाहता हूं कि तुम एक युवक होनेके नाते इस आदर्शके अधिकसे-अधिक निकट पहुंचो और अपनी अंत शुद्धिका यथासंभव प्रयत्न करो, इसीमें कल्याण है।

किसी स्त्रीसे संबंध हो जानेपर

मेरे विचारमें किसी स्त्रीसे संबंध होजाने पर, और विशेष रीतिसे उसके गर्भ रह जाने पर या उससे बच्चा हो जाने पर, पुरुषको उस स्त्रीको कभी न छोड़ना चाहिए।

एक शरीर

पति और पत्नी दो नहीं एक शरीर है, बाइबिलके ये शब्द बड़े महत्व-पूर्ण हैं। ईश्वर सेवा अथवा आत्म-कल्याणके लिए भले ही तुम विवाह-ग्रंथि तोड़ दो, अलग-अलग हो जाओ अथवा परिवारमें दुर्भाव उत्पन्न करनेवाला कोई कार्य करलो, पर अन्यथा ये कार्य वर्जित है।

विवाहित जीवनका उद्देश्य

मेरे विचारमें पतिका अपनी स्त्रीको, जिससे बच्चा हो चुका हो, छोड़ देना बहुत बुरा काम है। इसका परिणाम परित्यक्ता स्त्रीके लिए उतना नहीं, जितना पतिके लिए भयकर होता है। मेरा ख्याल है कि तुम भी इस सामान्य गलतीमें फस गए हो कि विवाहित जीवनका उद्देश्य सुखोपभोग है। नहीं, ऐसा नहीं है। विवाहित जीवनमें तो सुख घटते हैं क्योंकि मनुष्य पर नये कठोर कर्तव्यका बोझ आ पड़ता है। विवाहित जीवनका उद्देश्य, जिसकी ओर मनुष्य इतने प्रबल रूपसे आकर्षित होते है, सुख-वृद्धि नहीं, बल्कि एक मुख्य कर्तव्यकी पूर्ति—वशवृद्धि है।

जायज विवाह

. . तुम्हारे पुत्रके विवाहके विषयमें मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि विवाह तभी जायज और गौरवपूर्ण होता है जब पति-पत्नी आपसमें प्रतिज्ञा कर लेते है कि वे एक-दूसरेके प्रति वफादार रहेंगे, फिर वह चाहे मंत्रपूत न हो तो भी कोई परवाह नहीं इसलिए अपने निर्णयके अनुसार कार्य करो।

प्रेम, हानिकर चीज

. . . . मैं समझता हूं कि तुम्हारे मनमें भी यह हानिकारक अंधविश्वास घुस गया है कि प्रेम-बद्ध होनेके मानी सचमुच प्रेम करना है और यह एक अच्छी चीज है। नहीं, यह एक बड़ी हानिकर चीज है और इसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है। यदि मनुष्य धर्म अथवा नीतिसे कोरा हो तो वह ऐसे काममें फंस सकता है, पर प्रेमको जीवन-धर्म मान लेनेपर ऐसे काममें पड़ना बुरा है। प्रेम तभीतक सच्चा रहता है जब वह निःस्वार्थ होता है। ऐसा प्रेम अपनी स्त्रीसे प्राप्त होता है और वह आनंददायी होता है। पर यदि तुम किसी दूसरेके प्रेममें पड़ जाओगे तो तुम्हारा पतन होगा और तुम्हें दुःख मिलेगा।

अपनेको धोखा

तुम समझते हो कि तुम्हारा उद्देश्य उसको बचाना है, पर तुम अपनेको धोखा दे रहे हो। यदि तुम्हारे अंदर यह भावना होती, यदि तुम विशेष रीतिसे उसकी नहीं, बल्कि एक मानव प्राणीकी रक्षा करनेकी भावना रखते तो तुम ऐसा पहिले भी करते। तुम्हारे अंदर उसके प्रति काम उत्पन्न हो गया। इसलिए, तुम यदि मेरी सलाह चाहते हो, तो मैं कहूंगा कि तुम उससे संबंध-विच्छेद कर लो तथा अपनी सारी शक्ति एक व्यक्तिके प्रति नहीं, बल्कि समस्त मानव-जातिके प्रति प्रेम उत्पन्न करनेमें लगाओ। यही प्रत्येक मनुष्यका मुख्य जीवन-कार्य है।

विवेक मत त्यागो

मनुष्यके नाना दुःखोंकी जड़ विषय संबंध है। इससे अनेक बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इसीलिए अनादिकालसे मनुष्य यथासंभव इन संबंधोंको अनियमित बनानेकी चेष्टा करता आया है। उसने इसके लिए अनेक नियम बनाये हैं जिनको भंग करने पर बड़े दुःख भोगने पड़ते हैं। इस जटिल, सन्देहपूर्ण तथा कठिन विषयमें विवेकका त्याग कर भावनाओंसे परिचालित होना मनुष्यको पशु बना देता है। लोग कहते हैं—प्रेम उच्च नैतिक भावना है। पर सच्ची बात तो यह है कि लोग अपनी वासनाको ही उच्च

नैतिक भावना मान लेते हैं। यदि वासनाको प्रेमसे अलग करनेकी कोई सच्ची कसौटी होती तो अपनी भावनाओंसे परिचालित होनेमे को- बुराई न होती। पर ऐसी कोई सच्ची कसौटी नहीं है.अतः यदि तुम अपनी भावनाको ही अपनी पथप्रदर्शिका बनाओगे तो लोग अपनी पशुत्वपूर्ण भावनाको उच्च नैतिक भावना मानकर पशु बन जायगे और अपनेको तथा अपनी सतानोको पापके महासागरमे डुबो देगे।

हमारे तथा कथित कलाकार

मैथुनसे अधिक घृणित कार्य और क्या हो सकता है ? यदि किसीके मनमे इस कार्यके प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न करनी हो तो उसके सामने इस कुकृत्यका सविस्तार वर्णन कर देखो। इसलिए जो कौमे पशु-जीवनसे निकल कर आध्यात्मिक जीवनकी ओर बढ रही है,वे मैथुन तथा गुप्तेन्द्रियोका नाम लेने मे लज्जित होती है। यदि तुम पूछो, ऐसा क्यो है, तो उत्तर स्पष्ट है। यह लज्जा इसलिए उत्पन्न होती है कि मनुष्य विवेकशील प्राणी होनेके नाते इस घृणित कार्यसे बचे और इसे तभी करे जब वह अपनेसे सघर्ष न कर सके, अपनेको रोक न सके। जब तक आवश्यकता है, तब तक मनुष्य-जातिको कायम रखनेके लिए, मनुष्यमे यह पाशविक-वृत्ति पैदा की गई है। इस कार्यकी तथा इस कायमे सहायक अगोकी प्रशसा करना मानव-स्वभावको कितने विकलित रूपमे दिखाना है, पर हमारे तथाकथित चित्रकार और कलाकार यही तो करते है।

विकारोत्तेजक वस्तुएं

पचेन्द्रियोको लुभानेवाली सभी वस्तुए. जैसे घरकी सजावट, भडकीले कपडे. सगीत. सुगधि, स्वादिष्ट भोजन चिकनी चीजे, ये सभी चीजे विकार बढाती है। पर प्राकृतिक वस्तुए, प्रकाश, सूर्यकी छटा, पेड-पौधे, हरी घास आकाश अलकाररहित मनुष्य-शरीर. पक्षियोका गान. पुष्पोकी सुगधि. फल ये प्राकृतिक वस्तुए विकार नही बढाती। बिजलीकी रोशनी सजावटके सामान सगीत सुगधि. स्वादिष्ट भोजन चिकनी चीजे, ये सब विकार बढाने वाली होती है।

सरल और स्पष्ट नियम

मनुष्यको बुद्धि और भाषा इसलिए नहीं दी गई है कि वह अपने पाशविक विकारोंका औचित्य सिद्ध करनेकी युक्तियां ढूंढे। उसे बुद्धि और भाषा इसलिए दीगई है कि वह अपने विकारोंसे संघर्ष करे, अपनी विवेक बुद्धिकी वृद्धि करे और उसीके आदेशानुसार चले। बुद्धिका तकाजा है कि मनुष्य अपनी विषयेच्छा पर संयम रखे, अन्यथा वह बड़ी दुखदायी सिद्ध होती है। इस विषयमें सबसे सरल और स्पष्ट नियम यह है कि यदि स्त्री और पुरुषका एक बार शरीर संबंध होजाय तो वे अपनेको आजीवन बंधनसे बंधा हुआ समझें और अन्य किसीसे संबंध न रखें। इसीको विवाह कहते हैं। इस बंधनमें बंधने वालोंकी भलाईके लिए और बच्चोंका लालन-पालन करनेके लिए इस नियमका पालन आवश्यक है।

सतत् प्रयत्न करो

मनुष्य-जीवनका कर्त्तव्य विकारोंसे मुक्ति पानेकी सतत चेष्टा करना है। यह चेष्टा हर अवस्थामें संभव है और शरीरपरकी विजय सदा प्राप्तकी जा सकती है। केवल उसीको विजय नहीं प्राप्त होती, जो इस बातमें विश्वास नहीं करता। और इस बातमें विश्वास करनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य इस दिशामें प्रयत्न करे।

विवेकशील मनुष्यका कर्तव्य

जो पतनसे बचा हुआ है, उसे चाहिए कि वह इसी तरह बचे रहनेके लिए अपनी सारी शक्तियोंका उपयोग करे, क्योंकि गिर जाने पर उठना बहुत कठिन होता है। विवाहित और अविवाहित, सभीको विकारोंसे संघर्ष करना चाहिए अर्थात संयम पालनका प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हें शंका होती है कि क्या यह संघर्ष आवश्यक है? मैं इसका कारण समझता हूं। तुम्हें इसलिए शंका होती है कि तुम ऐसे लोगोंसे घिरे हुए हो, जो यह कहते हैं कि यह संघर्ष अस्वाभाविक और प्रकृति विरुद्ध है।

यह समझनेके लिए दिमाग पर ज्यादा जोर देना पड़ता है कि एक विवेकशील प्राणी—मनुष्य—के लिए विकारोंसे संघर्ष करना, उसकी

प्रकृतिके विरुद्ध नहीं. उसके लिए प्राथमिक कर्तव्य है. क्योंकि मनुष्य इस-लिए पशुसे ऊंचा माना जाता है कि ईश्वरने उसे बुद्धि दी है। पशु बहुत अधिक बच्चे पैदा करते हैं पर उनकी संख्या आपसी कलह (एक पशु दूसरे पशुको खा जाता है) तथा बाहरी अवस्थाओं (जिनपर उनका अधिकार नहीं होता) के कारण बढने नहीं पाती। मनुष्य विवेकशील प्राणी है, इसलिए वह एक तो कलहके स्थान पर संयम पालन कर सकता है, दूसरे, वह आध्यात्मिक जीवनके लिए हानिकर बाहरी अवस्थाओंका प्रतिकार कर सकता है। यह सच है कि मनुष्य अभी अपने विवेकसे यह काम नहीं लेता. और अपने ही समान दूसरे प्राणियोंका नाश करता रहता है; कितने आदमी युद्ध शीत रोग तथा अधिक परिश्रमसे मर जाते हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि एक दिन वह समय आयगा. जब विवेकशील मनुष्य एक-दूसरे-का नाश करना त्याग देंगे और अपनी जीवन व्यवस्था इस प्रकारकी करेंगे कि उनकी संख्या आजकलकी भांति इतनी तेजीसे (आजकल मनुष्य-संख्या जिस रीतिसे बढ रही है. उस रीतिसे बढती रहनेपर वह ५० सालमें दूनी होजायगी) न बढने पायगी कि कुछ सौ सालके भीतर मनुष्य-जाति पृथ्वी पर समा ही न सके। क्या वे गरीब आदमियोंकी हत्या कर डालेंगे: अथवा एक-दूसरेका वध करने पर तुल जायगे? नहीं यह सब असंभव भी है और अनावश्यक भी। अनावश्यक इसलिए है कि 'प्रकृति ने मनुष्यमें वैषयिकता पाशविक वृत्तिके साथ पवित्रता संयम पालनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति भी

तुम जैसे युवकको मुझ बूढ़ेकी यही हार्दिक सलाह है कि अपनी सारी शक्तिसे अपनी पवित्रताकी रक्षा करो, प्रलोभनोंसे संघर्ष करो और कभी निराश मत हो, अपने प्रयत्नोंमें शिथिलता मत आने दो। तुम पूछोगे, संघर्ष कैसे किया जाय? मुझे क्या करना चाहिए? क्या न करना चाहिए? निस्सदेह तुम व्यावहारिक उपदेश जानते होगे। अगर न जानते हो तो नीति-विषयक कोई पुस्तक पढ़लो। शराब मत पीओ, मांस मत खाओ, धूम्रपान मत करो, अगंभीर प्रकृतिके साथियों, विशेष रीतिसे स्त्रियोंकी संगत मत करो। यह सब तुम जानते होगे और न जानते हो तो गांठमें बांधलो। मेरी यही सलाह है, और इसे मैं अति महत्त्वपूर्ण मानता हूं कि जीवनका अर्थ समझो, जीवनका उद्देश्य विषय-सेवन नहीं, बल्कि ईश्वर सेवा है, अपना जीवन विलासपूर्ण नहीं, बल्कि अधिकाधिक आध्यात्मिक बनाओ।

ब्रह्मचर्यका आदर्श

प्रत्येक अवस्थाके मनुष्यको ब्रह्मचर्यके आदर्शकी ओर बढ़नेका सतत् प्रयत्न करना चाहिए। तुम इस आदर्शके जितने अधिक निकट पहुंचोगे, उतना ही अधिक अपना कल्याण करोगे और परमात्माके प्यारे बनोगे। मनुष्य विलासी बनकर नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्य-पालन करके ईश्वरकी अधिकसे-अधिक सेवा करता है।

टालसटायकी अन्य पुस्तकें

१. मेरी मुक्तिकी कहानी
२. प्रेममें भगवान
३. क्या करें ?
४. बच्चोंका विवेक

ल्स्टाय ग्रन्थावलि

मेरी मुक्तिकी कहानी



साहित्य 1

मेरी मुक्तिकी कहानी

टॉल्स्टॉयके 'A Confession' और 'Recollections'
का अनुवाद

अनुवादक
श्री रामनाथ 'सुमन'
श्री परमेश्वरीदयाल विद्यार्थी

१९४७ ।
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली।

तीसरी बार : १९४७
मूल्य
सवा रुपया

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली २३-४७।

: १ :

मेरा बपतिस्मा और पालन-पोषण ईसाई मतमे हुआ था। मुझे बाल्यावस्थामे तथा किशोर व युवावस्थामे इसी मतके धार्मिक विश्वासोंकी शिक्षा-दीक्षा दी गई थी। परन्तु जब मैं १८ सालकी उम्रमे यूनीवर्सिटीसे निकला तो जो बाते मुझे सिखाई-पढाई गई थीं उनमेसे किसीपर मेरा विश्वास नहीं रह गया था!

जहातक मुझे याद पड़ता है कह सकता हू कि मुझे जो कुछ सिखाया-पढ़ाया गया था और मेरे इर्द-गिर्दके बड़े-बूढ़े लोग जिन बातों-को मानते थे उनपर मेरा पक्का विश्वास कभी नहीं था. फिर भी मैं उन-पर भरोसा करता था परन्तु मेरा यह भरोसा भी बड़ा डावाडोल था।

धर्म-मार्गपर झुक पड़े, गिर्जेकी सब प्रार्थनाओं एवं उपदेशोंमें हिस्सा लेने लगे और उपवास करने तथा पवित्र एवं सदाचार पूर्ण जीवन बिताने लगे। तब हम सब—हमारे बड़े-बूढ़ेतक—बराबर उनकी हंसी उड़ाते और न मालूम किस वजहसे उनको 'नूह' कहते थे। मुझे याद है कि कजान युनिवर्सिटीके प्रबंधक पुजिन-मुश्किनने एक बार हमें अपने घर नृत्यके लिए न्यौता दिया। हमारे भाई उनका न्यौता मंजूर नहीं कर रहे थे, तब उन्होंने व्यंगसे यह तर्क करके उनको किसी तरह राजी किया कि डेविड-तक आर्कके सामने नाचे थे। मैं अपने बड़े-बूढ़ोंके इन मजाकोंमें रस लेता था और इनसे मैंने यह नतीजा निकाला था कि यद्यपि प्रश्नोत्तरपाठ-(धर्म-पुस्तक) की जानकारी और गिर्जेमें जाना जरूरी है, पर किसीको इन बातोंको ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए। मुझे यह भी याद है कि लड़कपनमें मैंने वाल्टेयरकी रचनाएं पढ़ी थीं और उनके धर्मका उपहास उड़ानेसे मुझे दुःख तो क्या होता, उलटे मेरा बहुत मनोरंजन होता था।

धर्मपर मेरी अनास्था ठीक उसी प्रकार हुई जिस प्रकार हमारे समान शिक्षा पाये हुए लोगोंमें अक्सर हो जाती है। मैं समझता हूँ कि अधिकतर यह बात इस तरह होती है। और लोगोंकी तरह कोई एक आदमी ऐसे उसूलोंके आधार पर जिंदगी बसर करता है जिनका धार्मिक सिद्धान्तोंसे न सिर्फ कोई ताल्लुक नहीं होता बल्कि आमतौरसे वे उनके विरोधी होते हैं। धार्मिक सिद्धांतोंका जीवनपर कोई असर नहीं रहता। न तो दूसरोंके प्रति उनके मुताबिक आचरण किया जाता है और न अपनी जिंदगीमें आदमी उनपर कोई ध्यान देता है। धार्मिक सिद्धान्त जिंदगीसे अलग और उससे दूर माने जाते हैं। अगर उनका कहीं दर्शन होता है तो वे जिंदगीसे अलग एक बाहरी चीजके रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

आजकलकी भांति उस समय भी किसीके जीवन अथवा आचरण-से यह फैसला करना कि वह आस्तिक है या नास्तिक असंभव था और

अब भी है। अगर अपनेको खुले-आम कट्टर धार्मिक कहनेवालेमें और अपनेको विधर्मी कहनेवालेमें कोई फर्क है तो वह धार्मिकोंके पक्षमें नहीं है। इस वक्तकी तरह उस समय भी खुले-आम अपनी धार्मिकता का एलान करनेवाले ज्यादातर उन्हीं आदमियोंमें मिलते थे, जो हीन-बुद्धि और बेरहम होते थे, पर अपनेको बहुत ज्यादा बकत देते थे। योग्यता, सच्चाई, विश्वसनीयता, शील, स्वभाव और सदाचरण अक्सर नास्तिकोंमें ही पाया जाता था।

स्कूलोंमें धर्म-पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और पढ़ाने विद्यार्थियोंको गिर्जे भेजा जाता है। सरकारी अफसरोंको 'कम्यूनियन' (प्रभु ईसाके स्मरणार्थ भोज जिसमें ध्यान करके उनके साथ संपर्क स्थापित किया जाता

वजहसे उसने शामके वक्त झुककर प्रार्थना शुरू कर दी। इस शिकार उसका बड़ा भाई भी साथ था। वह घासपर लेटा हुआ अपने छो भाईके इस कामको देख रहा था। जब 'एस' प्रार्थना खत्म कर चुक और रातमें आराम करनेकी तैयारी करने लगा तब उसके बड़े भाईने कहा—'अच्छा! तुम अभीतक यह सब करते जाते हो?'

उन्होंने एक-दूसरेसे और कुछ भी नहीं कहा। लेकिन उस दिनसे 'एस'ने प्रार्थना करना या गिर्जेमें जाना छोड़ दिया। और अब उसे प्रार्थना छोड़े, उपासना किये या गिर्जेमें गये तीस साल हो चुके हैं। ऐसा उसने इसलिए नहीं किया कि वह अपने भाईके विश्वासों या विचारोंको समझकर उन्हें अपना चुका था या खुद अपनी आत्मामें कुछ फैसला कर चुका था। ऐसा उसने सिर्फ इसलिए किया कि उसके भाईके कहे हुए शब्दने उस दीवारको धक्का देनेवाली उंगलीका काम किया, जो खुद अपने बोझसे गिरनेको हो रही हो। भाईके शब्द ने सिर्फ इतनी-सी बात जाहिर कर दी कि वह समझता था धर्म-निष्ठा कायम है परन्तु वास्तवमें बहुत दिनों पहलेसे उसका सफाया हो चुका था, इसलिए प्रार्थनाके वक्त कुछ शब्दोंका दोहराना, क्रासके चिह्न बनाना या आराधनाकेलिए घुटने मोड़कर बैठना सब व्यर्थ था। जब उस इन कृत्योंकी निरर्थकताका अनुभव हुआ तब वह उन्हें जारी नहीं रख सका।

ज्यादातर आदमियोंके साथ इसी प्रकार होता रहा है और होता। मैं उन लोगोंकी बात कह रहा हूं जिन्होंने हमारे दर्जेकी तालीम है और जो अपने प्रति ईमानदार हैं। मैं उन लोगोंकी बात नहीं कह हैं जो दुनियवी इरादों और आकांक्षाओंको पूरा करनेकेलिए धर्मको साधन बनाते हैं। (ऐसे आदमी सबसे बड़े नास्तिक हैं, कि अगर उनकेलिए धर्म-निष्ठा सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति करने-वाली है तो वह वास्तवमें धर्म-निष्ठा नहीं है।) हमारी तरहकी रहे हुए उन लोगोंकी स्थिति यह है कि ज्ञान और जीवनके

प्रकाशने एक बनावटी इमारतको ढहा दिया है और उन्होंने या तो यह बात देख ली है और उस जगहकी सफाई कर दी है या फिर अभीतक इधर उनका ध्यान ही नहीं गया है।

दूसरोंकी तरह मेरी भी गति हुई, बचपनसे सिखाये गये धार्मिक सिद्धांत लुप्त हो गये। लेकिन इतना फर्क जरूर रहा कि १५ सालकी उम्रमें मैंने दार्शनिक ग्रंथोंको पढ़ना शुरू कर दिया जिससे धर्म-सिद्धांतोंका त्याग छोटी उम्रमें ही सचेत मनसे हुआ। सोलह सालका होते ही मैंने स्वेच्छासे प्रार्थना करनी बंद कर दी। मेरा चर्च (गिर्जाघर) जाना और उपवास करना छूट गया। जो-कुछ मुझे बचपनमें सिखाया गया था उसमें मेरा विश्वास नहीं रह गया था, लेकिन कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर थी जिसमें मैं विश्वास करता था। वह कौन-सी चीज है जिसमें मेरा विश्वास था, यह उस समय मैं नहीं बता सकता था। मैं ईश्वरमें विश्वास करता था या यों कह सकते हैं कि ईश्वरके अस्तित्वसे इन्कार नहीं करता था पर उस वक्त यह बताना मेरेलिए असंभव था कि वह ईश्वर किस तरहका है। मैं ईसा और उनकी शिक्षाओंको भी अस्वीकार नहीं करता था लेकिन उनकी शिक्षाएं क्या हैं, यह मैं नहीं कह सकता था।

बढ़ाने और शरीरमें फुर्ती लानेकी कोशिश की और सब तरहके सुख-साधनोंके त्यागसे अपनी सहन-शक्ति और धीरज बढ़ानेका यत्न किया। मैं यह सब पूर्णताकी खोजमें कर रहा था। निश्चय ही इन सबकी शुरुआत नैतिक पूर्णतासे हुई, पर जल्द ही उसका स्थान सब तरहकी सामान्य परिपूर्णताने ले लिया, अर्थात् मेरे अंदर यह इच्छा पैदा हुई कि मैं न सिर्फ अपनी और ईश्वरकी दृष्टिमें, बल्कि दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें भी अच्छा बनूं। और बहुत जल्द यह चेष्टा फिर दूसरोंसे ज्यादा शक्तिशाली बननेकी इच्छामें बदल गई और मनमें यह बात पैदा हुई कि मैं दूसरोंसे अधिक प्रसिद्ध, अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अधिक धनी बनूं।

: २ :

किसी दिन मैं अपनी जवानीके दस सालोंके जीवनकी संवेदनाशील और शिक्षा-प्रद कहानी बयान करूंगा। मेरा खयाल है कि और भी बहुतेरे आदमियोंको ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अपनी संपूर्ण आत्मासे मैं अच्छा बनना चाहता था; लेकिन जब मैंने अच्छा बननेकी कोशिश शुरू की तो मैं जवान था, वासनाओंका दास था और अकेला था—बिलकुल अकेला। जब-जब मैंने नैतिक रूपसे भला बननेकी अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की, तब-तब हर बार मेरा उपहास किया गया और दिल्लगी उड़ाई गई लेकिन ज्योंही मैं तुच्छ वासनाओंके आगे सिर झुका देता था, मेरी तारीफ की जाती और मुझे बढ़ावा दिया जाता था।

[illegible] शक्तिका प्रेम, लोभ, कामुकता, लंपटता, घमंड, क्रोध [illegible] सांसारिक स्पर्धा [illegible] इज्जत की जाती थी।

इन वासनाओंके आगे सिर झुकाकर मैं वयस्क लोगोंकी श्रेणीमें जा बैठा और मैंने अनुभव किया कि वे मेरा समर्थन करते हैं। मेरी बुआ, जिनके साथ मैं रहता था, खुद बहुत ही शुद्ध और ऊंचे चरित्रकी थीं, लेकिन वह भी मुझसे सदा कहा करती थीं कि उनकी प्रबल इच्छा है कि किसी विवाहिता स्त्रीसे मेरा संबंध हो जाय। 'जवान आदमीको बनानेमें कोई चीज उतना काम नहीं करती जितना एक कुलीन महिला-से घनिष्ठता काम करती है।' मेरे लिए दूसरा सुख वह यह चाहती थीं कि मैं एडीकांग (किसी सेनापति या प्रतिष्ठित पदाधिकारीका शरीर-रक्षक), और संभव हो तो सम्राट्का एडीकांग, बनूं। पर सबसे बड़ा सुख तो उन्हें इस बातसे होगा कि मैं किसी अत्यंत धनी कन्यासे विवाह कर लूं जिससे मेरे पास दासोंकी ज्यादा-से-ज्यादा संख्या हो जाय।

बिना त्रास घृणा और हृदय-वेदनाके मैं उन सालोंका ख्याल नहीं कर सकता। मैंने लड़ाईमें आदमियोंका वध किया, मैंने लोगोंका

उन प्रेरणाओंको छिपाने और दबानेकी कोशिश की, जिनसे मेरे जीवन-की सार्थकता थी। मैं इसमें सफल हुआ और इसकेलिए मेरी प्रशंसा की गई।

छब्बीस[1] सालकी उम्रमें, मैं लड़ाईके बाद पीटर्सबर्ग लौटा और लेखकोंसे मिला। उन्होंने मुझे अपनाया, स्वागत किया और मेरी चापलूसी की। और इसके पहले कि मैं अपने चारों ओर दृष्टि डालता, मैंने उन लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ग्रहण कर लिये थे, जिनके बीच मैं आया था। इन विचारोंने मेरे भला बननेकी पूर्वकी सारी प्रेरणाओंका लोप कर दिया। इन विचारोंने ऐसा सिद्धांत प्रस्तुत कर दिया जिससे मेरी जिंदगीकी लंपटता और विषयासक्ति सही साबित हो गई।

मेरे इन साथी लेखकोंके जीवन-संबंधी विचार ये थे: सामान्य जीवन विकसित होता रहता है और इस विकासमें हम विचार-प्रधान आदमी खास हिस्सा लेते हैं, फिर विचार-प्रधान आदमियोंमें भी हमारा—कलाकारों और कवियोंका—सबसे अधिक प्रभाव होता है हमारा काम मनुष्य-जातिको शिक्षा देना है। और कहीं यह सीधा-सादा सवाल किसीके दिलमें न उठ खड़ा हो कि मैं जानता क्या हूं और शिक्षा किस बातकी दे सकता हूं, इसलिए इस सिद्धांतमें यह कहा गया था कि इसका जानना जरूरी नहीं है, कलाकार और कवि अप्रकट रूपसे ही शिक्षा देते हैं। मैं एक सराहनीय कलाकार और कवि समझा गया था, इसलिये मेरेलिए इस सिद्धांतको मान लेना स्वाभाविक था। मैं, कलाकार और कवि, लिखता तथा शिक्षा देता था, परंतु स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूं और क्या शिक्षा दे रहा हूं। और इसकेलिए मुझे धन मिलता था, मुझे अच्छा भोजन, मकान, स्त्री और समाज सब-कुछ मिला हुआ था, मेरा यश भी फैला था जिससे यह मालूम पड़ता था कि जो कुछ मैं लिख रहा हूं वह बहुत अच्छी चीज है।

[1] स्मृति-दोष मालूम होता है। वह सत्ताईस वर्षके थे। —सं०

कविताके और जीवनके विकासके संबंधमे इस तरहका विश्वास एक प्रकारसे धर्म था और मैं उसका पुरोहित। उसका पुरोहित होना बड़ा सुखद और लाभदायक था। मैं बहुत दिनोंतक इस धर्मको, उसके औचित्यमें किसी तरहका सदेह किये बिना, मानता रहा। किंतु इस जीवनके दूसरे और विशेष रीतिसे तीसरे सालमे मैं इस धर्मकी निर्भ्रान्तितापर सदेह करने लगा और मैंने उसकी जाच करनी भी शुरू कर दी। इस सदेहका पहला कारण यह था कि मैंने देखा कि इस धर्मके सब पुरोहित आपसमे एक राय नही रखते। कुछ कहते थे: हम सबसे अच्छे और उपयोगी शिक्षक हैं हम वही शिक्षा देते हैं जिसकी आवश्यकता है। दूसरे गलत शिक्षा देते हैं। दूसरे कहते: नहीं असली शिक्षक हम हैं तुम गलत शिक्षा देते हो। और वे एक-दूसरे से लड़ते-झगडते, गाली-गलौज करते और धोखा देते थे। हममेसे बहुतेरे ऐसे भी थे जिनको इसकी परवा न थी कि कौन सही है और कौन गलत; वे सिर्फ हमारी इन कार्रवाइयोंके जरिये अपना मतलब साधने में लगे हुए थे। इन सब बातोंकी वजहसे मैं भी इस धर्मकी सच्चाईमें सदेह करनेको विवश हो गया।

इसके अतिरिक्त लेखकोंके धर्म-मतमें इस तरह सदेह करना शुरू करनेके बाद मैं उसके पुरोहितोंपर भी ज्यादा बारीकी नजर रखने लगा और मुझे पक्का विश्वास हो गया कि इस धर्मके करीब-करीब सब पुरोहित, लेखकगण असदाचारी और अधिकतर दुश्चरित्र एव अयोग्य हैं, तथा उन लोगोंसे भी नीचे हैं जिनसे मैं अपने पहलेके भ्रष्ट और सैनिक जीवनमे मिला था। वे आत्म-विश्वासी एव आत्म-सन्तुष्ट थे और ऐसे वे ही आदमी हो सकते हैं जो बिलकुल पवित्र हों या फिर जो जानते भी न हों कि पवित्रता किस चिड़िया का नाम है। इन आदमियोंसे मुझे घृणा होने लगी, मुझे स्वय अपनेसे घृणा हो गई और मैंने अनुभव किया कि यह मत सिर्फ धोखा-धड़ीके सिवा कुछ नहीं है।

लेकिन ताज्जुब है कि यद्यपि मैं इन धोखेबाजोंके असत्य और ढोंग-

चुका था, पर मैंने उस पद-मर्यादाका त्याग नहीं किया जो इन आदमियों-ने मुझे दे रखी थी—यानी कलाकार, कवि और शिक्षककी मर्यादा। मैं बड़े भोलेपनके साथ कल्पना करता था कि मैं कवि और कलाकार हूं और मैं हर एकको शिक्षा दे सकता हूं, यद्यपि मैं स्वयं नहीं जानता था कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हूं। और मैं तदनुसार कार्य करता रहा।

इन आदमियोंके संसर्गसे मैंने एक नई बुराई सीखी मेरे अंदर यह असाधारण घमंड और मूर्खतापूर्ण विश्वास पैदा हुआ कि आदमियोंको शिक्षा देना ही मेरा धंधा है चाहे मुझे स्वयं मालूम न हो कि मैं क्या शिक्षा दे रहा हूँ।

उस जमानेकी और अपनी तथा उन आदमियोंकी (जिनके समान आज भी हजारों हैं) मनोदशा याद करना अत्यंत दुःखदायक, भयानक और अनर्गल है और इससे मनमें ठीक वही भावना पैदा होती है जो आदमीको पागलखानेमें महसूस होती है।

उस समय हम सबका विश्वास था कि हमें जितनी तेजीके साथ और जितना ज्यादा मुमकिन हो बोलना, लिखना और छपाना चाहिए और यह सब मनुष्यके हितकेलिए जरूरी है। हममेंसे हजारोंने एक-दूसरेका खंडन और परस्पर निंदा करते हुए लिखा और छपवाया—दूसरोंकी शिक्षाकेलिए। और यह नहीं बताया कि हम कुछ नहीं जानते या जीवनके इस बिलकुल सीधे-सादे प्रश्नपर कि अच्छाई क्या है और बुराई क्या है, हम नहीं जानते कि हम क्या जवाब दें। हम एक-दूसरेकी सुनते न थे और सब एक ही वक्त बोलते थे, कभी इस खयालसे दूसरेका समर्थन और प्रशंसा करते थे कि वह भी मेरा समर्थन और प्रशंसा करेगा। और कभी एक-दूसरेसे नाराज हो उठते थे, जैसा कि पागलखानेमें हुआ करता है।

हजारों-लाखों मजदूर दिन-रात अपनी पूरी ताकतसे काम करते और उन करोड़ों अक्षरोंको टाइपसे इकट्ठा करते और छापते, जिन्हें डाकखाना सारे रूसमें फैला देता था। और हम सब शिक्षा देते ही जाते थे, हमें

शिक्षा देनेका काफी वक्ततक नही मिलता था, हमे सदा इस बातपर खीझ रहती थी कि हमारी तरफ काफी ध्यान नही दिया जा रहा है।

यह बड़े ही ताज्जुबकी बात थी, पर इसका समझना मुश्किल न था। हमारी आतरिक इच्छा तो यह थी कि अधिक-से-अधिक धन और प्रशसा प्राप्त हो। इस मतलबको हल करनेकेलिए हम बस किताबें और अखबार लिख सकते थे। हम यही करते थे। पर यह फिजूलका काम करने और यह आश्वासन रखनेकेलिए कि हम बड़े महत्त्वपूर्ण लोग हैं, हमे अपने कामोको उचित ठहरानेवाले एकमतकी आवश्यकता थी। इसलिए हम लोगोंके बीच यह मत चल पड़ा : 'जितनी बातोका अस्तित्व है वे सब ठीक हैं। जो कुछ है उस सबका विकास होता है। यह विकास सस्कृतिके जरिये होता है और सस्कृतिकी माप किताबों और अखबारोके प्रचारसे की जाती है। और चू कि हमको किताबे और अखबार लिखनेसे धन और सम्मान मिलता है, इसलिए हम सब आदमियोंसे अच्छे और उपयोगी हैं।' अगर सब लोग एक रायके होते तो यह मत ठीक माना जा सकता था पर हममेंसे हरएक आदमी जो विचार प्रकट करता, दूसरा सदा उसके बिलकुल विरोधी विचार प्रकट करता था, इसलिए हमारे मनमें चिंता पैदा होनी चाहिए थी। पर हमने इसकी उपेक्षा की। लोग हमको धन देते थे और हमारे पक्षके लोग हमारी तारीफ करते थे इसलिए हममेंसे हर एक अपनेको ठीक समझता था।

आज मुझे साफ-साफ मालूम पड़ता है कि यह सब पागलखाने-जैसी बाते थीं पर उस वक्त मुझे सिर्फ इसका धुंधला आभास था और जैसा कि सभी पागलोंका कायदा है, मैं अपने सिवा और सबको पागल करता था।

: ३ :

इस तरहके पागलपनमें मैंने छः साल और बिता दिये—यानी तबतक जबतक कि मेरी शादी नहीं होगई। इस अवधिमें मैं विदेश गया। यूरोपमें मेरा जैसा जीवन रहा उससे और प्रमुख यूरोपियन विद्वानोंसे मेरा जो परिचय हुआ उससे मेरा यह विश्वास और दृढ हो गया कि पूर्णताके-लिए कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि मैंने देखा कि उनका भी ऐसा ही विश्वास था। इस विश्वासने मेरे अंदर भी वही रूप ग्रहण किया जो हमारे जमानेके अधिकतर शिक्षित लोगोंके हृदयमें करता है। इसे 'प्रगति'के नामसे प्रकट किया जाता है। तभी मुझे खयाल आया कि इस शब्दके भी कुछ मानी हैं। दूसरे जीवित आदमियोंकी तरह मुझे भी यह सवाल परेशान किये हुए था कि मेरेलिए किस तरह जिंदगी बसर करना सबसे अच्छा होगा? पर उस समय तक मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाया था कि इस सवालपर मेरा जवाब, 'प्रगतिके अनुकूल जीवन बिताओ', नावपर सवार उस आदमीके जवाबकी तरह है जो तूफानके बीच पड़ा हुआ है और 'किधर नाव खेना है' का जवाब यह कहकर देता है कि 'हम कहीं बहे जा रहे हैं।'

उस वक्त यह बात मेरे ध्यानमें नहीं आई थी। कभी-कभी, बुद्धिसे समझकर नहीं, बल्कि अंतःप्रेरणासे मैं इस मिथ्या विश्वासके प्रति विद्रोह करता था, जो हमारे जमानेमें सर्वप्रचलित था और जिसके जरिये आदमी जिंदगीके मानी समझनेमें अपना अज्ञान खुद अपनेसे ही छिपाता है। उदाहरणार्थ जब मैं पेरिसमें ठहरा हुआ था तब एक आदमीको फाँसी दी जाती देखकर मुझे प्रगतिमें विश्वासकी अस्थिरता-का पता चला, जिसमें मेरा अंध-विश्वास था। जब मैंने सिरको धड़से

जुदा होते देखा और शवको बक्समें भरा जाते देखा तब मैंने न सिर्फ अपने मस्तिष्कसे, बल्कि अपनी संपूर्ण अन्तरात्मासे यह महसूस किया कि हमारी वर्तमान प्रगतिका औचित्य सिद्ध करनेवाला कोई मत इस कार्यको उचित नहीं साबित कर सकता। यद्यपि दुनियाकी शुरुआतसे हरएक आदमीने चाहे किसी उसूलपर इसे जरूरी बताया है, पर मैं यह जानता हूँ कि यह गैरजरूरी और बुरा काम है। मैंने अनुभव किया है कि भला क्या है, इसका फैसला यह देखकर नहीं किया जा सकता कि लोग क्या कहते और करते हैं प्रगति भी इसका निर्णय नहीं कर सकती-इसका फैसला तो मेरा हृदय और 'मैं' ही कर सकता हूँ। प्रगतिमें मूढ़ विश्वास जीवनका पथ-प्रदर्शन कर सकनेके लिए नाकाफी है, यह मैंने दूसरी बार अपने भाईकी मौतपर अनुभव किया। वह बुद्धिमान् थे, भले थे और गंभीर स्वभावके थे। फिर भी जवानीमें ही बीमार पड़े, एक साल-से अधिक समयतक कष्ट भोगते रहे और बगैर यह समझे हुए कि वह किसलिए जिये और उनको किसलिए मरना पड़ रहा है बड़ी वेदनाके साथ उनकी मौत हो गई। इन सवालोंका जवाब मुझको या उनको, जब वह धीरे-धीरे कष्टपूर्वक मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे थे किसी उन्नति या मतसे नहीं हासिल हो सका। पर इस तरहके संदेह तो मेरे मनमें कभी-कभी ही उठते थे वास्तवमें मैं प्रगतिवादी [illegible] जीवन व्यतीत करता रहा। 'सबका विकास होता है और [illegible] भी विकास होता है सबके साथ मेरा विकास क्यों होता है, [illegible] भी कभी लग जायगा।' उस समय इस तरहका विश्वास मुझे [illegible] चाहिए था।

विदेशसे लौटनेपर मैं देहातमें बस गया। वहां मुझे किसानोंके स्कूलोंमें काम करनेका शौक मिला [illegible] के अनुकूल था। इसमें मुझे उस झूठका सामना नहीं करना पड़ता था जो साहित्य [illegible] लोगोंको शिक्षा देनेका [illegible] हो [illegible] था और मुझे खटकता था। यह ठीक है कि [illegible]

के नामपर काम किया पर मैं अब स्वयं 'प्रगति'को सदेहकी दृष्टिसे देखता था। मैंने अपनेसे कहा—'कुछ मामलोंमें प्रगति गलत ढंगसे हुई है। इन आदिम सीधे-सादे किसानोंके बच्चोंके साथ तो पूरी आजादीसे ही बर्ताव करना चाहिए और उनको खुद चुनने देना चाहिए कि वे प्रगतिका कौन-सा रास्ता पसद करते हैं।' वास्तवमें मैं एक ही असाध्य समस्याके चारों तरफ लगातार चक्कर काट रहा था वह समस्या यह थी कि 'क्या शिक्षा दी जाय, यह जाने बिना, किस तरह शिक्षा दी जा सकती है। ऊचे दर्जेकी साहित्यिक सेवाके समय मैंने यह महसूस कर लिया था कि कोई तबतक शिक्षा नहीं दे सकता जबतक यह जान न ले कि क्या शिक्षा देनी है। मैंने देखा था कि सब लोग जुदा-जुदा ढगसे शिक्षा देते हैं और आपसमें लड़कर सिर्फ एक दूसरेसे अपना अज्ञान छिपानेमें सफल होते हैं। लेकिन यहा किसानोंके बच्चोंके बीच काम करते हुए मैंने यह कठिनाई दूर करनेकेलिए सोचा कि मैं उन्हे पूरी आजादी दे दूगा कि वे जो चाहे सीखे। अब मुझे यह याद करके आनद आता है कि मैं अपनी शिक्षा देनेकी इच्छा तृप्त करनेके प्रयत्नमें क्या-क्या करता था। अपनी अतरात्मामें तो मैं अच्छी तरह जानता था कि मै कोई उपयोगी शिक्षा नहीं दे सकता, क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि क्या उपयोगी है। साल भरतक स्कूलका काम करनेके बाद मैं दूसरी बार इस बातकी खोज करने विदेश गया कि स्वय कुछ न जानते हुए भी मै दूसरोंको कैसे शिक्षा दे सकता हूँ।

और मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मैंने विदेश जाकर यह सीख लिया और किसानोंकी मुक्तिके साल-(१८६१) में मैं इस अर्जित ज्ञानके साथ रूस लौटा। लौटते ही मैं पच (किसानों और जमींदारोंके बीच शान्ति बनाये रखनेकेलिए) बना दिया गया। स्कूलमें मैंने अशिक्षित किसानोंको सिखाना-पढाना शुरू किया और शिक्षित वर्गोंको एक पत्रिका निकालकर उसके द्वारा शिक्षा देने लगा। सब कुछ ठीक चलता हुआ मालूम पड़ता था, पर मैं महसूस कर रहा था कि मेरी मानसिक दशा

अच्छी नहीं है और इस तरहसे ज्यादा दिन चल नहीं सकता। उस समय यदि जीवनका एक दूसरा पहलू न शुरु हो जाता, जिसका अनुभव मैं अभीतक कर नहीं पाया था और जिससे सुखी हो जानेकी आशा थी अर्थात् यदि मेरा विवाह न हो जाता तो, वैसी ही भयंकर निराशा होती जैसी पन्द्रह साल बाद हुई।

एक सालतक मैंने अपनेको पंचायत, स्कूल और पत्रिकाके काममें इतना व्यस्त रखा कि मैं—विशेष रीतिसे अपनी मानसिक व्यग्रताके कारण बिलकुल पस्त हो गया और बीमार पड़ गया। पंचकी हैसियतसे मुझे जबर्दस्त कशमकश करनी पड़ती थी स्कूलोंमें भी मेरे कामका अस्पष्ट परिणाम निकल रहा था और पत्रिकामें मेरी अपनी उलट-फेरसे घृणा होती थी (क्योंकि उसमें सिर्फ एक ही बात होती थी—हरएकको शिक्षा देनेकी इच्छा और यह छिपानेकी कोशिश कि मुझे इसका ज्ञान नहीं कि क्या शिक्षा देनी चाहिए)। मेरी बीमारी शारीरिक होनेकी अपेक्षा मानसिक अधिक थी। मैंने सब काम छोड़ दिये और स्वतन्त्रतासे हवाने साँस लेने, 'कूमीज' पीने और सिर्फ जानवरों जैसी जिन्दगी बितानेके ख्यालसे दशकीरके मैदानोंमें चला गया।

यद्यपि अब मैं लेखन-कार्यको कोई महत्त्व नहीं देता था, फिर भी मैं उन पंद्रह सालोंमें यही कार्य करता रहा। मैं पुस्तक-लेखक होनेका प्रलोभन—आर्थिक पुरस्कार पाने और निकम्मी रचनाओंकेलिए यश प्राप्त करनेका प्रलोभन, अनुभव कर चुका था, और अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने तथा सामान्य जीवनके अर्थके संबंधमें अपनी अंतरात्माके अंदर उठनेवाले प्रश्नोंके दबा देनेकेलिए मैंने लिखना जारी रखा।

मेरे लिए जो एक-मात्र सच्चाई रह गई थी, वही मैं दूसरोंको अपनी रचनाओंके जरिये सिखाने लगा—यानी आदमीको इस तरह रहना चाहिए कि वह अपने कुटुंबकेलिए अधिक-से-अधिक सुख-सुविधाका प्रबंध कर सके।

इस तरह जिंदगीकी गाड़ी चलती रही, लेकिन पांच साल पहले एक अजीब अनुभव होने लगा। शुरूमें किसी क्षण परेशानी और उलझनका अनुभव होता था, ऐसा मालूम होता था कि जिंदगीकी रफ्तार बंद हो गई है, उसमें कोई रुकावट पैदा हो गई है और मैं नहीं जानता कि किस तरह जीना चाहिए और क्या करना चाहिए। मैं अपनेको खोया हुआ और खिन्न अनुभव करता था। लेकिन वे क्षण बीत जाते थे और मेरी जिंदगी पहले जैसी बीतती रही। कुछ दिनों बाद इस तरहकी उलझन बार-बार होने लगी और उसकी सूरत भी एक ही होती थी। यह उलझन कुछ इस सवालकी सूरतमें सामने आती थी: 'यह जीवन किसलिए है? यह कहां ले जाता है?'

शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा लगता था कि ये बेमानी और बेसिर-पैरके सवाल हैं। मैंने सोचा कि यह सब अच्छी तरह जाना हुआ है और अगर कभी मैं इसे हल करना चाहूंगा तो मुझे कुछ ज्यादा मेहनत न करनी पड़ेगी। फिलहाल मेरे पास इसके लिए वक्त नहीं है, पर जब मैं चाहूंगा, इनका जवाब ढूंढ लूंगा। पर ये सवाल बार-बार दिमागमें उठने लगे और जवाब देनेकेलिए ज्यादा जोर देने लगे। एक ही

जगह गिरती हुई स्याहीकी तरह उन्होंने एक बड़ा काला निशान बना दिया।

इसका नतीजा वही हुआ जो घातक अंदरूनी बीमारीसे पीड़ित हर एक आदमीका होता है। पहले तबीयतकी गिरावटके हलके लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिसकी तरफ अस्वस्थ आदमी ध्यान नहीं देता, फिर ये लक्षण जल्द-जल्द, बार-बार दिखाई पड़ने लगते हैं और फिर लगातार पीड़ाकी अवधिमें बदल जाते हैं। तकलीफ बढ़ती जाती है और इसके पहले कि बीमार आदमी अपने इर्द-गिर्द नजर डाले, वह चीज जिसे उसने महज तबीयतका भारीपन समझ रखा था, दुनियामें उसके लिए सब चीजोंसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बन चुकी होती है—वह मौत है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैंने समझ लिया कि यह कोई आकस्मिक अस्वस्थता नहीं है, बल्कि कोई बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। और अगर ये सवाल इसी प्रकार बार-बार सामने आते रहे तो इसका जवाब

थोड़े हैं पर इसके बाद ?'...मैं परेशान हो जाता और समझमें नहीं आता कि क्या सोचूं ? इसी तरह अपने बच्चोंकी शिक्षाकी योजनाओं-पर विचार करते-करते मैं अपनेसे पूछने लगता—'यह किसलिए ?' जब इस बातपर विचार कर रहा होता कि किसानोंको समृद्ध कैसे बनाया जा सकता है, मैं एकाएक अपनेसे सवाल कर बैठता—'पर इससे मुझे क्या मिल सकेगा ?' अथवा जब मैं अपनी पुस्तकोंसे मिलनेवाली प्रसिद्धि पर विचार करता होता, तो अपनेसे पूछता—'बहुत अच्छा, तुम गोगल[1], पुश्किन[1], शेक्सपीयर[2], या मौलियर[3], बल्कि दुनियाके सब लेखकोंसे ज्यादा प्रसिद्ध होगे—पर इससे क्या ?' मुझे इसका कुछ भी जवाब नहीं सूझता था। उधर सवाल ठहरनेको तैयार न थे, वे तुरंत जवाब चाहते थे और अगर मैं उनका जवाब न देता तो मेरा जीना नामुमकिन था। पर क्या करता, कुछ जवाब ही न था।

मैंने अनुभव किया कि जिस चीज पर मैं इतने दिनोंसे खड़ा था वह गिर गई है और मेरे पांवके नीचे कोई आधार नहीं है, जिस चीजके सहारे मैं इतने दिनोंतक जी रहा था वह खत्म हो गई है और ऐसी कोई चीज नहीं रह गई है, जिसको लेकर मैं जी सकूं।

: ४ :

मेरे जीवनकी गति रुक गई। मैं सांस लेता, खाता-पीता और सोता था, इन कामोंको करनेकेलिए मैं मजबूर था, लेकिन जीवन नहीं रह गया था, क्योंकि ऐसी कामनायें नहीं रह गई थीं जिन्हें पूरा करना मैं उचित समझता होऊं। अगर किसी चीजकी कामना होती तो भी मैं पहलेसे ही समझ जाता था कि चाहे मैं उसे पूरा करूं या न करूं, इससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। इस समय अगर कोई परी मेरे पास

१ प्रसिद्ध रूसी लेखक। २ प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार। ३ मशहूर फ्रांसीसी हास्य-नाट्य लेखक।

आकर वरदान मागनेको कहती तो मुझे समझमें न आता कि उससे क्या मागना चाहिए। यदि कभी-कभी नशेकी घड़ियोंमें मैं कोई ऐसी चीज महसूस करता था जो इच्छा तो नही, हा, पहलेकी इच्छाओंकी वजहसे पड़ी आदत होती थी, तो चित्त शात और स्वस्थ होनेपर मैं समझ जाता था कि यह धोखा है और यह दरअसल इच्छा करने लायक कोई चीज नहीं है। मैं सत्यको जाननेकी इच्छा भी नही कर पाता था क्योंकि मैं कल्पना कर चुका था कि सत्य क्या है। सत्य यह था कि जीवन निरर्थक है। मैं एक प्रकारसे तबतक जिदगी बसर करता चला गया था जबतक ढालके ऊपर नहीं पहुच गया और साफ-साफ यह देख नहीं लिया कि मेरे आगे विनाशके सिवा कुछ नहीं है। ठहरना या पीछे लौट जाना नामुमकिन था पर अपनी आखोंको बद कर लेना या इस बातको न देखना भी नामुमकिन था कि कष्ट और मौत—पूर्ण विनाशके सिवा अब मेरे आगे कुछ नहीं है।

इसकेलिए सदा समय रहेगा।' उसी समय इसे भाग्यकी अनुकूलता कहनी चाहिए, मैंने अपने कमरेकी रस्सी पाससे हटा दी। यह रस्सी परदा डालकर, कमरेका एक हिस्सा अलग करनेकेलिए टगी थी, जिसके पीछे रोज रातमें अपने कपड़े उतारता था। मुझे डर पैदा हो गया था कि कहीं मैं इस रस्सीसे फांसी न लगा लूं। मैंने बंदूक लेकर बाहर शिकारकेलिए जाना बंद कर दिया कि कहीं आसानीसे मैं अपनी जीवन-लीला समाप्त न कर बैठूं। मैं खुद नहीं जानता था कि मैं चाहता क्या हूं, मैं जीवनसे भय खाता था, उससे भागना चाहता था फिर भी उससे कुछ-न-कुछ आशा मुझे लगी हुई थी।

और मेरी यह हालत उस समय हो रही थी जब मैं चारों ओर वैभव से घिरा हुआ था। अभी मेरी उम्र पचासकी भी नहीं थी, मेरी पत्नी बड़ी नेक थी, वह मुझे प्यार करती थी और मैं उसे प्यार करता था। मेरे बच्चे अच्छे थे, मेरे पास एक बड़ी जमींदारी थी जो मेरे कुछ ज्यादा मेहनत किये बगैर बढ़ती जा रही थी। मेरे रिश्तेदार और परिचित लोग मेरा जितना आदर उस समय करते थे उतना पहले कभी नहीं करते थे। दूसरे लोग भी मेरी प्रशंसा करते थे और अधिक आत्म-वंचनाके बिना मैं सोच सकता था कि मेरा नाम प्रसिद्ध हो गया है। और पागल या मानसिक दृष्टिसे अस्वस्थ होना तो दूर रहा, इस समय मेरे शरीर और मस्तिष्कमें इतनी शक्ति थी जितनी मेरे दर्जेके आदमियोंमें

मेरे साथ की है। यद्यपि मैं अपनेको पैदा करनेवाले इस 'किसी'को मानता न था फिर भी इस तरहका विचार स्वभावतः मेरे मनमें पैदा होता था कि किसीने इस दुनियामें लाकर मेरे साथ बुरा और भद्दा मजाक किया है।

बगैर किसी तरहकी कोशिशके मेरे अंदर यह ख्याल पैदा हुआ कि कहीं-न-कहीं कोई ऐसा जरूर है जो यह देखकर हँस रहा है कि मैं तीस या चालीस सालोंतक किस तरह रहता रहा हूँ, किस तरह मैं शरीर और मस्तिष्कसे प्रौढ़ होता, सीखता एवं विकसित होता रहा हूँ—और प्रौढ़ मानसिक शक्तियोंके साथ जीवनकी उस चोटीपर पहुँचकर, जहाँसे सब चीजें मेरे सामने पड़ी दिखाई देती हैं, मैं महामूर्ख की तरह खड़ा होता हूँ और साफ देख रहा हूँ कि जीवनमें कुछ नहीं है, न कुछ रहा है और न कभी कुछ रहेगा। और वह हँस रहा है।

पूरबकी एक बड़ी पुरानी कहानी है। एक मुसाफिर रास्तेसे कहीं जा रहा था। एक मैदानमें उसकी किसी क्रुद्ध जंगली जानवरसे भेंट हो गई। वह मुसाफिर जानवरसे भागकर पासके सूखे कुएं में घुस गया। पर जब उसने नीचे नजर डाली तो देखता क्या है कि एक अजगर उसे निगलनेकेलिए अपना मुंह खोले हुए है। अब वह अभागा आदमी न तो जानवरके डरसे कुएंसे बाहर ही आनेकी हिम्मत करता है और न अजगरके डरसे कुएंके अंदर ही कूदने का साहस करता है। बचनेके लिए वह कुएंकी एक दरारमें निकली हुई टहनी पकड़कर लटक जाता है। उसके हाथ शिथिल होते जा रहे हैं और वह महसूस करता है कि जल्द ही उसे अपनेको ऊपर या नीचे मौतके हाथमें सौंपना पड़ेगा। फिर भी वह लटका ही रहता है। इतनेमें ही वह देखता क्या है कि दो चूहे एक सफेद और एक काला—बार-बार उस टहनीकी जड़-के इर्द-गिर्द घूमते हुए उसे काट रहे हैं। जल्द ही टहनी टूट जायगी और उसे अजगरके मुंहमें समा जाना होगा। मुसाफिर यह सब देखता है और जान लेता है कि उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। इसी बीच लटके-ही-लटके वह अपने चारों तरफ दृष्टि डालता है और देखता क्या है कि टहनीकी पत्तियोंपर शहदकी कुछ बूंदें पड़ी हुई हैं, वह झुककर जबानसे उन्हें चाट लेता है। यही हालत मेरी है। मैं भी यह जानते हुए कि मौतका अजदहा टुकड़े-टुकड़े कर देनेकेलिए मेरी बाट जोह रहा है, मैं जीवनकी टहनी पकड़े हुए हूं और समझमें नहीं आता कि क्यों ऐसी यातना भोग रहा हूं। मैंने शहद चाटनेकी कोशिश की जिससे पहले मुझे कुछ शांति मिली, पर अब शहद चाटनेसे सुख नहीं मिलता था और दिन और रात-रूपी सफेद और काले चूहे जिंदगी-की उस टहनीको बराबर काट रहे थे, जिसे मैं पकड़े हुए था। मैंने साफ-साफ अजदहेको देख लिया था और अब शहद मीठा नहीं लगता था। मैं सिर्फ अजदहे और चूहोंको देख रहा था और उस ओरसे अपनी दृष्टि हटा नहीं पाता था। यह कोई कहानी नहीं, बल्कि एक

ऐसी वास्तविक सच्चाई है, जिसका जवाब नहीं और जो सबकी समझमें आ सकती है।

जीवनके आनंदकी वंचनाएं, जो मेरे अजदहेके भयको दबा रखती थीं, अब मुझे धोखा देनेमें असमर्थ थीं। चाहे मुझसे कितनी ही बार कहा जाय कि–'तुम जीवनका अर्थ नहीं समझ सकते, इसलिए उसके बारेमें कुछ मत सोचो और जिओ,' पर मैं अब ऐसा नहीं कर सकता, मैंने काफी अरसे तक यही किया है। अब मैं दिन-रातको चक्कर काटते और मेरी मौतको नजदीक लाते देख रहा हूँ और इससे आंख मूंदनेमें असमर्थ हूँ। मैं इतना ही देख पाता हूँ, क्योंकि इतना ही सत्य है। बाकी सब झूठ है।

शहदकी जिन दो बूंदोंने औरोंकी अपेक्षा अधिक दिनतक इस निष्ठुर सत्यसे मेरी आंखोंको दूर रखा, उनमें–कुटुंब तथा लेखन-कार्य पर मेरी आसक्ति, जिसे मैं कलाके नामसे पुकारता था—अब मिठास नहीं मालूम पड़ती थी।

कि यह भी एक धोखा ही है। मुझे स्पष्ट था कि कला जीवनका आभूषण है, जीवनका प्रलोभन है। लेकिन मेरेलिए जीवनका आकर्षण दूर हो चुका था, तब दूसरोंको मैं कैसे आकर्षित करता? जबतक मैं स्वयं अपना जीवन नहीं बिताता था, बल्कि किसी दूसरेके जीवनकी लहरोंपर बह रहा था—जबतक मेरा विश्वास था कि जीवनके कुछ अर्थ हैं, फिर चाहे उसे मैं व्यक्त न कर सकूं—तबतक कविता और कलामें जीवनकी छाया पाकर मुझे प्रसन्नता होती थी, कलाके दर्पणसे जीवनका दर्शन करना अच्छा लगता था। लेकिन जब मैंने जीवनका अर्थ जाननेकी चेष्टा आरंभकी और मुझे स्वयं अपना जीवन बितानेकी आवश्यकता अनुभव हुई, तब वह दर्पण मेरेलिए अनावश्यक, व्यर्थ, हास्यास्पद और दुखदायी हो गया। दर्पणमें अब मुझे दीखता था कि मेरी स्थिति मूर्खता तथा नैराश्यपूर्ण है इससे मुझे शांति नहीं मिलती थी। जब मैं अपनी अंतरात्माकी गहराईसे विश्वास करता था कि जीवनका कुछ अर्थ है तब दृश्य देखनेमें सुहावना लगता था। उस समय जीवनमें अंधकार और प्रकाशके खेलों—हास्य, दुःखांत, करुण, सुंदर और भयंकर—से मेरा मनोरंजन होता था। पर जब मैं जान गया कि जीवन निरर्थक और भयंकर है, तब दर्पणमें अंधकार और प्रकाशके खेल मेरा मनोरंजन न कर सकते थे जब मैंने अजदहेको देख लिया और यह भी देख लिया कि मैं जिस चीजका सहारा लिये हुए हूं उसे चूहे काट रहे हैं तब शहदकी कोई मिठास मुझे कैसे मीठी लग सकती थी?

बात यहींतक न थी। यदि मैंने केवल इतना ही समझा होता कि जीवनके कोई अर्थ नहीं है, तो मैं यह मानकर कि मेरे भाग्यमें यही था सब कुछ शान्तिसे सहन कर लेता। लेकिन मैं अपनेको इतनेसे ही सन्तुष्ट न कर सका। अगर मैं जङ्गलमें रहनेवाले उस आदमीकी तरह होता जो जानता है कि इससे निकलनेका कोई रास्ता नहीं है तो मैं जी सकता था पर मेरी दशा तो उस आदमीकी तरह थी जो जंगलमें रास्ता

भूल जानेके कारण, भयभीत होकर, रास्ता ढूंढनेकेलिए, इधर-उधर दौड़ता फिरता हो। वह जानता है कि हरएक कदम उसे ज्यादा उलझन-में डाल रहा है, फिर भी वह दौड़ना बन्द नहीं करता।

निश्चय ही यह भयकर अवस्था थी और भयसे बचनेकेलिए मैं खुद अपनेको मार डालना चाहता था। आगे मेरा क्या होने वाला है, इसका खौफ भी मैं महसूस करता था और जानता था कि यह भय मेरी मौजूदा हालतसे भी कहीं खराब है। इतनेपर भी मैं शातिपूर्वक अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। चाहे यह तर्क कितना ही विश्वस-नीय लगता रहा हो कि किसी दिन हृदयकी कोई शिरा या और कोई चीज फट पड़ेगी और सब-कुछ समाप्त हो जायगा, पर मैं शातिके साथ उस दिनकी बाट जोहनेमे असमर्थ था। अधकारका भय बहुत अधिक था और मैं गलेमें फासी डालकर या गोली मारकर, मतलब किसी तरह जल्दी-से-जल्दी जिदगीसे छूटना चाहता था। यही भावना बड़े जोरोंसे मुझे आत्म-हत्याकी ओर ले जा रही थी।

: ५ :

तरह जितने लोगोंने भी ज्ञान-मार्गसे जीवनका अर्थ जाननेकी कोशिश की है उनको कुछ नही मिला है। सिर्फ इतना ही नहीं कि उनको कुछ न मिला हो; बल्कि उनको साफ-साफ कहना पड़ा कि जिस चीज—यानी जीवनकी निरर्थकता—ने मुझको इतना निराश कर रखा है, वही एक ऐसी असदिग्ध बात है जिसे आदमी जान सकता है।

मैंने सभी जगह खोजा; और चूंकि मेरा जीवन ज्ञानकी साधनामें ही बीता था और विद्वानोंकी दुनियासे मेरा संबध था, इस कारण ज्ञानकी सभी शाखाओंमे वैज्ञानिकों और विद्वानोंतक मेरी पहुँच थी। उन्होंने बड़ी खुशीके साथ अपना सारा ज्ञान, न केवल पुस्तकोंसे, बल्कि वार्त्तालापसे भी, मुझे सुगम कर दिया, जिससे विज्ञान जीवनके प्रश्न पर जो कुछ कहता था उस सबकी जानकारी मुझे हो गई।

बहुत दिनोंतक मैं यह विश्वास करनेमे असमर्थ रहा कि यह (विज्ञान) जीवनके प्रश्नोंका जो जवाब देता है उसके अलावा दूसरा कोई जवाब नहीं दे सकता। मैंने देखा कि विज्ञान अपनी महत्त्वपूर्ण और गभीर मुद्राके साथ अपने उन नतीजों या परिणामोंका एलान करता है, जिनका मनुष्य-जीवनके वास्तविक प्रश्नोंसे कोई सबंध नहीं, और बहुत दिनोंतक मैं यही समझता रहा कि इसमें कोई ऐसी बात जरूर है जिसे मैं नहीं समझ पाया हूँ। बहुत दिनोंतक मैं विज्ञानके सामने भीरु बना रहा और मुझे ऐसा मालूम होता रहा कि जवाबों और मेरे सवालोंके बीच एक-रूपताका अभाव विज्ञानके दोषके कारण नहीं है, बल्कि मेरी नादानीके कारण है। लेकिन मेरेलिए यह कोई खेल या मनोरंजनका विषय नहीं था, बल्कि जीवन और मृत्युका प्रश्न था, और मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि मेरे प्रश्न जीवनके वास्तविक प्रश्न हैं, और वे सारे ज्ञानके आधार हैं और दोष मेरे प्रश्नोंका नहीं, बल्कि विज्ञानका होना चाहिए, यदि वह इन प्रश्नोंका उत्तर देनेका दावा करता है।

मेरा प्रश्न—जिसने ५० सालकी उम्रमें मुझे आत्म-हत्याके निकट पहुँचा दिया—एक बहुत ही सीधा और सरल प्रश्न था, जो सभी बच्चोंसे

कर एक बड़े बुद्धिमान् प्रौढ़ व्यक्ति तककी आत्मामें उठा करता है। यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका जवाब दिये बगैर कोई जी नहीं सकता, जैसा कि मैंने अनुभवसे समझा है। प्रश्न यह था : 'मैं आज जो कुछ कर रहा हूँ या कल जो कुछ करूंगा उसका नतीजा क्या निकलेगा—मेरे सारे जीवनका क्या नतीजा निकलेगा ?'

दूसरी तरहसे कहा जाय तो इस प्रश्नका यह रूप होगा : "मैं क्यों जिऊ ? क्यों किसी चीजकी इच्छा करू ? क्यों कोई काम करू ?" इसे यों भी व्यक्त किया जा सकता है "क्या मेरे जीवनका कोई ऐसा तात्पर्य है कि मेरी बाट जोहती हुई अनिवार्य मृत्युसे भी उसका नाश न होगा ?"

कई तरहसे व्यक्त किये जानेवाले इस एक प्रश्नका उत्तर मैंने विज्ञानसे जानना चाहा और मुझे पता चला कि इस प्रश्नके संबंधमें मनुष्यका सारा ज्ञान दो विरोधी गोलार्द्धोंमें बंटा हुआ है, जिनके दोनों स्रोंपर दो ध्रुव हैं—एक निषेधात्मक और दूसरा निश्चयात्मक। लेकिन न तो पहले और न दूसरे ध्रुवपर जीवनके प्रश्नका उत्तर मिलता है।

प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रमें तो मैंने अपनेसे यह कहा—'प्रत्येक वस्तु जटिलता और पूर्णताकी तरफ बढ़ती हुई स्वयं विकसित होती और विशेषता प्राप्त करती है और कुछ नियम उनकी इस गति का नियंत्रण करते हैं। तुम संपूर्णके एक अंश हो। जहांतक जानना संभव है वहांतक संपूर्णको जान लेने और विकासके नियमका परिचय प्राप्त कर लेनेपर तुमको संपूर्णके बीच अपने स्थानका पता भी चल जायगा।' मुझे कहते हुए लज्जा होती है कि एक ऐसा समय था जब मैं इस उत्तरसे संतुष्ट दीखता था। यह वही समय था जब मैं स्वयं अधिक जटिल बनता जा रहा था और विकसित हो रहा था। मेरी मांस-पेशियां विकसित और दृढ हो रही थीं, मेरी स्मरण-शक्ति, मेरी समझने-सोचनेकी शक्ति बढ़ रही थी, और अपने अंदर इस विकासका अनुभव करते हुए मेरे लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि जगतका नियम ऐसा ही है और इसीमें मुझे अपने जीवनके प्रश्नका हल ढूंढना चाहिए। लेकिन एक ऐसा समय आया जब मेरे अंदरका विकास रुक गया। मैंने अनुभव किया कि मेरा विकास नहीं हो रहा है, बल्कि मैं मुरझा रहा हूं, मेरी मांस-पेशियां कमजोर होती जाती हैं, मेरे दांत गिरते जाते हैं, और मैंने देखा कि नियमसे न केवल कोई बात समझमें नहीं आती, बल्कि ऐसा कोई नियम न तो कभी था, न कभी हो सकता है और मैंने अपने जीवनकी एक अवस्थामें अपने अंदर जो कुछ पाया उसे ही नियम मान लिया था। जब मैंने इस नियमकी परिभाषापर विचार करना शुरू किया तो मेरे सामने यह बात स्पष्ट

साथ क्या हूँ ?,' अनुत्तरित ही रहा। मैं समझ गया कि वे सब विज्ञान बड़े दिलचस्प हैं बड़े आकर्षक हैं पर जीवनके प्रश्नके ऊपर उनके प्रयोगका जहाँतक सवाल है वे उल्टी दिशामें ही ठीक और स्पष्ट हैं। जीवनके प्रश्नपर उनकी संगति जितनी ही कम बैठती है उतने ही यथार्थ और स्पष्ट वे हैं। वे जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी जितनी ही कोशिश करते हैं, उतने ही और आकर्षण-हीन होते जाते हैं। अगर कोई विज्ञानोंके उस विभागकी तरफ ध्यान दे जो जीवनके प्रश्नका उत्तर देनेकी कोशिश करता है (इस विभाग में शरीर-विज्ञान मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, समाज-विज्ञान आदि हैं) तो वहाँ उसे विचारोंकी आश्चर्य-जनक दीनता सबसे अधिक अस्पष्टता अनावश्यक प्रश्नोंको हल करनेका एक बिलकुल अनुचित और झूठा दावा तथा हर एक आचार्य द्वारा दूसरेका और अपने द्वारा अपनी ही बातोंका भी निरंतर खंडन होता दिखाई देगा। अगर हम उन विज्ञानोंकी तरफ देखते हैं जिनका जीवनके प्रश्नोंको हल करनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है, पर जो स्वयं अपने विशेष वैज्ञानिक प्रश्नोंका

रहे हैं ?' उत्तर—'अनंत अवकाश और अनंत कालमें अत्यंत क्षुद्र अंश अनंत जटिल रूपोंको ग्रहण करते हैं। जब तुम इस रूप-परिवर्तनके नियमोंको समझ लोगे जब तुम यह भी जान जाओगे कि पृथ्वीपर क्यों रह रहे हो ?'

इसके बाद मैंने निगूढ़ विज्ञानोंके क्षेत्रमें अपनेसे कहा—'संपूर्ण मानवता आध्यात्मिक सिद्धान्तों और आदर्शोंके आधारपर जीती और विकसित होती है। यही सिद्धांत और आदर्श उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं। ये आदर्श धर्म, विज्ञान, कला और शासन-पद्धतिमें व्यक्त होते हैं। ये आदर्श दिन-दिन ऊँचे होते जाते हैं और मानवता अपने सर्वोच्च कल्याणकी ओर बढ़ती जाती है। मैं मनुष्यताका अंश हूँ, इसलिए मेरा धंधा मानवताके आदर्शोंकी स्वीकृति और साधनाको आगे बढ़ाना है।' और अपनी मानसिक दुर्बलताके जमानेमें मैं इस उत्तरसे संतुष्ट था; पर ज्योंही जीवनका प्रश्न मेरे सामने स्पष्ट रूपमें आया, ये विचार तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर खत्म हो गये। जिस सिद्धांत-हीन दुर्बोधताके साथ ये विज्ञान मनुष्य-जातिके एक छोटे हिस्सेपर किये गए अध्ययनके बलपर स्थापित परिणामोंको सामान्य परिणामोंके रूपमें व्यक्त करते हैं, जिस प्रकार मनुष्यताके आदर्शोंके विषयमें इसके विभिन्न अनुयायी एक दूसरेके मतका खंडन करते हैं, इन बातोंको छोड़ भी दें तो भी इस विचार-धारामें यदि मूर्खता नहीं तो आश्चर्य यह है कि हर आदमीके सामने आनेवाले प्रश्नों, 'मैं क्या करूँ' या 'मैं क्यों जीता हूँ ?' या 'मुझे क्या करना चाहिए ?' का जवाब देने के लिए पहले इस प्रश्न का जवाब ढूँढ़ देना जरूरी समझा जाता है कि 'समष्टिका जीवन क्या है' (और यह उनकेलिए अज्ञात है और समयकी एक अत्यंत क्षुद्र अवधिमें वह उसके एक अत्यंत क्षुद्र अंशसे परिचित है)। इस मतमें यह जाननेकेलिए कि वह क्या है मनुष्यको पहले सारी रहस्यमयी मानव-जाति की जानकारी [illegible]—इस मानव-जातिकी, जिसमें उसीकी तरह अग- [illegible] नहीं जानना-बूझना।

निगूढ़ विज्ञानकी समस्या जीवनके मूलतत्त्वकी स्वीकृतिकी समस्या है। ज्योंही पारस्परिक व्यापार-(जैसे सामाजिक और ऐतिहासिक व्यापार) की खोज आरम्भ होती है· यह भी मूर्खतापूर्ण बन जाता है।

प्रयोगात्मक विज्ञान जब अपने शोधमें अंतिम कारणका प्रश्न नहीं उठाता तभी निश्चयात्मक उत्तर देता और मानव-मस्तिष्ककी महानता प्रकट करता है। इसके विपरीत निगूढ़ विज्ञान जब दृश्य व्यापारके पारस्परिक कारणोंसे संबंध रखनेवाले सवालोंको किनारे रख देता है और मनुष्यका अंतिम कारणके संबंधसे अध्ययन करता है, तभी वह विज्ञान होता है और मानवीय मस्तिष्ककी महानताका प्रदर्शन करता है। विज्ञानके इस राज्यमें, गोलकके ध्रुव रूपमें, अध्यात्म-विद्या या तत्त्व-दर्शन है। यह विज्ञान इस प्रश्नका स्पष्ट वर्णन करता है कि 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है? मेरा अस्तित्त्व क्यों है और जगत्का अस्तित्व क्यों है?" जबसे इसका अस्तित्त्व है यह एक ही तरह का उत्तर देता रहा है। चाहे दर्शन-शास्त्री मेरे अंदर मौजूद जीवन-तत्त्वको, या अन्य सब चीजोंके अंदरके जीवन-सारको, 'धारणा', 'सार', 'भावना' (स्पिरिट) अथवा 'संकल्प-शक्ति'के नामसे पुकारे, असलमें वह एक ही बात कहता है: यह तत्त्व मौजूद है और मैं उसी तत्त्वसे बना हूँ, पर यह तत्त्व क्यों मौजूद है, इसे वह नहीं जानता और अगर वह सच्चा चिंतक है तो ऐसा करता भी नहीं। मैं पूछता हूं : कि यह तत्त्व मौजूद ही क्यों रहे? यह है और रहेगा। इसमें नतीजा क्या निकलता है?'. दर्शन न केवल इसका कोई उत्तर नहीं देता, बल्कि वह स्वयं यही प्रश्न पूछता रहता है। और अगर वह सच्चा दर्शन है तो उसकी सारी चेष्टा इस प्रश्नको स्पष्टतापूर्वक [illegible] ही है। अगर वह दृढ़तापूर्वक अपने कर्त्तव्यपर डटा रहे तो [illegible] जवाब सिर्फ इसी तरह देगा : 'मैं क्या हूँ और जगत् क्या है?—'सब कुछ और कुछ भी नहीं।' इसी तरह वह 'क्यों'के जवाबमें कहेगा — मैं नहीं जानता।'

इस तरह के दर्शन-शास्त्र इन जवाबोंको चाहे जिस तरह उलट-

पलट्ट, मुझे उनसे जवाब-जैसी कोई चीज कभी हासिल नहीं हो सकती—इसलिए नहीं कि प्रयोगात्मक विज्ञानके क्षेत्रकी तरह उत्तरका मेरे सवालसे कोई संबध नहीं, बल्कि इसलिए कि संपूर्ण शास्त्रकी गति मेरे सवालकी ओर होते हुए भी उसका कोई उत्तर नहीं है और उत्तरकी जगह वही सवाल हमें एक जटिल रूपमें सुनाई पड़ता है।

: ६ :

साथ किसका शोध करना चाहता है और यह भी जानता हूँ कि उस मार्गपर चलकर मेरे जीवनका क्या प्रयोजन है, इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता।' निगूढ विज्ञानोंके क्षेत्रमें मैंने समझा कि यद्यपि विज्ञानका सीधा लक्ष्य मेरे प्रश्नका उत्तर देना है, पर इसके बावजूद भी मेरे प्रश्न-का कोई उत्तर नहीं है—सिवाय उस उत्तरके जो मैं स्वयं दे चुका हूँ : "मेरे जीवनका अर्थ क्या है?" उत्तर : "कुछ नहीं।" "मेरे जीवनका फल क्या होगा?" उत्तर : "कुछ नहीं।" "जितनी भी चीजें वर्त्तमान हैं, उनका अस्तित्त्व क्यों है, और मेरा अस्तित्त्व क्यों है?" उत्तर—"क्योंकि अस्तित्त्व है।"

ज्ञानके एक क्षेत्रमें प्रश्न करनेपर मुझे उन बातोंके बारेमें असख्य परिमाणमें ठीक-ठीक उत्तर प्राप्त हुए जिनके संबंधमें मैंने कुछ नहीं पूछा था—जैसे तारोंके रासायनिक उपकरण, हरक्यूलीज नक्षत्र-समूहकी ओर सूर्यकी गति, प्राणियों एवं मनुष्यकी उत्पत्ति, ईथरके अत्यन्त सूक्ष्म कणोंके रूपके विषयमें। परन्तु ज्ञानके इस क्षेत्रमें मेरे प्रश्न—"मेरे जीवनका तात्पर्य क्या है?"—का केवल यही उत्तर था कि—"तुम वही हो जिसे तुम अपना 'जीवन' कहते हो, तुम कणोंके एक आकस्मिक और अनित्य गठन हो। इन कणोंकी पारस्परिक अंतःक्रियायें और तब्दीलियां तुममें वह चीज पैदा करती हैं जिन्हें तुम अपना 'जीवन' कहते हो। यह गठन कुछ समयतक चलता रहेगा। इसके बाद इन कणोंकी अन्तःक्रियायें बंद हो जायगी और जिसे तुम 'जीवन' कहते हो वह भी बंद हो जायगा और साथ ही तुम्हारे सब प्रश्नों का भी अन्त हो जायगा। तुम किसी चीजके अकस्मात् जुड़कर बन गए छोटे पिंड हो। उस क्षुद्र पिंड में उबाल आता है। इसीको वह क्षुद्र पिंड अपना 'जीवन' कहता है। पिंड बिखर जायगा, उबाल समाप्त हो जायगा और साथ ही सब प्रश्नोंका भी अन्त हो जायगा। विज्ञानका स्पष्ट पक्ष इस तरह उत्तर देता है और अगर वह अपने सिद्धान्त पर ठीक-ठीक चले तो इसके सिवा दूसरा उत्तर दे ही नहीं सकता।

सुकरात जब मरनेकी तैयारी कर रहा था, तब उसने कहा था—"हम जीवनसे जितनी ही दूर जाते हैं उतना ही सत्यके निकट पहुँचते हैं, क्योंकि हम सत्यके प्रेमी जीवनमें आखिर किस चीजको पानेका प्रयत्न करते हैं? दैहिक जीवनसे पैदा होनेवाली सब बुराइयों तथा स्वयं देहसे मुक्तिको ही न? अगर यह बात है तो मौतको पास आई देख हम खुश हुए बिना कैसे रह सकते हैं?

"ज्ञानी पुरुष अपनी सारी जिंदगीभर मृत्युकी साधना करता है, इस-लिए मृत्यु उसके लिए भयंकर नहीं होती।"

और शापनहार कहता है:

"जगत्की अत्यांतरिक प्रकृतिको 'संकल्प'के रूपमें पहचान लेने और प्रकृतिकी अस्पष्ट शक्तियोंके अचेतन व्यापारसे लेकर मनुष्यके पूर्णतः चैतन्ययुक्त कार्योंतक प्रकृतिके संपूर्ण गोचर पदार्थोंको केवल उस 'संकल्प'-की पादार्थिकता या सरूपता मान लेनेपर उसकी इस खुलासे हम भाग नहीं सकते और हमको मानना पड़ेगा कि स्वेच्छापूर्वक इस संकल्पका त्याग कर देनेपर उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण गोचर पदार्थोंका भी नाश हो जाता है; उन संपूर्ण अंतहीन एवं अविश्रांत कार्य-परंपराओंका लोप हो जाता है, जिसके अन्दर और जिनके द्वारा संसारका अस्तित्व है, एकके बाद एक आनेवाले विविध रूपोंका अन्त हो जाता है और रूपके साथ संकल्पकी संपूर्ण अभिव्यक्तियां भी समाप्त हो जाती हैं और अन्तमें इस अभिव्यक्तिके जागतिक रूपों यानी काल और अवकाश तथा इसके अन्तिम मौलिक रूप चेतना और पदार्थ (आत्मा और भूत) सबका अन्त हो जाता है। जब 'संकल्प' नहीं है, तब प्रदर्शन नहीं है और जगत् भी नहीं है। केवल शून्य ही रह जाता है। इस शून्यताकी अवस्था-तक पहुँचनेमें हमारी प्रकृति बाधक होती है। और हमारी [illegible] भी हमारी जीनेकी इच्छा-मात्र है—यही हमारी दुनिया है। हम जिनसे इतनी घृणा करते हैं या दूसरे शब्दोंमें जीनेकी

इच्छा रखते हैं, यह इस बातका सूचक है कि हम जीवनकी दृढ़ कामना करते हैं। हम इस संकल्पके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और इसके अलावा और कुछ जानते भी नहीं हैं। इसलिए इस संकल्पके सम्पूर्ण क्षयके पश्चात् जो कुछ बचता है, वह हमारे-जैसे संकल्पसे भरे हुए लोगोंकेलिए निश्चय ही कुछ नहीं है। पर इसके विरुद्ध जिनके अंदर संकल्प स्वयं नष्ट हो गया है, उनकेलिए हमारी यह वास्तविक-सी लगनेवाली दुनिया अपने सम्पूर्ण सूर्यों एवं आकाश-गंगाओंके साथ भी, शून्य ही है।"

सुलेमान कहता है—"वृथाभिमानका अभिमान, वृथाभिमानका अभिमान!—सब निस्सार है, वृथाभिमान है! आदमी सूर्यके नीचे जो सारी मेहनत करता है उससे उसे क्या फायदा होता है? एक पीढ़ी जाती है और दूसरी आती है लेकिन पृथ्वी सदा बनी रहती है। जो चीज पहले रही है, वही आगे भी होगी, जो काम किया गया है वह वही है जो आगे भी किया जायगा। सूर्यके नीचे (दुनियामें) कोई भी चीज नई नहीं है। क्या कोई ऐसी चीज है जिसे देखकर कहा जा सके—देखो, यह नई

दुःख है। और जो ज्ञानको बढ़ाता है।वह दुःखको भी बढ़ा लेता है।"

मैंने अपने दिलमें कहा —"हटो, चलो, अब मैं प्रफुल्लतामें तुझे सिद्ध करूंगा, इसलिए सुख भोगूंगा।' और देखो यह भी मिथ्या अहंकार है। मैंने हंसीके बारेमें कहा : यह पागल है। उल्लासके बारे में कहा : यह क्या कर सकता है? मैंने अपने मनमें यह देखनेकी कोशिश की कि मैं अपने हाड़-मासको शराबसे कैसे खुश रख सकता हूं। मैंने इसकी कोशिश की कि मेरे हृदयमें ज्ञानकी ज्योति जगमगाती रहे और साथ ही मैं बुराइयोंमें प्रवेश करके देखूं कि मनुष्य जो इतने दिन जीता है तो उसके जीवनकेलिए सबसे अच्छी बात क्या है। मैंने बड़े-बड़े काम किये, मैंने अपनेलिए मकान बनवाये अंगूरकी खेती की· मैंने बगीचे और उपवन खड़े किये और उनमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष लगवाये। बागके वृक्षोंको सींचनेके लिए मैंने नहरें बनवाईं, मैंने दास और दासियां रखी और खुद अपने मकानमें दास पैदा कराये, पशुओं और चौपायोंका जैसा संग्रह मेरे पास था वैसा मेरे से पहले जरूसलममें कभी देखा नहीं गया था। मैंने राजाओं और बादशाहों तथा सूबोंसे सोना-चांदी,रत्न और आश्चर्य-जनक कोष इकट्ठा किया। मेरे पास गायकों और गायिकाओंकी कमी न थी, सब तरहके वाद्य-यंत्रोंका, जिनसे मानव-जाति आनंद-उपभोग करती है, मेरे पास भंडार था। इस तरह मैं महान् था और मेरे पहले जरूसलममें जितने लोग हुए उन सबसे अधिक वैभव मेरे पास था। लिहाजा मेरा विवेक और ज्ञान भी मेरे साथ था। मेरी आंखोंने जिस चीजकी आकांक्षा की मैंने उन्हें वही दिया। किसी तरह के सुख-भोगसे मैंने अपने हृदयको वंचित नहीं रखा। बादमें मैंने अपने उन सब कामोंपर गौर किया, उन सब [illegible] दिया, जिनके पानेकेलिए मैंने इतना श्रम किया था। मैंने देखा [illegible] सब मिथ्या अहंकार और आत्मोद्वेग-मात्र है, उन चीजोंमें कुछ भी [illegible] है। [illegible] उन [illegible] अपना मन [illegible] ज्ञान, [illegible] और [illegible] देखनेकी कोशिश की पर मैंने अनुभव किया

कि इन सबके साथ एक ही घटना घटित होती है। तब मैंने अपने दिलमें कहा कि मूर्खके साथ भी वही बात होती है और मेरे साथ भी वही बात होती है, तब मैं उससे अधिक बुद्धिमान् किस तरह हूँ? तब मैंने मनमें कहा कि यह भी एक मिथ्या अहंकार ही है, क्योंकि जैसे मूर्खकी सदा याद नहीं रहती वैसे ही बुद्धिमान्को भी लोग सदा याद नहीं रखते, भूल ही जाते हैं। आज जो कुछ है वह सब लोग आनेवाले दिनों यानी भविष्यमें भूल जायगे। और बुद्धिमान् आदमी कैसे मरता है? वैसे ही जैसे मूर्ख मरता है। इसलिए मुझे जीवनसे घृणा हो गई क्योंकि संसारमें जो कुछ काम है सब दुःखसे पूर्ण है, सब कुछ मिथ्या अहंकार और आत्मोद्वेगमात्र है। बस, मैंने अबतक जो कुछ किया था, जो काम किये थे, उन सबसे मुझे घृणा हो गई क्योंकि मैं देखता था कि इन सबको अपने बाद आने-वाले आदमीकेलिए मुझे छोड़ जाना होगा। भला आदमी जो इतना श्रम करता और इतनी परेशानी उठाता है उससे उसे क्या मिलता है?

उनकी याद भी भुला दी जाती है। मौतके साथ ही उनके प्रेम, उनकी घृणा, उनके ईर्ष्या-द्वेष सबका अंत हो जाता है। फिर कभी दुनियामें किये जानेवाले किसी काममें उनका कोई हिस्सा नहीं रहता।"

ये सुलेमान अथवा जिसने भी इसे लिखा हो, उसके शब्द हैं।

अब भारतीय ज्ञान भी सुनिये :

शाक्यमुनि एक तरुण और सुखी राजकुमार थे। उनसे बीमारी, बुढ़ापे और मृत्युके अस्तित्वकी बात छिपा रखी गई थी। एक दिन वह सैरको निकले और उन्होंने एक अत्यंत जीर्ण बूढ़े आदमीको देखा, जिसके दांत टूट गये थे और मुंहसे फेन निकल रहा था। चूंकि राजकुमारसे तबतक बुढ़ापेका अस्तित्व छिपाया गया था, इसलिए उनको यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने सारथीसे पूछा—'यह क्या चीज है और इस आदमीकी इतनी बुरी और दुःखदायी हालत क्यों है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि सभी मनुष्योंके भागमें यह बात लिखी है और स्वयं उनकी भी अनिवार्यतः यही हालत होगी तो वह आगे सैरको न जा सके। सारथीको घर लौटनेकी आज्ञा दी, जिससे वह इस घटना पर विचार कर सकें। घर लौटकर उन्होंने अपनेको एक कमरेमें बंद कर लिया और घटनापर विचार करने लगे। शायद उन्होंने अपने दिलको किसी तरह समझा-बुझा लिया होगा, क्योंकि बादमें वह फिर प्रफुल्ल और सुखी होकर सैरको निकले। इस बार उनको एक बीमार आदमी दिखाई दिया। इस आदमीका शरीर सूख गया था, वह नीला पड़ गया था, शरीर [illegible] रहा था और आंखोंमें अंधेरा छा रहा था। चूंकि राजकुमारसे बीमारीके अस्तित्वकी बात छिपाई गई थी, इसलिए उन्होंने इस आदमी-को देखनेके लिए रथ रुकवा दिया और पूछा—'क्या बात है?' जब उन्हें मालूम हुआ कि यह बीमारी है जो सभीको होती है और स्वस्थ और प्रसन्न [illegible] भी इस बीमारीके पंजेमें पड़ सकते हैं तो वह सैरका आनंद भूल [illegible] और शायद सोच-विचारके बाद अपने मनको [illegible] क्योंकि तीसरे दिन वह फिर सैरको

बार सैरकेलिए निकले। पर इस बार भी उन्हें एक नया दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि लोग किसी चीजको कंधे पर रखे लिये जा रहे हैं। पूछा—'यह क्या है?' उत्तर मिला—'मुरदा है।' राजकुमारने सवाल किया—'मुरदा क्या होता है?' उनको बताया गया कि उस आदमी को-सी अवस्थामें हो जाने पर मुरदा कहते हैं। राजकुमार अर्थीके नजदीक गये, कपड़ा हटाया और उसे देखा। पूछा—'अब इसका क्या होगा?' लोगोंने कहा कि अब इसे जलायेंगे। 'क्यों?' क्योंकि अब वह फिर जी नहीं सकता और उसके शरीरसे सिर्फ बदबू और कीड़े पैदा होंगे। 'क्या सब आदमियोंकी यही गति होती है? क्या मेरी भी यही हालत होगी? क्या लोग मुझे भी जला देंगे? क्या मेरे शरीरसे भी बदबू पैदा होगी और उसे कीड़े खायंगे?' उत्तर मिला—हां। राजकुमारने सारथी से कहा—

'दुःख, और अनिवार्यतः शक्ति-हीन, वृद्ध तथा मृत्यु होनेकी चेतनाके बीच रहना असंभव है। हमें जीवनसे—सब प्रकारके संभव जीवनके जालसे छूटना ही होगा', यह बुद्धकी वाणी है।

और इन महापुरुषों एवं चिंतकोंने जो कुछ कहा है उसे लाखों आदमियोंने कहा, सोचा और अनुभव किया है। मैंने भी इसे सोचा और अनुभव किया है।

इस तरह विज्ञानोंके बीच जो सैर मैंने की उससे अपनी निराशामें छूटनेकी जगह मैं उसमें और भी जोरोंके साथ फंसता गया। ज्ञानके एक वर्गने जीवनके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया, दूसरेने सीधा जवाब दिया और मेरी निराशाको पक्का कर दिया। उसने यह कहनेकी जगह कि जिस नतीजेपर मैं पहुंचा हूं वह मेरी भूल या मेरे मनकी अस्वस्थ अवस्थाका परिणाम है, उलटे कहा कि मैंने जो सोचा है, ठीक ही सोचा है और मेरे विचार सबसे शक्तिमान् मानवी-मस्तिष्कों द्वारा पहुँचे हुए नतीजोंसे मेल खाते हैं।

अपनेको धोखेमें रखनेमें कोई फायदा नहीं है। यह सब मिथ्या अहंकार है। जो पैदा नहीं हुआ है वही सुखी है—भाग्यवान् है, मृत्यु जीवनसे अच्छी है और आदमीको जीवनसे अवश्य मुक्ति-लाभ करना चाहिए।

: ७ :

इसी मार्गपर चलकर हमारी श्रेणीके अधिकतर मनुष्य अपनेलिए जीवन सम्भव बनाते हैं। अपनी परिस्थितिके कारण उन्हें अपने जीवनमें कठिनाईकी जगह आराम और सुख-भोग अधिक मिलता है और अपनी नैतिक अपंगताकी वजहसे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थितिने जो सुविधा दिला रखी है वह आकस्मिक है और सुलेमानकी तरह हर आदमीको हजार पत्नियां और महल नहीं मिल सकते। वे यह भी भूल जाते हैं कि हर ऐसे आदमीके बदले, जिसके पास हजार औरतें हैं, हजार आदमी बिना औरतके ही रह जाते हैं और हर महलको बनानेमें हजार आदमियोंको पसीना बहाकर काम करना पड़ता है और जिस घटना-चक्रने आज मुझे सुलेमान बना दिया है वही कल मुझे सुलेमानका दास भी बना सकता है। चूंकि इन आदमियोंकी कल्पना-शक्ति बिलकुल कुंठित हो चुकी होती है, इसलिए वे उन बातोंको भुला सकते हैं, जिनके कारण बुद्धको शान्ति नहीं मिलती थी—यानी उस अनिवार्य बीमारी, बुढ़ापे और मौतको वे भूल जाते हैं, जो आज या कल इन सब सुखोंका खात्मा कर देगी।

हमारे जमानेके और हमारी तरह जिंदगी बितानेवाले अधिकतर आदमी इसी तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह ठीक है कि इनमेंसे कुछ लोग अपने कठिन विचारों और कल्पनाओंको एक तरफ-जानेके

है कि जब आदमी समझ ले कि जीवन केवल एक बुराई और निरर्थक-सी वस्तु है तब उसे नष्ट कर दे। कुछ असाधारण रूपसे शक्तिमान् और दृढ़ व्यक्ति ही ऐसा करते हैं। अपने साथ जो मजाक किया गया है उसकी निरर्थकता समझ लेने और जीनेसे मर जाना अच्छा है तथा अस्तित्त्व न रखना सबसे अच्छा है, यह जान लेनेके बाद वे इस मूर्खता-पूर्ण मजाकका खात्मा कर देते हैं—क्योंकि खात्मा करनेके साधन भी मौजूद हैं गलेके चारों ओर रस्सीका फंदा, पानी, कलेजेमें घुसेड़ लेनेके लिए छुरा, रेलपर चलनेवाली गाड़ियां। हममेंसे जो लोग ऐसा करते हैं उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। इनमेंसे अधिकतर अपने जीवनके सबसे अच्छे कालमें, जब उनके मनकी शक्ति खूब विकसित होती है और मनुष्यके मनको विकृत और पतित करनेवाली आदतें भी उनमें बहुत कम होती हैं, ऐसा करते हैं।

मैंने देखा कि पलायनका यही सबसे अच्छा उपाय है और मैंने इसे ही ग्रहण करनेकी इच्छा की।

इसी मार्गपर चलकर हमारी श्रेणीके अधिकतर मनुष्य अपनेलिए जीवन संभव बनाते हैं। अपनी परिस्थितिके कारण उन्हें अपने जीवन मे कठिनाईकी जगह आराम और सुख-भोग अधिक मिलता है और अपनी नैतिक अंधताकी वजहसे यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थितिने जो सुविधा दिला रखी है वह आकस्मिक है और सुलेमानकी तरह हर आदमीको हजार पत्नियां और महल नहीं मिल सकते। वे यह भी भूल जाते हैं कि हर ऐसे आदमीके बदले, जिसके पास हजार औरतें हैं, हजार आदमी बिना औरतके ही रह जाते हैं और हरमहलको बनाने-मे हजार आदमियोंको पसीना बहाकर काम करना पड़ता है और जिस घटना-चक्रने आज मुझे सुलेमान बना दिया है वही कल मुझे सुलेमानका दास भी बना सकता है। चूंकि इन आदमियोकी कल्पना-शक्ति बिलकुल कुंठित हो चुकी होती है, इसलिए वे उन बातोंको भुला सकते हैं, जिनके कारण बुद्धको शांति नहीं मिलती थी—यानी उस अनिवार्य बीमारी, बुढ़ापे और मौतको वे भूल जाते हैं, जो आज या कल इन सब सुखोंका अंत कर देगी।

हमारे जमानेके और हमारी तरह जिंदगी बितानेवाले अधिकतर आदमी इसी तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह ठीक है कि इनमें-से कुछ लोग अपने कठिन विचारों और कल्पनाओंको एक तत्त्व-ज्ञानके रूपमें घोषित करते हैं और उसे 'निश्चयात्मक' (पॉजिटिव) नाम देते हैं पर मेरी सम्मतिमें, इसके कारण वे उन लोगोंके झुंडसे अलग नहीं किये जा सकते, जो प्रश्नको दृष्टिसे ओट करनेकेलिए, शहद चाटते हैं। मैं इन आदमियोंकी नकल नहीं कर सकता, और उनकी जैसी मंद कल्पना न होनेके कारण मैं उनकी तरह इसे बनावटी तौरपर अपने अंदर पैदा भी नहीं कर सकता। मैं अजगर और चूहेसे अपनी आंखें हटा नहीं सकता और कोई चेतनाशील मनुष्य एक बार उन्हें देख लेनेके बाद ऐसा नहीं कर सकता।

[illegible] बल और शक्तिका है। इसके माने, यह

है यह ज्ञान ही न हो। पर मैं इस ज्ञानसे रहित न रह सका और जब एक बार यह ज्ञान हो गया तब उससे आँखें कैसे बंद कर सकता था? दूसरा उपाय यह था—बिना भविष्यका विचार किये जैसा भी जीवन है, बिताया जाय। मैं ऐसा भी नहीं कर सकता था। शाक्यमुनिकी तरह जानते हुए कि बुढापा, बीमारी और मौतका अस्तित्व है, मैं सैर-शिकारको नहीं जा सकता था। मेरी कल्पना बड़ी प्रबल थी। मैं उन आकस्मिक क्षणोंमें भी प्रसन्नता नहीं अनुभव कर पाता था जो पलभरकेलिए मेरे सामने सुखके टुकड़े फेंक देते थे। तीसरा उपाय यह था कि इस बातको समझ लेनेके बाद कि जिंदगी एक बुराई और बेवकूफीसे भरी हुई चीज है, अपनेको मारकर उसका खात्मा कर देता। मैं जीवनकी व्यर्थता समझता था फिर भी किसी वजहसे आत्म-हत्या मैंने नहीं की। चौथा उपाय है—सुलेमान और शापनहारकी तरह रहनेका—यह जानते हुए कि जिंदगी हमारे साथ किया गया एक मजाक है, जीवन बिताने, नहाने-धोने, खाने-पहनने, बात करने और किताबें लिखने का! मेरे लिए यह घृणाजनक और दुखदायी था। लेकिन मैं उस स्थितिमें बना रहा।

आज मैं देखता हूँ कि मैं आत्म-हत्या नहीं कर सका, इसका कारण अपने विचार भ्रम-पूर्ण होनेकी धुंधली चेतना थी। अपनी तथा विद्वानोंकी वह विचार-प्रणाली चाहे कितनी ही विश्वसनीय और संदेह-रहित मालूम पड़ी हो जिसने मुझे जीवनकी व्यर्थता स्वीकार करनेपर विवश किया, पर इस परिणामके औचित्यके संबंधमें मेरे अंदर एक धुंधला संदेह बना ही रहा।

दूसरी तरह कहें : अगर जीवन न होता तो मेरी बुद्धिका अस्तित्व भी न होता, इसलिए बुद्धि जीवन्की संतान है। जीवन ही सब कुछ है। बुद्धि उसका फल है, फिर भी बुद्धि स्वयं जीवनको अस्वीकार करती है। मैंने अनुभव किया कि इसमें कोई-न-कोई गलती है।

मैंने अपनेसे कहा—यह ठीक है कि जीवन एक व्यर्थकी बुराई है। फिर भी मैं जीता रहा हूँ और अब भी जी रहा हूँ सारी मानव-जाति जीती रही है और जी रही है। यह कैसी बात है? जब जीना असम्भव है, तब फिर वह क्यों जीती है? क्या सिर्फ मैं और शापनहार ही इतने बुद्धिमान् हैं कि जीवनकी व्यर्थता और बुराईको समझते हैं?

जिस तर्कसे जीवनका मिथ्या अहंकार सिद्ध होता है वह बहुत कठिन नहीं है और बिलकुल सीधे-सादे लोग दीर्घकालसे उसे जानते हैं फिर भी वे जीते रहे हैं और आज भी जी रहे हैं। फिर क्या कारण है कि वे सब जीते रहते हैं और कभी जीवनके औचित्यमें सदेह करनेकी बात नहीं सोचते?

अपने जीवनका अर्थ समझ लिया हो· क्योंकि बिना यह समझे वह जी नहीं सकता. किन्तु मैं कहता हूँ कि यह सब जीवन निरर्थक है और मैं जी नहीं सकता।

'आत्म-हत्या द्वारा जीवनको समाप्त करनेसे हमें कोई चीज नहीं रोकती। तब अपनेको मार डालो और बहस मत करो। यदि जीवन तुम्हें दुखी करता है तो अपनी हत्या कर लो! तुम जीते हो, और फिर भी जीवन-के तात्पर्यको समझ नहीं सकते तो इस जीवनका अंत कर दो; और जीवनमें आत्म-वंचना करते तथा उन बातोंको कहते और लिखते हुए न फिरो जिसे तुम स्वयं समझनेमें असमर्थ हो। तुम एक अच्छे समाजमें पैदा हुए हो, जिसमें लोग अपनी स्थितिसे संतुष्ट हैं और जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। यदि तुम इसे निरानंद और घृणाजनक पाते हो तो इसे छोड़कर चल दो!'

वस्तुत: हमारे-जैसे लोग जो आत्म-हत्याकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, फिर भी आत्म-हत्या करने का निश्चय नहीं कर पाते, अवश्य ही सबसे दुर्बल, अस्थिर और स्पष्ट शब्दोंमें सबसे मूर्ख आदमी हैं और उन मूर्खोंकी तरह अपनी मूर्खताका प्रदर्शन करते फिरते हैं, जो एक चित्रित पापिनीके विषयमें प्रलाप करते हैं। कारण हमारी बुद्धि और हमारा ज्ञान चाहे कितना ही संदेह-रहित हो, किंतु उसने हमें अपने जीवनका अर्थ समझनेकी शक्ति नहीं दी। परंतु समग्र मानव-जातिके करोड़ों-अरबों लोग अपना जीवन जीते हैं और उन्हें जीवनके अर्थके विषयमें कोई संदेह नहीं रहता।

अत्यन्त प्राचीन कालसे, जिसके बारेमें हमें कुछ भी जानकारी है, जब जीवनका आरम्भ हुआ तबसे जगत्में मनुष्य जीवनकी व्यर्थताका तर्क जानते हुए भी जीते रहे हैं—वही तर्क जिसने मुझे जीवनकी निरर्थकता बतलाई है—परन्तु वे जीवनके कुछ अर्थ प्रदान करके जीते रहे हैं।

जबसे मानव-जीवनका आरम्भ हुआ तबसे ही मनुष्योंको जीवनके अर्थका भी पता रहा है और वे वही जीवन बिताते रहे हैं जो आज मेरे

विश्वसनीय है किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। ये सब निष्कर्ष मुझे इतना विश्वास नहीं दिला सके कि मैं अपने तर्कके अनुसार आचरण भी करूं अर्थात् अपनी हत्या कर लूं। और यदि अपनी हत्या किये बिना ही मैं कहता कि बुद्धिसे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ तो यह एक झूठी बात होती। बुद्धि और तर्क अपना काम कर रहे थे, लेकिन कोई और चीज भी अंदर-ही-अंदर क्रियाशील थी, जिसे मैं जीवनकी चेतनाके नामसे ही पुकार सकता हूँ। मेरे अंदर एक शक्ति काम कर रही थी जो बरबस मेरा ध्यान इस तरफ खींच रही थी; और यही वह शक्ति थी जिसने मुझे मेरी निराशापूर्ण स्थिति से उबारा और एक बिलकुल ही दूसरी दिशामें मेरा मन फेर दिया। इस शक्तिने मुझे इस तथ्यकी ओर ध्यान देनेको मजबूर किया कि मैं और मेरे-जैसे कुछ थोड़े और आदमियोंतक ही मानव-जाति सीमित नहीं है और अभीतक मैं मानव-जीवनका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका हूँ।

अपने वर्गके लोगोंकी संकुचित परिधिमें मैंने देखा कि उनमें ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने या तो इस प्रश्नको समझा ही नहीं है यदि समझा भी है तो उसे जीवनके नशेमें भुला दिया है, अथवा समझकर अपने जीवनका अंत कर दिया है, अथवा इसे समझा तो है, किंतु अपनी दुर्बलताके कारण वे निराशापूर्ण जीवनके दिन बिता रहे हैं। इसके सिवा मुझे दूसरे लोग दिखलाई न पड़ते थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि धन-वान, शिक्षित और निठल्ले लोगोंके इस संकुचित समाजतक—जिसमें मैं भी शामिल था—ही सारी मनुष्य-जाति का खातमा हो जाता है, और वे करोड़ों आदमी, जो इस छोटे समाजके बाहर रहकर जीवन बिताते रहे हैं और आज भी बिता रहे हैं एक प्रकारके पशु हैं—वे असली आदमी नहीं हैं।

यद्यपि इस समय यह बात अविश्वसनीय रूपसे अनौचित्य मालूम होती है कि मैं जीवनके विषयमें तर्क करते हुए भी अपने चारों ओरके संपूर्ण मानव-जीवनको भूल जाता था और यह समझनेकी भूल कर बैठता था

कि मेरा तथा सुलेमान और शापनहारका जीवन ही सच्चा जीवन है और करोड़ों मनुष्योंका जीवन ध्यान देने लायक नहीं—पर उस समय सचमुच यही बात थी। अपनी बुद्धिके अहंकार और आत्म-वंचनामें मुझे यह बात असंदिग्ध मालूम पड़ती थी कि मैंने एवं सुलेमान और शापनहारने जीवनके इस सवालको ऐसे सच्चे और उचित रूपमें रखा है कि उसके अतिरिक्त और कुछ भी संभव नहीं है। यह बात मुझे इतनी असंदिग्ध प्रतीत होती थी कि अपने चारोंओर फैले हुए उन करोड़ों आदमियोंके जीवनके विषयमें कभी मेरे मनमें एक बार भी यह प्रश्न नहीं उत्पन्न हुआ कि 'जो कोटि-कोटि व्यक्ति दुनियामें जीते रहे हैं और जी रहे हैं उन्होंने अपने जीवनका क्या अर्थ समझा था तथा समझा है?

श्रेणियोंमें नहीं बांटे जा सकते। मैं उन्हें न तो उन आदमियोंकी श्रेणीमें रख सकता हूँ, जो प्रश्नको नहीं समझते, क्योंकि वे स्वयं उसे उपस्थित करते हैं और असाधारण स्पष्टताके साथ ।उसका उत्तर देते हैं। मैं उन्हें विषयासक्त भी नहीं मान सकता क्योंकि उनके जीवन में सुख-भोग की अपेक्षा दुःख-कष्ट-भोग ही अधिक है। इनकी गिनती मैं उन लोगोंमें तो कर ही नहीं सकता जो अविवेकपूर्वक अपने अर्थ-हीन जीवनका भार ढो रहे हैं, क्योंकि वे अपने जीवनके हरएक काम और मौततककी व्याख्या कर लेते हैं। आत्म-हत्याको वे सबसे बड़ा पाप समझते हैं। तब मुझपर यह प्रकट हुआ कि सारी मानव-जातिको जीवनके अर्थका ज्ञान था, पर जिसे मैं स्वीकार न करता था और उससे घृणा करता था। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि तार्किक ज्ञान जीवनका अर्थ बितानेमें असमर्थ है, वह जीवनको बहिष्कृत करता है। उधर करोड़ों आदमी—सारा मनुष्य-समाज—जीवनका जो अर्थ लगाते हैं वह एक प्रकारके तिरस्कृत मिथ्या-ज्ञानपर आश्रित है।

पंडितों और विद्वानोंका तर्क-सम्मत ज्ञान जीवनका कोई अर्थ अस्वीकार करता है, परन्तु मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या, करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति, इस अर्थको अतार्किक ज्ञानसे प्राप्त करती है। और यह अतार्किक ज्ञान ही श्रद्धा है—वह वस्तु जिसे मैं अस्वीकार किये बिना रह नहीं सकता था। वह ईश्वर है, वह त्रिमूर्तिमें एक है, वह छः दिनोंमें सृष्टि करनेके समान है। पर इन सब बातोंको मैं उस वक्ततक स्वीकार नहीं कर सकता जबतक मुझमें बुद्धि है।

मेरी स्थिति बड़ी भयंकर थी। मैं जा चुका था कि तार्किक ज्ञान के मार्गपर चलकर तो मैं जीवनकी अस्वीकृतिके सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं कर सकता और उधर श्रद्धाके पक्षमें बुद्धिकी अस्वीकृतिके सिवा दूसरी कोई बात नहीं थी जो मेरे लिए जीवनकी अस्वीकृतिकी अपेक्षा कहीं असम्भव थी। तार्किक ज्ञानसे तो यह प्रकट होता था कि जीवन एक

फिर भी उन्होंने अपने जीवनके दिन पूरे किये और आज भी वे जी रहे हैं। स्वयं मैं जी रहा हूँ, यद्यपि बहुत दिनोंसे मुझे इस बातका ज्ञान है कि जीवन अर्थ-हीन और एक दूषण है। श्रद्धा-द्वारा यह प्रकट होता है कि जीवनका अर्थ समझनेकेलिए मुझे अपनी बुद्धिका तिरस्कार करना चाहिए—उसी वस्तुका जिसकेलिए जीवनका अर्थ जाननेकी आवश्यकता है।

: ६ :

श्रेणियोंमें नहीं बांटे जा सकते। मैं उन्हें न तो उन आदमियोंकी श्रेणीमें रख सकता हूँ, जो प्रश्नको नहीं समझते; क्योंकि वे स्वयं उसे उपस्थित करते हैं और असाधारण स्पष्टताके साथ उसका उत्तर देते हैं। मैं उन्हें विषयासक्त भी नहीं मान सकता· क्योंकि उनके जीवन में सुख-भोग की अपेक्षा दुःख-कष्ट-भोग ही अधिक है। इनकी गिनती मैं उन लोगोंमें तो कर ही नहीं सकता जो अविवेकपूर्वक अपने अर्थ-हीन जीवनका भार ढो रहे हैं· क्योंकि वे अपने जीवनके हरएक काम और मौततककी व्याख्या कर लेते हैं। आत्म-हत्याको वे सबसे बड़ा पाप समझते हैं। तब मुझपर यह प्रकट हुआ कि सारी मानव-जातिको जीवनके अर्थका ज्ञान था, पर जिसे मैं स्वीकार न करता था और उससे घृणा करता था। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि तार्किक ज्ञान जीवनका अर्थ बितानेमें असमर्थ है, वह जीवनको बहिष्कृत करता है। उधर करोड़ों आदमी—सारा मनुष्य-समाज—जीवनका जो अर्थ लगाते हैं वह एक प्रकारके निरंकुश मिथ्या-ज्ञानपर आश्रित है।

पंडितों और विद्वानोंका तर्क-सम्मत ज्ञान जीवनका कोई अर्थ अस्वीकार करता है, परन्तु मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्या, करीब-करीब सारी मनुष्य-जाति, इस अर्थको अतार्किक ज्ञानमें प्राप्त करती है। और यह अतार्किक ज्ञान ही श्रद्धा है—वह वस्तु जिसे मैं अस्वीकार किये बिना रह नहीं सकता था। यह ईश्वर है, यह त्रिमूर्तिमें एक है, यह छः दिनोंमें सृष्टि करनेके समान है। पर इन सब बातोंको मैं उस वक्ततक स्वीकार नहीं कर सकता जबतक मुझमें बुद्धि है।

मेरी स्थिति बड़ी भयंकर थी। मैं जान चुका था कि तार्किक ज्ञान के मार्गपर चलकर तो मैं जीवनकी अस्वीकृतिके सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं कर सकता और उधर श्रद्धाके पक्षमें बुद्धिकी अस्वीकृतिके सिवा दूसरी कोई बात नहीं थी जो मेरे लिए जीवनकी अस्वीकृतिकी अपेक्षा कहीं असम्भव थी। तार्किक ज्ञानसे तो यह प्रकट होता था कि जीवन एक बुराई है, और लोग इसे जानते हैं कि न जीना स्वयं उन्हीं पर निर्भर है;

फिर भी उन्होंने अपने जीवनके दिन पूरे किये और आज भी वे जी रहे हैं। स्वयं मैं जी रहा हूँ, यद्यपि बहुत दिनोंसे मुझे इस बातका ज्ञान है कि जीवन अर्थ-हीन और एक दूषण है। श्रद्धा-द्वारा यह प्रकट होता है कि जीवनका अर्थ समझनेकेलिए मुझे अपनी बुद्धिका तिरस्कार करना चाहिए—उसी वस्तुका जिसकेलिए जीवनका अर्थ जाननेकी आवश्यकता है।

: ९ :

इस प्रकार जो संघर्ष और परस्पर-विरोधी स्थिति पैदा हुई उससे निकलनेके दो मार्ग थे। या तो यह कि जिसे मैं बुद्धि कहता हूँ वह इतनी तर्क-संगत नहीं है जितनी मैं माने बैठा हूँ, अथवा यह कि जिसे मैं अबौद्धिक और अतार्किक समझता हूँ वह इतना अबौद्धिक और तर्क-विरोधी नहीं है जितना मैं समझता हूँ। तब मैं अपने तार्किक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार और उसकी छान-बीन करने लगा।

अपने बौद्धिक ज्ञानकी तर्क-प्रणालीपर विचार करनेपर मुझे वह बिलकुल ठीक मालूम हुई। यह निष्कर्ष अनिवार्य था कि जीवन शून्यवत् है किंतु मुझे एक भूल दिखाई पड़ी। भूल यह थी कि मेरा तर्क उस प्रश्नके अनुरूप नहीं था जो मैंने उपस्थित किया था। प्रश्न था—'मैं क्यों जीऊं अर्थात् मेरे इस स्वप्नवत् क्षणिक जीवनसे क्या वास्तविक और अस्थायी परिणाम निकलेगा इस असीम जगत्में मेरे सीमित अस्तित्वका प्रयोजन क्या है?' इसी प्रश्नका जवाब देनेकेलिए जीवनका अध्ययन किया था।

जीवनके सब संभव प्रश्नोंके हल मुझे संतुष्ट न कर सके क्योंकि मेरा सवाल यद्यपि यों देखनेमें सीधा-सादा था, परन्तु इसमें सीमित वस्तुको असीमके रूपमें और असीमको सीमित वस्तुके रूपमें समझनेकी मांग भी शामिल थी।

मैंने पूछा—'काल, कारण और आकाशके बाहर मेरे जीवनका क्या अर्थ है?' और मैंने इस प्रश्नका यों उत्तर दिया—'काल, कारण और आकाशके भीतर मेरे जीवनका क्या अर्थ है?' बहुत सोच-विचारके बाद मैं यही उत्तर दे सका कि कुछ नहीं।

अपने तर्कोंमें मैं बराबर सीमितकी सीमितके साथ और असीमकी असीमके साथ तुलना करता रहा। इसके सिवा मैं कर ही क्या सकता था? इसी तर्कके कारण मैं इस अनिवार्य निष्कर्षपर पहुंचा—शक्ति शक्ति है, पदार्थ पदार्थ है, संकल्प संकल्प है, असीम असीम है, शून्य शून्य है—इस रीतिसे इसी परिणामपर पहुंचना संभव था।

यह बात कुछ वैसी ही थी जैसी गणितके क्षेत्रमें उस समय होती है जब हम किसी समीकरणको हल करनेका विचार करते हुए यह देखते हैं कि हम समान संख्याओंको ही हल कर रहे हैं। यह तर्क-प्रणाली तो ठीक है, लेकिन उत्तरमें इसका परिणाम यह निकलता है कि 'क' 'क' के बराबर है या 'ख' 'ख' के बराबर है या 'ग' 'ग' के बराबर है। अपने जीवनके अर्थवाले प्रश्नके विषयमें तर्क करते समय भी मेरे साथ यही बात हुई। सब प्रकारके विज्ञानोंद्वारा इस प्रश्नका एक ही उत्तर मिला।

और सच तो यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान—वह ज्ञान जो डिकार्टेकी भांति प्रत्येक वस्तुके विषयमें पूर्ण संदेहके साथ शुरू होता है, श्रद्धा द्वारा स्वीकृत सब प्रकारका ज्ञान अस्वीकार करता है और प्रत्येक वस्तुका बुद्धि, तर्क और अनुभवके नियमोंके आधारपर नवीन रूपसे निर्माण करता है, और जीवनके प्रश्नके विषयमें उनके अलावा और कोई जवाब नहीं दे सकता जो मैं पहले ही प्राप्त कर चुका था अर्थात् एक अनिश्चित उत्तर। शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि विज्ञानने मुझे एक निश्चयात्मक उत्तर दिया है—वह उत्तर जो शापनहारने दिया था यानी जीवनका कोई अर्थ नहीं है और वह एक बुराई है। किन्तु इस विषयकी भली-भांति परीक्षा करनेपर मैंने देखा कि यह उत्तर निश्चयात्मक नहीं है, केवल मेरी अनुभूतिने उसे इस रूपमें प्रकट किया है। ठीक-तौरसे उसे

व्यक्त किया जाय—जैसा कि ब्राह्मणों, सुलेमान और शापनहारने व्यक्त किया है—तो जवाब अनिश्चित अथवा एक-सा मिलता है—वही 'क' बराबर 'क' अथवा जीवन कुछ नहीं है। इस प्रकार यह दार्शनिक ज्ञान किसी वस्तुको अस्वीकार तो नहीं करता, किंतु यह उत्तर देता है कि यह प्रश्न हल करना उसकी शक्तिके बाहर है और उसकेलिए हल अनिश्चित ही रहेगा।

इसे समझ चुकनेके बाद मैंने यह देखा कि तार्किक ज्ञानके द्वारा अपने प्रश्नका कोई उत्तर खोज निकालना संभव नहीं है, और तार्किक ज्ञानके द्वारा मिलनेवाला उत्तर केवल इस बातका सूचक है कि इस प्रश्नका उत्तर प्रश्नके एक भिन्न वक्तव्यकेद्वारा, और तभी प्राप्त हो सकता है जब उसमें असीमके साथ ससीमका संबंध शामिल कर लिया जाय। और मैंने समझा कि श्रद्धा एवं विश्वासद्वारा मिलनेवाला उत्तर चाहे कितना ही तर्क-हीन और विकृत हो, किंतु उसमें ससीमके साथ असीमके संबंधकी भूमिका होती है जिसके बिना कोई हल संभव नहीं है।

मैंने जिस रूपमें भी इस सवालको रखा यह असीम और ससीमके बीचका संबंध उत्तरमें अवश्य प्रतिध्वनित हुआ। मुझे किस प्रकार रहना चाहिए? ईश्वरीय नियमोंके अनुसार। मेरे जीवनसे क्या वास्तविक परिणाम निकलेगा? अनंत कष्ट या अनंत आनंद। जीवनमें जीवनका वह कौन-सा अर्थ है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं करती?—अनंत प्रभुके साथ सम्मिलन स्वर्ग।

इस प्रकार उस तार्किक या बौद्धिक ज्ञानके अलावा, जिसे मैं ज्ञानकी इति समझता था, अनिवार्य रूपसे मुझे स्वीकार करनेकेलिए बाध्य होना पड़ा कि समस्त जीवित मानवताके पास एक दूसरे प्रकारका ज्ञान—अतार्किक ज्ञान—भी है जिसे श्रद्धा कहते हैं और जो मनुष्यका जीना संभव करती है। अब भी यह श्रद्धा मेरेलिए उसी प्रकार अबौद्धिक है जैसे यह पहले प्रतीत होती थी, पर अब मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि सिर्फ इसीके जरिये मनुष्य-जातिको जीवनके इस प्रश्नका

उत्तर मिल सकता है और इसलिए इसीके कारण जीवन संभव है। ज्ञानने हमें यह स्वीकार करनेको विवश किया था कि जीवन अर्थहीन है। उसकी वजहसे हमारी जिंदगीमें रुकावट पैदा हो गई थी और मैं अपना अंत कर देना चाहता था। पर इसी बीच मैंने अपने चारों तरफ फैली मनुष्य-जातिपर निगाह डाली और देखा कि लोग जीते हैं और घोषित भी करते हैं कि उनको जीवनका अर्थ मालूम है। मैंने अपनी तरफ देखा। मैंने अभीतक अपने अंदर जीवन-प्रवाहका अनुभव किया था जबतक मुझे जीवनके किसी अर्थका ज्ञान था। इस तरह न सिर्फ दूसरोंके-लिए, बल्कि मेरेलिए भी श्रद्धाने जीवन सार्थक कर दिया और जीना संभव हुआ।

जब मैंने दूसरे देशोंके लोगों, अपने समकालिकों और उनके पूर्वजों-पर ध्यान दिया तो वहां भी मुझे यही बात दिखाई पड़ी। जबसे पृथ्वीपर मनुष्यका जन्म हुआ तबसे जहां-कहीं भी जीवन है मनुष्य इस श्रद्धाके कारण ही जी सका है और इस श्रद्धाकी प्रधान रूप-रेखा सब जगह मिलती है और सदा एक रहती है।

श्रद्धा चाहे कुछ हो, वह चाहे जो उत्तर देती हो और चाहे जिन्हें वह उत्तर दे; पर उसका प्रत्येक उत्तर मनुष्यके सीमित अस्तित्वको एक अर्थ प्रदान करता है—वह अर्थ जिसका कष्ट, विपत्ति और मृत्युसे अंत नहीं होता। इसका मतलब यह है कि सिर्फ श्रद्धामें ही हम जीवनके-लिए एक अर्थ और एक संभावना प्राप्त कर सकते हैं। तब, यह श्रद्धा क्या है? विचार करके मैंने समझा कि श्रद्धा 'अदृश्यकी साक्षी' मात्र नहीं है, सिर्फ दैवी प्रेरणा ही नहीं है (इससे श्रद्धाका एक निर्देश-मात्र होता है), सिर्फ ईश्वरके साथ मनुष्यका संबंध ही नहीं है (पहले आदमी-को श्रद्धाकी और फिर ईश्वरकी परिभाषा करनी पड़ती है, ईश्वरके द्वारा श्रद्धा की नहीं) यह सिर्फ उन बातोंको मान लेना ही नहीं है जो बताई गई हों यद्यपि श्रद्धाका आमतौरपर यही मतलब लिया जाता है), श्रद्धा तो मानव-जीवनके प्रयोजनका वह ज्ञान है जिसके फलस्वरूप मनुष्य

अपना नाश नहीं करता, बल्कि जीता है। श्रद्धा जीवनका बल है। अगर कोई आदमी जीता है तो वह किसी-न-किसी वस्तुमें श्रद्धा रखता है। यदि उसमें श्रद्धा नहीं है कि किसी चीजकेलिए उसे जीना चाहिए तो वह जी न सकेगा। यदि वह ससीमकी मिथ्या प्रकृतिको नहीं देख और पहचान पाता तो वह ससीममें विश्वास करता है, यदि वह ससीमकी मिथ्या प्रकृतिको समझ लेता है तो फिर उसकेलिए असीममें विश्वास रखना जरूरी है! बिना श्रद्धाके तो वह जी ही नहीं सकता।

मैंने अपने इतने दिनोंतकके सारे मानसिक श्रमका स्मरण किया और कांप उठा। अब मेरे सामने यह बात साफ हो गई थी कि अगर आदमी-को जीना है तो उसे या तो असीमकी तरफसे आंखें मूंद लेनी पड़ेंगी या फिर जीवनके प्रयोजनकी ऐसी व्याख्या स्वीकार करनी पड़ेगी जिससे ससीम और असीमके बीच संबंध स्थापित हो सके। ऐसी व्याख्या पहले भी मेरे सामने थी, परंतु जबतक मैं ससीममें विश्वास रखता रहा तब-तक मुझे इस व्याख्याकी आवश्यकता ही न थी, और मैं तर्ककी कसौटी-पर कसकर उसकी परख करने लगा। तर्कके प्रकाशमें मेरी पहलेकी संपूर्ण व्याख्या टुकड़े-टुकड़े हो गई। पर एक वक्त ऐसा आया कि ससीममेंसे मेरा विश्वास उठ गया। तब मैं जो कुछ जानता था उसके सहारे एक बौद्धिक आधारका निर्माण करने लगा—एक ऐसी व्याख्या-की खोजने लगा जो जीवनको एक अर्थ, एक तात्पर्य प्रदान कर सके; लेकिन मैं कुछ भी न बना पाया। दुनियाके सर्वोच्च मस्तिष्कोंकी तरह मैं भी इसी नतीजेपर पहुँचा कि 'क' 'क'के बराबर है। मुझे इस नतीजेपर बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि इसके सिवा दूसरा कोई नतीजा निकल ही न सकता था।

जब मैंने प्रयोगात्मक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवाब ढूंढना शुरू किया तब मैं कर क्या रहा था? मैं जानना चाहता था कि मैं क्यों जीता हूं, और इसकेलिए मैंने उन सब चीजोंका अध्ययन किया जो मेरे

बाहर है। इसमें शक नहीं कि मैंने बहुत-सी बातें सीखीं; पर जिस चीज की मुझे जरूरत थी वह न मिली।

जब मैंने दार्शनिक विज्ञानोंमें जीवनके सवालका जवाब ढूंढा तब मैं क्या कर रहा था? मैं उन लोगोंके विचारोंका अध्ययन कर रहा था जिन्होंने अपनेको मेरी ही स्थितिमें पाया था और जो इस सवालका—'मैं क्यों जीता हूँ'—कोई जवाब न पा सके थे। इस खोजमें मैं उससे ज्यादा कुछ न जान सका जो खुद जानता था—यानी यह बात कि कुछ भी जाना नहीं जा सकता।

मैं क्या हूं? अनंत का एक अंश। इन थोड़े शब्दोंमें सारी समस्या निहित है।

क्या यह मुमकिन है कि मनुष्यने अपनेसे यह प्रश्न करना सिर्फ कल शुरू किया है? क्या मुझसे पहले किसीने इस प्रश्नको हल करनेकी कोशिश ही नहीं की? यह प्रश्न जो इतना सीधा है और हर एक बुद्धिमान् बच्चे की जबानपर उठता है।

निस्संदेह यह प्रश्न उस जमानेसे पूछा जाता रहा है जबसे इंसानकी शुरुआत हुई। और इंसानकी शुरुआतसे ही इस प्रश्नके हलके बारेमें यह बात भी उतनी ही साफ रही है कि ससीमसे ससीम और असीमसे असीमकी तुलना इस कामकेलिए अपर्याप्त है। इसी तरहसे मनुष्यके आरंभ कालमे ससीम असीमके बीचके संबंधकी खोज लोग करते रहे हैं और उसे उन्होंने व्यक्त भी किया है।

इन सब धारणाओंको, जिनमें ससीमका मेल असीमके साथ बैठाया गया है और जीवनके प्रयोजनकी प्राप्ति की गई है: यानी ईश्वरकी धारणा सकल्प शक्तिकी धारणा, पुण्यकी धारणा, हम तर्ककी कसौटीपर परखते हैं। और ये सब धारणाएं बुद्धिकी आलोचनाका सामना करनेमें अक्षम रहती हैं।

अगर यह बात इतनी भयंकर न होती तो जिस अहंकार और आत्म-तुष्टिसे हम बच्चोंकी तरह घड़ीके पुर्जे-पुर्जे अलग कर देते और फिर

या कमानीको निकालकर उसका खिलौना बना लेनेके बाद इस बातपर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि घड़ी चल क्यों नहीं रही है, वह अत्यत असंगत और भद्दी मालूम पड़ती।

ससीम और असीमके बीच परस्पर-विरोध का हल और जीवनके प्रश्नका ऐसा उत्तर, जो उसका जीना सभव कर सके, आवश्यक और बहुमूल्य है। और यही एक हल है जिसे हम हर जगह, हर वक्त और सब तरह के लोगोंमें पा सकते हैं : यह हल, जो मानव-जीवनके आदिम युगसे चला आ रहा है यह हल, जो इतना कठिन है कि हम इसके-जैसा दूसरा कोई हल निर्माण करनेमें असमर्थ हैं।—और इस हलको हम बड़े हलकेपनके साथ खत्म कर देते हैं, इसलिए कि फिर वही सवाल खड़ा कर सकें जो हर एकके लिए स्वाभाविक है और जिसका हमारे पास कोई जवाब नहीं है।

अनंत ईश्वर, आत्माकी दिव्यता, ईश्वरसे मानवीय बातोंका संबंध-आत्माका ऐक्य और अस्तित्व नैतिक पाप-पुण्यकी मानवीय धारणा—ये सब ऐसी धारणाएं हैं जो मानवीय चिंतनकी प्रच्छन्न असीमतामें निर्मित होती हैं—ये वे धारणाएं हैं जिनके बिना न जीवन और न मेरा अस्तित्व सभव है। फिर भी संपूर्ण मानव-जातिके उस सारे श्रमका तिरस्कार करके मैं उसे नये सिरेसे और अपने मनमाने ढंगपर बनाना चाहता था।

यह ठीक है कि उस वक्त मैं इस तरह सोचता न था, पर इन विचारोंके अंकुर तो मेरे अदर आ चुके थे। सबसे पहले तो मैंने यह समझा कि शापनहार और सुलेमानका साथ देने की मेरी बात मूर्खतापूर्ण है : हम देखते हैं कि जीवन एक बुराई है, फिरभी हम जीते रहते हैं। यह स्पष्टतः मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि अगर जीवन निरर्थक है और मैं सिर्फ जो कुछ सार्थक है उसीका भक्त हूँ तो मुझे जीवनका अत कर देना चाहिए और तब कोई इसे चुनौती देनेवाला न होगा। दूसरी बात मैंने यह अनुभव की कि हमारे सारे तर्क धुरी और दांतेसे अलग हो जानेवाले

पहियेकी भांति एक भ्रमपूर्ण वृत्तिमें ही घूम रहे हैं। चाहे हम कितना ही और कैसी भी अच्छी तरहसे तर्क करें, हमें उस सवालका जवाब नहीं मिल सकता। वहां तो सदा 'क' 'क' के बराबर ही रहेगा, इसलिए सम्भवतः हमारा यह मार्ग गलत है! तीसरी बात जो मेरी समझमें आने लगी, यह थी कि श्रद्धाने इस प्रश्नके जो उत्तर दिये हैं उनमें गभीरतम मानव-ज्ञान एवं विवेक संचित है और यह कि मुझे तर्कके नामपर इनको इन्कार करनेका कोई अधिकार नहीं था, और वे ही ऐसे उत्तर हैं जीवन के प्रश्नका जवाब दे पाते हैं।

: १० :

मैंने इसे समझ तो लिया, पर इससे मेरी स्थिति कुछ ज्यादा अच्छी नहीं हुई। अब मैं ऐसे हर एक विश्वासको स्वीकार कर लेनेको तैयार था जिसमें बुद्धिका सीधा तिरस्कार न होता हो—क्योंकि वैसा होनेपर वह असत्य हो जाता है। मैंने पुस्तकोंके सहारे बौद्ध-धर्म और इस्लामका अध्ययन किया, सबसे अधिक मैंने पुस्तकों और अपने आस-पासके लोगोंसे ईसाई-धर्मका अध्ययन किया।

स्वभावतः पहले मैं अपनी मंडलीके कट्टर मतावलंबियों यानी उन लोगोंकी तरफ झुका जो विद्वान् थे—मैं गिर्जोंके धर्म-शास्त्र-वेत्ताओं, पादरियों तथा इवंजेलिकलों (जो ईसाईद्वारा विश्वके मुक्ति-दानके सिद्धांतमें विश्वास रखते हैं) की तरफ झुका। मैंने इन आस्तिकोंसे उनके विश्वासोंके बारेमें सवाल किये और यह भी पूछा कि वे जीवनका क्या प्रयोजन समझते हैं?

यद्यपि मैंने उनको हर तरहकी छूट दी और हर तरहसे विवाद बचानेकी कोशिश की फिर भी मैं उन लोगोंके धर्मको स्वीकार न कर सका। मैंने देखा कि वे जिन बातोंको अपना धर्म बताते हैं उनके सहारे जीवनका प्रयोजन स्पष्ट होनेकी जगह उलटा धुंधला हो जाता है। और वे

स्वय अपने विश्वासोंसे कुछ इसलिए नही चिपके हुए हैं कि जीवनके उस प्रश्नका उत्तर दे सके, जिसने मुझे श्रद्धातक पहुँचाया, बल्कि कुछ दूसरे ही उद्देश्योके कारण उनको ग्रहण किये हुए हैं जो मेरे प्रतिकूल हैं।

मुझे याद है कि इन लोगोके ससर्गमे बार-बार आशान्वित होनेके बाद मुझे भय होने लगा कि कही मैं फिर निराशाके पूर्ववती गर्त्तमें न गिर जाऊ।

वे लोग जितनी ही पूर्णताके साथ अपने सिद्धात मुझे समझाते, उतनी ही स्पष्टताके साथ मुझे उनकी गलतिया नजर आती। मै अनुभव करने लगा कि उनके विश्वासोमे जीवनके प्रयोजनकी व्याख्याकी खोज करना व्यर्थ है।

यद्यपि वे अपने सिद्धातोंमे ईसाई-धर्मके सत्योंके साथ बहुतेरी अनावश्यक और अनुचित बाते मिला देते थे, पर इसके कारण मेरे मनमें उनके प्रति विरोध नहीं पैदा होता था। उनकी तरफसे मन उचटता और भागता इसलिए था कि इन लोगोंका जीवन भी मेरी ही तरह था। अतर केवल इतना था कि वे अपनी शिक्षाओं और उपदेशोंमे जिन सिद्धातोंका प्रतिपादन करते थे, उनका दर्शन उनके जीवनमे नही होता था। मैंने साफ-साफ अनुभव किया कि वे अपनेको धोखा दे रहे हैं और मेरी तरह ही वे जीवनका इससे ज्यादा कुछ तात्पर्य नही समझते कि जबतक जिंदगी है तबतक जिओ और जो कुछ मिले उपभोग करो। अगर उनको जीवनके ऐसे प्रयोजनका ज्ञान होता जो क्षति, दुःख और मृत्युका भय नष्ट कर देता है तो फिर वे इन चीजोंसे इतने डरते न होते। पर मेरी श्रेणीके ये आस्तिक, ठीक मेरी ही तरह, वैभव और सपन्नताके बीच रहते हुए, उनकी वृद्धि अथवा रक्षा करनेका प्रयत्न करते थे वे भी विपत्ति, पीड़ा और मृत्युके भयसे पीड़ित थे और मेरी तरह या हम-जैसे अन्य नास्तिकोंकी तरह ही वे अपनी वासनाओं एवं आका-

च्छाओंकी पूर्तिकेलिए जीते थे—वे उतनी ही बुरी तरह जीवन व्यतीत करते थे जिस तरह नास्तिक करते हैं।

कोई तर्क मुझे उनके विश्वासकी सचाईमें यकीन नहीं दिला सकता था। यदि उनके आचरणमें भी गरीबी, बीमारी और मौतका वह भय न दिखाई पड़ता जो मुझमें था, तो मैं मानता कि वे जीवनका कुछ अर्थ समझते हैं। मुझे अपनी श्रेणीके आस्तिकोंके आचरणमें ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। इसके विपरीत मैंने उन लोगोंको इस तरहका आचरण करते देखा, जो जबर्दस्त नास्तिक थे' आस्तिकोंमें कहीं वैसा आचरण दिखाई नहीं पड़ा।

तब मैंने समझा कि मैं उस श्रद्धाकी खोज नहीं कर रहा हूँ जो इन लोगोंके विश्वासोंमें निहित है और यह कि उनका विश्वास कोई सच्चा विश्वास नहीं है, बल्कि जीवनको एक इन्द्रियासक्त आत्म-तुष्टि मात्र है।

मैंने समझ लिया कि इस तरहकी श्रद्धा चाहे अनुताप-युक्त सुलेमान को उसकी मृत्यु-शय्या पर, यदि शांति नहीं तो कम-से-कम कुछ भुलावा दे सके, पर यह उन करोड़ों मनुष्योंकी कोई सेवा नहीं कर सकती जिनका काम दूसरोंकी मेहनतपर मौज उड़ाना नहीं बल्कि जीवनकी सृष्टि करना है।

[1]टॉल्स्टॉय का यह वाक्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उन्होंने इस जमानेमें क्रांतिकारी या 'जनताकी ओर लौटो' आंदोलनका बहुत ही कम जगहोंमें जिक्र किया है। इस आंदोलनमें बहुतेरे युवक-युवतियोंने अपने गृह, संपत्ति और जीवनतकका बलिदान किया था। टॉल्स्टॉय और इन क्रान्तिकारियोंके विचारोंमें समानता थी और दोनों किसी-न-किसी रूपमें मानते थे कि समाजके ऊपरी तलके लोग या उच्चवर्ग परान्नभोगी हैं और उन लोगोंका ही खून चूस रहे हैं जो उनका बोझ अपने कंधों-पर उठाये हुए हैं।—सं०

अगर सम्पूर्ण मानव-जातिको जीनेकेलिए समर्थ बनाना है और अगर हम चाहते हैं कि वे जीवनका प्रयोजन समझते हुए जीवन बितायें तो इसकेलिए इन करोड़ों आदमियोंको श्रद्धाका एक दूसरा ही रूप, सच्चा रूप समझना चाहिए। वस्तुत शापनहार और सुलेमानके साथ ही मैंने भी जो अपने जीवनका अंत नहीं किया तो कुछ उससे मुझे श्रद्धा-के अस्तित्वमें विश्वास नहीं हुआ श्रद्धाके अस्तित्वमें विश्वास तो मुझे यह देखकर हुआ कि ये करोड़ों आदमी जीते रहे हैं और जी रहे हैं और उनकी जीवन-धारामें सुलेमान और हम जैसे लोग बहते रहे हैं।

तब मैं दीन-हीन, सीधे-सादे और अशिक्षित आस्तिकों यानी तीर्थ-यात्रियों, पुरोहितों, सम्प्रदायों और किसानोंके नजदीक खिचने लगा। ये मामूली आदमी भी उसी ईसाई-धर्मको मानते थे जिसको मानने का दावा हमारे दायरेके कृत्रिम आस्तिक लोग करते थे। इन आदमियोंमें भी मैंने देखा कि ईसाई सत्योंके साथ बहुतेरे अंध-विश्वासोंको मिला दिया गया है लेकिन दोनोंमें फर्क यह था कि हमारे वर्गके आस्तिकोंकेलिए तो ये अंध-विश्वास सर्वथा अनावश्यक थे और वे उनके जीवनसे मेल न खाते थे—वे एक तरहकी विषयासक्तिके झुकावके द्योतक थे पर श्रमिक लोगोंके बीच प्रचलित अंध-विश्वास उनके जीवनके अनुरूप थे और उनका उनके जीवनसे कुछ ऐसा मेल बैठता था कि उन अंध-विश्वासोंके बिना उनके जीवनकी कल्पना ही न की जा सकती थी—वे उनके जीवन-की एक जरूरी शर्त थे। हमारे वर्ग दायरेके आस्तिकोंकी सारी जिन्दगी उनके विश्वासोंके प्रतिकूल था, पर श्रमिक आस्तिकों की सारी जिंदगी जीवनके उस अर्थको दृढ और पुष्ट करती थी जो वे श्रद्धासे प्राप्त करते थे। इसलिए मैं इन साधारण लोगोंके जीवन और विश्वासपर अच्छी तरह ध्यान देने लगा और जितना ही मैं इसपर विचार करता, उतना ही मेरा विश्वास पक्का होता जाता था कि उनके पास सच्ची श्रद्धा है—ऐसी श्रद्धा जिसकी उनको जरूरत है और जो उनके जीवनको सार्थक करती और उनका जीना संभव बनाती है। हमारे वर्गमें जहां श्रद्धा-रहित जीवन

सभव है और हजारमें मुश्किलसे एक आदमी अपने को आस्तिक कहता है, तहा उनमें मुश्किलसे हजारमें एक नास्तिक मिलेगा। मैंने अपने वर्गमें देखा था कि लोगोंका सारा जीवन बेकारी, सुस्ती, राग-रग और असंतोषमे बीतता है, पर इसके विपरीत इन साधारण आदमियोंमे मने यह देखा कि उनका जीवन घोर श्रममें बीतता है, और वे अपने जीवनमे सतुष्ट हैं। हमारे वर्गके लोग दुःख व कष्ट पड़नेपर भाग्यका विरोध करते और उसे कोसते हैं, परतु इसके विपरीत ये लोग बीमारी और ,दुःखको बिना किसी व्यग्रता, बगैर किसी परेशानी व विरोधके तथा इस शात एव दृढ विश्वासके साथ स्वीकार कर लेते हैं कि जो होता है सब अच्छा ही है। हममें जो जितना ही चतुर और बुद्धिमान् है, वह उतना ही जीवनका प्रयोजन कम समझता है और जीवनके दु खो और मृत्युमे एक कटु व्यग देखता है, परतु इसके विपरीत ये साधारण आदमी जीते हैं और दु ख भी भोगते हैं, वे मृत्यु और कष्टको शाति एव स्थिरतापूर्वक, और अधिकाशतया हसी-खुशीके साथ ग्रहण करते हैं। हमारे वर्ग दायरेमें शातिपूर्ण मृत्यु, भय और निराशासे रहित मृत्यु, दुर्लभ अपवाद है, परतु इसके विपरीत इस लोगोंमे चितापूर्ण, छटपटाहट से भरी हुई और दु:खपूर्ण मृत्यु बहुत ही कम देखी जाती है। और ऐसे लोगोंमे दुनिया भरी पड़ी है, जिनके पास उन सब वस्तुओंका सर्वथा अभाव है जो हमारेलिए या सुलेमानकेलिए जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई हैं, फिर भी वे अत्यधिक आनंदका अनुभव करते हैं। मैंने अपने आस-पास और दूरतक देखा। मैंने बीते हुए युगके और आजकलके असख्य लोगोंके जीवन-पर ध्यान दिया। इनमें जीवनका अर्थ समझनेवाले और जीने एव मरनेमें समर्थ एक-दो या दस-बीस नहीं, बल्कि सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों मनुष्य मुझे दिखाई पड़े। और यद्यपि उनमें भिन्न-भिन्न रग-ढग आचार-व्यवहार मन, शिक्षा और स्थितिके आदमी थे, फिर भी मेरे अज्ञानके सर्वथा प्रतिकूल वे सब जीवन और मृत्युका अर्थ समझते थे तथा अभाव एव दुःख कष्ट सहते हुए शातिपूर्वक काम करते

जीते तथा मरते थे—उनको इनमें मिथ्या अहंकार नहीं बल्कि कुछ अच्छाई दिखाई देती थी।

मैंने इन आदमियोंसे प्रेम करना सीखा। जितनी ही मुझे उन लोगों-के जीवनकी जानकारी होती गई—उन लोगोंके जीवनकी जो जी रहे हैं तथा उनकी भी जो मर चुके हैं, पर उनके बारे में मैंने पढ़कर या सुनकर जानकारी हासिल की है—उतना ही उनके लिए मेरा प्रेम बढ़ता गया और मेरे लिए जीना आसान होता गया। लगभग दो वर्षोंतक मेरी यह हालत रही और इस बीच मेरे अंदर एक भारी परिवर्तन हो गया—वह परिवर्तन जो बहुत दिनोंसे धीरे-धीरे घनीभूत हो रहा था और जिसकी आशा सदा मुझमें बनी रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि अपने वर्ग-के लोगों अर्थात् धनवान् और विद्वान् आदमियोंका जीवन न सिर्फ मेरे निकट फीका और नीरस हो गया बल्कि मेरी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य ही न रह गया। अपने लोगोंका संपूर्ण आचरण, वाद-विवाद, कला और विज्ञान मेरे सामने एक नई रोशनीमें आया। मैंने समझ लिया कि यह सब आत्म-असंयममात्र है और उसमें कुछ अर्थ लेना असंभव है इसके प्रतिकूल जीवनका निर्माण करनेवाले श्रमिक लोगोंका जीवन मुझे सच्चे अर्थसे भरा दिखाई पड़ा। मैंने समझा कि यही जीवन है और इस जीवनसे प्राप्त होनेवाला अर्थ ही सच्चा है: और मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

: ११ :

मुझे याद आया कि जब मैं उन आदमियोंको इन विश्वासोंकी घोषणा करते देखता था, जिनके जीवन और आचरणमें उनका विरोध होता था तो इन्हीं विश्वासोंके प्रति मेरे हृदयमें विरक्ति पैदा होती थी और वे मुझे निस्सार प्रतीत होते थे, पर जब मैंने उन लोगोंको देखा जो इन विश्वासोंके अनुकूल जीवन व्यतीत करते थे तब उन्हीं विश्वासोंने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया और वे मुझे ठीक मालूम पड़ने लगे। उन

बातोंकी याद ।आनेपर मैंने समझा कि क्यों तब मैंने इन विश्वासोंको अस्वीकार कर दिया था और उन्हे निरर्थक पाया था, और क्यों अब उन्हींको स्वीकार करता हूँ और उन्हें अर्थ एवं प्रयोजनसे पूर्ण पाता हूँ। मैं समझ गया कि मैंने गलती की थी और क्यों गलती की थी। इस गलतीका कारण मेरा गलत तरीकेपर सोचना उतना न था जितना मेरा गलत तरीकेपर जीवन व्यतीत करना था मैंने समझ लिया कि मेरे किसी विचार-दोषने सत्यको मुझसे छिपा नहीं रखा था, बल्कि आकाक्षाओं और वासनाओंकी तृप्तिके प्रयत्नमे बीतनेवाले मेरे विषयासक्त जीवनने ही इस सत्यको मेरी आखों-की ओट कर रखा था। अब यह भी मेरी समझमे आ गया कि मेरा प्रश्न कि 'मेरा जीवन क्या है' उसका उत्तर—'वह एक बुराई है'—बिलकुल ठीक था। गलती सिर्फ इतनी थी कि यह उत्तर सिर्फ मेरे जीवनकी ओर सकेत करता था, पर मै इसे सब लोगोंके सामान्य-जीवनपर घटाता था। अब मैंने फिर अपनेसे प्रश्न किया कि मेरा जीवन क्या है और मुझे उत्तर मिला : एक बुराई और असंगति। और सचमुच मेरा जीवन—भोग-विलास और आकाक्षाओं का जीवन—बुरा और निरर्थक था, इसलिए वह उत्तर—'जीवन एक बुराई और असगति है'—सिर्फ मेरे जीवनकी ओर संकेत करता था, न कि सामान्य मानव-जीवनकी ओर। तब मैंने उस सत्यको समझा, जिसे बादमे 'गोस्पेल' (महात्मा ईसाके सदुपदेशों) मे पाया, कि 'मनुष्य प्रकाशको अपेक्षा अधकारको ज्यादा प्रेम करते हैं, क्योंकि उनके आचरण पाप-पूर्ण हैं। प्रत्येक पापी आदमी प्रकाशसे घृणा करता है और इसलिए प्रकाशके समीप नहीं जाता कि उसके आचरणों और कामोंका तिरस्कार किया जायगा।' मैंने यह भी अनुभव किया कि जीवनके अर्थको समझनेकेलिए पहले तो यह जरूरी है कि हमारी जिंदगी बुराईसे भरी और निरर्थक न हो, और फिर उसकी व्याख्या करनेकेलिए विवेककी आवश्यकता पड़ती है। तब मेरी समझमें आया कि क्यों इतने लम्बे अर्सेतक मैं ऐसे स्पष्ट सत्यके इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा और यह भी कि अगर किसीको मानव-जातिके जीवनके

विषयमें सोचना और बोलना हो तो उसे संपूर्ण जातिके जीवनके बारेमें सोचना और बोलना चाहिए, न कि उन लोगोंके जीवनके विषयमें जो पशु और परोपजीवी जीवन बिताते हैं। यह सत्य तो सदा उतना ही सच्चा था जितना दो और दो मिलकर चार होते हैं। पर मैंने इसे स्वीकार नहीं किया था क्योंकि दो और दो चार मान लेने पर मुझे यह भी मानना पड़ता कि मैं बुरा हूँ. और मेरेलिए यह अनुभव करना कि मैं भला हूँ· दो-दो बराबर चारके स्वीकार करनेसे कहीं ज्यादा जरूरी और महत्त्वपूर्ण था। यह ज्ञान होनेपर मैं भले आदमियोंके प्रति आकर्षित हुआ, उनको प्यार करने लगा. अपने प्रति मेरे मनमें घृणा पैदा हुई और मैंने सत्यको स्वीकार किया। अब सब बातें मेरे सामने स्पष्ट हो गईं।

अगर एक जल्लाद. जिसकी सारी जिंदगी लोगोंको दारुण-यन्त्रणा देने और उनका सिर काटनेमें बीती हो.—या एक शराबी व पागल जो एक ऐसे अंधेरे कमरेमें जिंदगीभर रहा हो जिसे उसने अपवित्र कर रखा है और जो सोचता हो कि इसे छोड़कर बाहर निकलते ही वह नष्ट हो जायगा—अपनेसे सवाल करे कि 'जीवन क्या है' तो वह इसके सिवा और क्या जवाब पा सकता है कि जीवन सबसे बड़ी बुराई है। इस पागलका जवाब बिलकुल ठीक होगा, पर वहींतक जहांतक यह स्वयं उस पर लागू होता है। अगर कहीं मैं भी ऐसा ही एक पागल होऊं? और कहीं हम सब धनवान और निठल्ले आदमी इसी तरह पागल हों तब? मैंने अनुभव किया कि हम सब सचमुच ऐसे ही पागल हैं। कम-से-कम मैं तो अवश्य ऐसा था।

चिड़ियाका निर्माण ही इस तरह का होता है कि वह जरूरी तौर पर उड़े. चारा इकट्ठा करे और अपना घोंसला बनाए और जब मैं किसी चिड़ियाको ऐसा करते देखता हूँ तो उसके आनंदसे मुझे भी खुशी होती है। बकरी खरगोश और भेड़िये भी इस तरह बनाये गये हैं कि वे अपने लिए भोजन जुटायें, बच्चे पैदा करें और कुटुंबको खिलायें, उनका पालन-पोषण करें और जब वे ऐसा करते हैं तो मुझे दृढ़ विश्वास होता

है कि वे सुखी हैं और उनका जीवन ठीक तौरसे बीत रहा है। फिर आदमीको क्या करना चाहिए? उसे भी जानवरोंकी तरह अपनी जीविका उपार्जन करना चाहिए। दोनोंमें सिर्फ एक अंतर है कि अगर आदमी यह काम अकेले करेगा तो मिट जायगा; उसे जीविका न सिर्फ अपने-लिए बल्कि सबकेलिए प्राप्त करनी चाहिए। और जब वह ऐसा करता है तब मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह सुखी है और उसका जीवन ठीक तौरपर बीत रहा है। पर मैंने अपने उत्तरदायी जीवनके तीस वर्षोंमें क्या किया? सबकेलिए जीविका-उपार्जन करना तो दूर, मैंने कभी अपनेलिए भी खाद्य-सामग्री पैदा न की। मैं एक परान्नजीवीकी तरह जीता रहा और अपनेसे सवाल करता रहा कि मेरे जीवनका प्रयोजन क्या है? मुझे उत्तर मिला : 'कोई प्रयोजन नहीं।' अगर मानव-जीवनका अर्थ उसे पुष्ट करनेमें है तो फिर मैं—जो तीस सालतक जीवनका समर्थन और पुष्ट करनेमें नहीं, बल्कि अपने अंदर और दूसरोंके अंदर उसका विनाश करनेमें लगा रहा—इसके सिवा और कोई जवाब कैसे प्राप्त कर सकता था कि मेरा जीवन निरर्थक और दूषित है?...निस्संदेह वह निरर्थक और दूषित—दोनों था।

विश्व-जीवन किसीके संकल्पसे चल रहा है—सारे विश्वके जीवन और हमारे जीवनसे कोई अपना तात्पर्य सिद्ध करता है। उस संकल्प-शक्तिका अर्थ समझनेकी आशा करनेकेलिए पहले हमसे जिस कार्य-की आशा की जाती है, उसे करना चाहिए। लेकिन यदि मैं वह न करूं जिसकी आशा मुझसे की जाती है तो मैं कभी समझ न सकूंगा कि मुझसे क्या करनेकी आशा की जाती है और यह समझना तो और भी कठिन होगा कि हम सब लोगोंसे और सारे विश्वसे क्या करनेकी आशा की जाती है।

अगर एक नंगे भिखारीको सड़कसे पकड़कर सुंदर भवनमें ले [illegible] जाय और उसे अच्छी तरह खिलाया-पिलाया जाय और उसे [illegible] हैंडिल घुमानेका काम दिया जाय तो प्रकट है कि इस

बातपर वहस करनेके पहले, कि क्यो उसे सड़कसे वहा लाया गया और क्यों उसे हैंडिल घुमाना चाहिए और यह कि क्या वहाका सारा काम सुव्यवस्थित है, मतलब और सब बातोंके पहले उसे हैंडिल घुमाना चाहिए। अगर वह हैंडिलको घुमायेगा तो उसे स्वयं पता चल जायगा कि इससे एक पंप चलाया जाता है और पंपके जरिये पानी निकलता है और उस पानीसे बागकी क्यारियोंकी सिंचाई होती है। तब वह पंपिंग स्टेशनसे दूसरी जगह ले जाया जायगा, वहा वह फल चुनकर इकट्ठे करेगा और अपने प्रभुके आनदमे साझीदार होगा, इस तरह धीरे-धीरे उन्नति करते हुए और छोटे कार्योंसे बड़े कार्योंको करते हुए वह दिन-दिन वहाकी व्यवस्थाकी अधिक जानकारी प्राप्त करता जायगा और इस तरह जब वह स्वयं वहाकी व्यवस्थामे भाग लेने लगेगा तो उसके मनमे यह प्रश्न करनेका विचार ही न उठेगा कि वह क्यों वहा है, और इसमे तो सदेह ही नहीं कि वह प्रभुकी बुराई कभी न करेगा।

इसी तरह वे लोग यानी सीधे-सादे, अशिक्षित श्रमिक, जिन्हे हम जानवर समझते हैं, उसकी इच्छाका पालन करते हैं, प्रभुकी बुराई नहीं करते, लेकिन हम बुद्धिमान् लोग प्रभुका दिया भोजन तो कर लेते हैं, लेकिन प्रभु जो चाहता है उसे नहीं करते,—करना तो दूर रहा उलटे एक गोलमें बैठकर बहस करते हैं :'क्यों हमे उस हैडिलको चलाना चाहिए? क्या यह मूर्खतापूर्ण नहीं है?' हम लोग ऐसे ही निर्णय करते हैं कि प्रभु मूर्ख है या उसका अस्तित्व ही नहीं है, और हम बुद्धिमान् हैं। पर हम सिर्फ यही अनुभव कर पाते हैं कि हम बिलकुल निरर्थक हैं और हमें किसी तरह अपनेसे पिंड छुड़ाना चाहिए।

: १२ :

बौद्धिक ज्ञानके भ्रमकी चेतनाने मुझे फालतू मुक्ति, तर्क अथवा विवाद के प्रलोभनने छुड़ानेमें सहायता की। इस विश्वाससे कि सत्यका ज्ञान तदनुकूल आचरणसे ही हो सकता है, मुझे अपनी जीवन-विधिके औचित्य-

में संदेह पैदा हुआ; लेकिन मेरी रक्षा केवल इस कारण हुई कि मैं सबसे कटकर अलग रहना छोड़ सका और श्रमिक लोगोंके सीधे-सादे जीवनको देख सका तथा यह समझ सका कि केवल यही सच्चा जीवन है। मैंने समझ लिया कि यदि मैं जीवन और उसके अर्थको समझना चाहूँ तो मुझे परान्नजीवीका नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन बिताना चाहिए और मानव जातिने जीवनको जो अर्थ प्रदान किया है उसे ग्रहण करना और उस जीवनमें निमग्न होकर उसको पहचानना चाहिए।

उस जमानेमें मेरे ऊपर जो बीती उसकी कथा इस प्रकार है। पूरे साल भरतक, जब प्रतिक्षण मेरे मनमें यह प्रश्न उठता था कि क्यों न मैं गोली या फांसीकी रस्सीसे सारे झगड़ेका खात्मा कर दूं, तभी उन विचार-धाराओंके साथ-साथ जिनके बारेमें मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ, मेरा हृदय एक वेदनामयी अनुभूतिसे दब रहा था। इसे मैं ईश्वरकी खोजके सिवा और कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ।

मैं कहना चाहता हूँ कि ईश्वरकी इस खोजमें तर्क नहीं, अनुभूति थी; क्योंकि यह खोज मेरे विचार-प्रवाहसे नहीं पैदा हुई थी, (उसमें उसका प्रत्यक्ष विरोध भी था) बल्कि हृदयसे उद्भूत हुई थी। यह किसी अज्ञात प्रदेशमें अनाथ और अकेले पड़ जाने और किसीसे सहायता पानेकी आशाकी भावना थी।

यद्यपि मुझे पूरा विश्वास था कि ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करना असंभव है (काटने दिखा दिया था, और मैं उसकी बातको समझता भी था, कि उसे सिद्ध या प्रमाणित नहीं किया जा सकता), फिर भी ईश्वरकी प्राप्तिकी चेष्टामें लगा रहा, मैंने आशा रखी कि वह मुझे प्राप्त होगा और पुराने स्वभावके कारण उसके प्रति प्रार्थना और विनय करता रहा जिसकी मुझे खोज थी, पर जिसे अभीतक मैंने पाया न था। काट और शापनहारने जिन तर्कोंके द्वारा ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करना असम्भव बताया था उनपर मैं मनमें विचार करने लगा। मैंने उनकी जांच शुरू की और उनका खंडन करने लगा। मैंने अपनेसे कहा कि

कारण, काल एव आकाशकी भाति कोई विचार-श्रेणी नही है। यदि मेरा अस्तित्व है तो इसका कोई कारण अवश्य होगा और फिर इन कारणोंका भी कोई कारण होगा। और सबका जो मूल कारण है उसे ही लोगोंने 'ईश्वर' कहा है। मैं इस विचार पर रुका और अपनी सारी शक्तिसे उस आदि कारणकी उपस्थिति अनुभव करनेकी कोशिशकी और ज्योंही मैंने स्वीकार कर लिया कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जिसके वशमें मैं हूँ, त्योंही मैंने अनुभव किया कि अब मेरेलिए जीना संभव है। लेकिन मैंने अपनेसे पूछा : वह कारण, वह शक्ति क्या है? उसका चितन मुझे किस प्रकार करना चाहिए? उस शक्तिके साथ जिसे मैं 'ईश्वर' कहता हूँ मेरा सबध क्या है? इन सवालोंके मुझे वही पूर्व-परिचित उत्तर मिले : 'वह स्रष्टा और पालक है।' इस जवाबसे मुझे संतोष नही हुआ, और मैंने अनुभव किया कि जिस चीजकी मुझे अपने जीवनकेलिए आवश्यकता है उसे मैं अपने अंदर-ही-अदर खो रहा हूँ। मैं डर गया और जिस ईश्वरकी खोजमे था, उसीसे प्रार्थना करने लगा कि वह मेरी सहायता करे। लेकिन मैं जितनी ही प्रार्थना करता था उतना ही मुझे यह स्पष्ट होता गया कि 'वह' मेरी नही सुनता है और कोई ऐसा नहीं है जिसके सामने मै अपनी पुकार करू। तब हृदयकी गहरी निराशाके साथ, मैंने कहा : प्रभु! मुझपर कृपा करो। मेरी रक्षा करो। हे नाथ! मुझे ज्ञान दो।' परतु किसीने मुझपर कृपा नहीं की और मै अनुभव करने लगा कि मेरे जीवनकी गति रुक रही है।

लेकिन हर तरफ से टकराकर वार-बार मै इसी नतीजे पर पहुँचता कि बिना किसी कारण या हेतु या प्रयोजनके इस ससारमे मेरा आगमन सभव नहीं है; मै पक्षीके उस बच्चेकी तरह नही हो सकता जो एकाएक अपने घोंसलेसे गिर पड़ा हो। और यदि मै मान भी लूँ कि बात ऐसी ही है और मै पीठके बल लंबी घासोंपर पड़ा हुआ चीख रहा हूँ, तब भी तो मैं चीखता इसलिए हूँ कि मै जानता हूँ कि एक माने मुझे अपने पेटमें बढाया, सेया, जन्म दिया और चारा चुगा-चुगाकर मुझे बड़ा किया

है तथा वह मुझे प्यार करती है। तब वह—वह मा कहा है ? अगर मुझे त्याग दिया गया है तो वह कौन है जिसने मुझे त्यागा है ? मै अपने-से यह बात छिपा नहीं सकता कि किसी-न-किसीने मुझे जन्म दिया, पाला और मुझे प्रेम किया है। तब यह 'कोई' कौन है ? फिर वही उत्तर 'ईश्वर' ? तब वह मेरी खोज मेरी निराशा और मेरे सघर्षको जानता है और देख रहा है।

तब मैने अपने मनमें कहा—'उसका अस्तित्त्व है।' इसे स्वीकार करनेके अनंतर क्षणभरमे मेरे अंदर जीवन उठ खड़ा हुआ और मुझे जीवनकी संभवनीयता और आनंदका अनुभव हुआ। पर फिर वही बात हुई। ईश्वरके अस्तित्त्वकी इस स्वीकृतिके बाद मै उसके साथ अपने सबध-का पता लगाने चला, और फिर मैने उस ईश्वरकी कल्पना की, जो हमारा स्रष्टा है और जिसने अपने पुत्रको हमारे उद्धारकेलिए पृथ्वी-पर भेजा, बस जगत तथा मुझसे पृथक् वह ईश्वर फिर मेरी आखोंके सामने ही बर्फके टुकड़ेकी तरह पिघलकर बह गया उसका कोई चिह्न नहीं रह गया और फिर मेरे अदर जीवनका वह स्रोत सूख गया; निराशा-से मेरा मन भर गया और मैने अनुभव किया कि सिवाय अपनी हत्या कर डालनेके अब मै और कुछ नहीं कर सकता। और सबसे बुरी बात तो यह थी कि मै अनुभव करता था कि मै अपनेको मार भी नहीं सकता।

केवल दो या तीन बार नहीं, बल्कि सैकड़ो बार मेरी यही दशा हुई पहले आनद एव उल्लास और फिर जीवनकी असंभवनीयताकी चेतना और निराशा।

मुझे याद है, बसन्तकी शुरुआतके दिन थे। मै वनमें अकेला घूम-घूमकर बैठा उनकी ध्वनि सुन रहा था, जो कि मै बराबर पिछले तीन वर्षोंमे [illegible] ध्यान लगाये हुए था। मै पुनः ईश्वरकी [illegible] था।

[illegible] —'अच्छा' मान लो कोई ईश्वर नहीं [illegible] और [illegible]

जीवनकी तरह वास्तविक हो। उसका अस्तित्त्व नहीं है और कोई चमत्कार उसके अस्तित्वको प्रमाणित नहीं कर सकते क्योंकि चमत्कार तो मेरी ही कल्पना के अंतर्गत हैं, फिर वे बुद्धि-ग्राह्य भी नहीं हैं।

'लेकिन जिस ईश्वरकी मैं खोज करता हूँ उसके प्रति मेरा यह अंत-र्बोध, मेरी यह अंतर्धारणा? मैंने अपनेसे पूछा—'यह अंतर्बोध कहांसे आया?' बस यह सोचते ही, फिर मेरा अंतर जीवनकी आनंदमयी लहरोंसे भर गया। मेरे चतुर्दिक् जो कुछ था सब जीवनसे पूर्ण और सार्थक हो उठा। लेकिन मेरा यह आनंद अधिक समय तक स्थिर न रह सका। मेरा मन फिर अपनी उधेड़-बुनमें लग गया।

मैंने अपने मनमें कहा—'ईश्वरकी धारणा तो ईश्वर नहीं है। धारणा तो वह चीज है जो मेरे ही अंदर जन्म लेती है। ईश्वरकी धारणा तो एक ऐसी चीज है जिसे हम अपने अंदर बना सकते या बननेसे रोक सकते हैं। यह तो वह चीज नहीं है जिसकी खोजमें मैं हूँ। मैं तो उस चीजकी खोज कर रहा हूँ जिसके बिना जीवन संभव ही न हो।' बस फिर मेरे बाहर-भीतर जो कुछ था मानो सब निर्जीव होने लगा, और फिर मेरे मनमें अपनेको समाप्त कर देनेकी इच्छा पैदा हुई।

किंतु तब मैंने अपनी दृष्टि अपनेपर, और मेरे अंदर जो कुछ चल रहा था, उसपर डाली, और जीवनकी गतिके बंद होने और फिर प्रफुल्लता और स्फूर्तिका प्रवाह जारी होनेकी उन क्रियाओंका स्मरण किया जो मेरे अंदर सैकड़ों बार घटित हो चुकी थीं। मुझे याद आया कि मुझमें सिर्फ तभीतक जीवनकी अनुभूति हुई जब-जब मैंने ईश्वरमें विश्वास रखा। जो बात पहले थी वही अब भी है जीनेकेलिए मुझे सिर्फ ईश्वरके अस्तित्वके निश्चयकी जरूरत है, और ज्योंही मैं उसे भूलता हूँ या उसमें अविश्वास करता हूँ त्योंही मेरी मृत्यु निश्चित है।

तब स्फूर्ति और मृत्युके ये अनुभव क्या हैं? जब ईश्वरके अस्तित्वमें मेरे विश्वासका लोप हो जाता है तब मानो मेरी जीवन-शक्तिका अंत हो जाता है, तब मैं अपनेको जीता हुआ नहीं अनुभव करता। अगर मेरे

अंदर उसे पानेकी एक धुंधली-सी आशा न होती तो अबतक कभीका मैं अपनी हत्या कर चुका होता। अपनेको सचमुच जीता हुआ तो मैं तभीतक अनुभव करता हूँ जबतक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है। 'तुम और क्या खोजते हो?' मेरे अंदर एक आवाज हुई। 'यही वह है। वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता। ईश्वरको जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर ही जीवन है।'

'ईश्वरकी खोज करते हुए जीओ, तब तुम्हारा जीवन ईश्वर-हीन न होगा।' तब मेरे अंदर और बाहर जो कुछ था वह सब प्रकाशसे पूर्ण हो उठा और उस प्रकाशने फिर मुझे परित्याग नहीं किया।

इस तरह मैं आत्म-हत्यासे बच गया। यह मैं नहीं कह सकता कि कब और कैसे यह परिवर्तन हुआ। जैसे धीरे-धीरे मेरे अंदरकी जीवन-शक्ति नष्ट हो गई थी और मेरेलिए जीना असंभव हो उठा था, जीवन-की गति बन्द हो गई थी और मुझे आत्म-हत्या करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसी तरह धीरे-धीरे मेरे अंदर जीवन-शक्तिका प्रत्यागमन हुआ। और यह एक आश्चर्य-जनक बात है कि जीवनकी जो शक्ति मेरे अंदर लौटी वह कोई नई नहीं थी, बल्कि वही पुरानी शक्ति थी जिसने मेरे जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें मेरा भार वहन किया था।

मैं पुनः उसी अवस्थामें पहुँच गया जो बचपन और किशोरावस्थाके प्रारम्भिक दिनोंमें थी। पुनः मेरे हृदयमें उस संकल्प-शक्ति[1] पर विश्वास उदय हुआ। जिसने मुझे उत्पन्न किया और जो मुझसे कुछ आशा रखती है। मैं पुनः इस विश्वास पर पहुँचा कि मेरे जीवनका प्रधान और एकमात्र उद्देश्य पहलेसे अधिक अच्छा बनना अर्थात् उस संकल्प-शक्तिके अनुरूप जीवन व्यतीत करना है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मानव-जातिने [illegible] अपने पथ-प्रदर्शनके लिए जो कुछ भी निकाला है उसमें [illegible] संकल्प-शक्तिकी अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकता हूँ।

१ टॉल्स्टॉयने 'ईश्वरेच्छा'के अर्थमें इस शब्दका प्रयोग किया है।

मतलब यह कि मै ईश्वरमे, नैतिकपूर्णतामें और जीवनके प्रयोजनकी परपरामें विश्वास करने लगा। दोनों अवस्थाओंमे अंतर इतना ही था कि उस समय ये सब बाते मैंने अचेतनावस्थामे स्वीकार कर ली थी, किंतु अब मै जान गया था कि इसके बिना मेरा जीवन ही असभव है।

मुझपर कुछ इस तरहसे बीती : मै एक नावमे (मुझे याद नही है कब) चढा दिया गया और किसी अज्ञात किनारेसे धक्का देकर नदीकी-ओर बढा दिया गया। मुझे दूसरे किनारेकीओर सकेत करके गतव्य स्थानका एक धुंधला-सा आभास दे दिया गया और मेरे अनभ्यस्त हाथो-में डाड पकड़ा देनेके बाद लोगोंने मुझे अकेले छोड़ दिया। मैंने अपनी शक्ति-भर खेकर नावको आगे बढाया, लेकिन ज्यो-ज्यों मै मंझधारकी ओर बढा त्यों-त्यों प्रवाह तीव्र होता गया और वह बार-बार मेरे लक्ष्यसे दूर बहा ले जाने लगी। अपनी तरह मंने और भी बहुत-से लोगोंको धारामे बहे जाते देखा। कुछ ऐसे नाविक थे जो बराबर खेते भी जा रहे थे, दूसरे कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी पतवार डाल दी थी। वहा मैंने आद-मियोंसे भरी हुई अनेक बड़ी-बड़ी नावे देखीं। कुछ धारासे संघर्ष करती थीं, कुछने आत्म-समर्पण कर दिया था। जितना ही आगे मै बढ़ता गया उतना ही मेरा ध्यान अपनी दिशा भूलकर धारामें बहे जाते हुए लोगोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया और उतना ही मै अपना मार्ग और लक्ष्य, जिधर जानेका सकेत मुझे किया गया था, भूलता गया। ठीक मंझधारमे, जहाजों और नावोंकी भीड़मे, जिन्हे धारा बहाये लिये जा रही थी, मै अपनी दिशा बिलकुल भूल गया, मैंने भी अपनी पतवार डाल दी। मेरे चारों तरफ हसते और उल्लास मनाते हुए वे सब लोग थे जो धाराके साथ बहे जा रहे थे वे सब लोग मुझे तथा परस्पर यह विश्वास दिला रहे थे कि और किसी दिशामें जाना संभव नही है। मैंने उनका विश्वास कर लिया और उनके साथ बहने लगा। मै बहुत दूरतक बहता हुआ चला गया—इतनी दूरतक कि मुझे नदीकी तीव्र धाराओंके गिरनेका जोरदार शब्द सुनाई पड़ने लगा मैंने समझ लिया कि अब मेरा

अंदर उसे पानेकी एक धुंधली-सी आशा न होती तो अबतक कभीका मैं अपनी हत्या कर चुका होता। अपनेको सचमुच जीता हुआ तो मै तभीतक अनुभव करता हूँ जबतक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है। 'तुम और क्या खोजते हो?' मेरे अदर एक आवाज हुई। 'यही वह है। वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता। ईश्वरको जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर ही जीवन है।'

'ईश्वरकी खोज करते हुए जीओ, तब तुम्हारा जीवन ईश्वर-हीन न होगा।' तब मेरे अदर और बाहर जो कुछ था वह सब प्रकाशमे पूर्ण हो उठा और उस प्रकाशने फिर मुझे परित्याग नही किया।

इस तरह मै आत्म-हत्यासे बच गया। यह मैं नही कह सकता कि कब और कैसे यह परिवर्तन हुआ। जैसे धीरे-धीरे मेरे अंदरकी जीवन-शक्ति नष्ट हो गई थी और मेरेलिए जीना असंभव हो उठा था, जीवन-की गति बन्द हो गई थी और मुझे आत्म-हत्या करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसी तरह धीरे-धीरे मेरे अदर जीवन-शक्तिका प्रत्यागमन हुआ। और यह एक आश्चर्य-जनक बात है कि जीवनकी जो शक्ति मेरे अंदर लौटी वह कोई नई नही थी, बल्कि वही पुरानी शक्ति थी जिसने मेरे जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमे मेरा भार वहन किया था।

मैं पुनः उसी अवस्थामे पहुँच गया जो बचपन और किशोरावस्थाके प्रारंभिक दिनोंमे थी। पुनः मेरे हृदयमे उस संकल्प-शक्ति[1] पर विश्वास उदय हुआ। जिसने मुझे उत्पन्न किया और जो मुझसे कुछ आशा रखती है। मै पुनः इस विश्वास पर पहुँचा कि मेरे जीवनका प्रधान और एकमात्र उद्देश्य पहलेसे अधिक अच्छा होना। अर्थात् उस संकल्प-शक्तिके अनुसार जीवन व्यतीत करना है। मै इस विश्वासपर पहुँचा कि मानव-जातिने अनादि-कालसे अपने पथ-प्रदर्शनकेलिए जो कुछ खोज निकाला है उसमे ही मैं उस संकल्प-शक्तिकी अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकता हूँ।

१ टॉल्स्टॉयने 'ईश्वरेच्छा'के अर्थमे इस शब्दका प्रयोग किया है।

मतलब यह कि मैं ईश्वरमे, नैतिकपूर्णतामें और जीवनके प्रयोजनकी परपरामें विश्वास करने लगा। दोनों अवस्थाओंमे अंतर इतना ही था कि उस समय ये सब बाते मैंने अचेतनावस्थामे स्वीकार कर ली थी, किंतु अब मै जान गया था कि इसके बिना मेरा जीवन ही असभव है।

मुझपर कुछ इस तरहसे बीती : मै एक नावमे (मुझे याद नही है कब) चढा दिया गया और किसी अज्ञात किनारेसे धक्का देकर नदीकी-ओर बढा दिया गया। मुझे दूसरे किनारेकीओर सकेत करके गंतव्य स्थानका एक धुंधला-सा आभास दे दिया गया और मेरे अनभ्यस्त हाथों-में डाड पकड़ा देनेके बाद लोगोंने मुझे अकेले छोड़ दिया। मैंने अपनी शक्ति-भर खेकर नावको आगे बढाया, लेकिन ज्यो-ज्यों मै मंझधारकी ओर बढ़ा त्यों-त्यों प्रवाह तीव्र होता गया और वह बार-बार मेरे लक्ष्यसे दूर बहा ले जाने लगी। अपनी तरह मैंने और भी बहुत-से लोगोंको धारामे बहे जाते देखा। कुछ ऐसे नाविक थे जो बराबर खेते भी जा रहे थे; दूसरे कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी पतवार डाल दी थी। वहा मैंने आद-मियोंसे भरी हुई अनेक बड़ी-बड़ी नावें देखीं। कुछ धारासे संघर्ष करती थीं कुछने आत्म-समर्पण कर दिया था। जितना ही आगे मै बढ़ता गया उतना ही मेरा ध्यान अपनी दिशा भूलकर धारामें बहे जाते हुए लोगोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया और उतना ही मै अपना मार्ग और लक्ष्य, जिधर जानेका संकेत मुझे किया गया था, भूलता गया। ठीक मझदारमे, जहाजों और नावोंकी भीड़मे, जिन्हे धारा बहाये लिये जा रही थी, मैं अपनी दिशा बिलकुल भूल गया, मैंने भी अपनी पतवार डाल दी। मेरे चारों तरफ हसते और उल्लास मनाते हुए वे सब लोग थे जो धाराके साथ बहे जा रहे थे, वे सब लोग मुझे तथा परस्पर यह विश्वास दिला रहे थे कि और किसी दिशामें जाना सभव नहीं है। मैंने उनका विश्वास कर लिया और उनके साथ बहने लगा। मै बहुत दूरतक बहता हुआ चला गया—इतनी दूरतक कि मुझे नदीकी तीव्र धाराओंके गिरनेका जोरदार शब्द सुनाई पड़ने लगा मैंने समझ लिया कि अब मेरा

नाश निश्चित है। मैंने उस प्रपातमें नावोंको टुकड़े-टुकड़े होते देखा। मुझे अपनी स्मृति हो आई। एक अर्सेसे मैं यह समझनेमें असमर्थ था कि मेरे साथ क्या घटनाएं हुई हैं। मुझे अपने सामने सिवा उस विनाशके और कुछ दिखलाई न देता था, जिसकी ओर मैं तेजीसे बहता चला जा रहा था और जिसका भय मेरे प्राणोंमें समा गया था। मुझे कहीं रक्षा-का कोई स्थान दिखाई न पड़ता था, और मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिए; किंतु जब मैंने पीछेकी ओर दृष्टि फेरी तो यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गया कि असंख्य नाकाएं श्रमपूर्वक लगातार धाराको काटकर बढ़ रही हैं और तब मुझे किनारे का, डाडोंका, और अपनी दिशाका स्मरण आया और मैंने पीछे लौटकर और धाराको चीरकर तट-की ओर बढ़नेमें अपनी शक्ति लगाई।

यह तट ईश्वर था दिशा परंपरा थी, और तटकी ओर बढ़ने तथा ईश्वरसे मिलनेकी जो स्वतंत्रता मुझे दी गई थी, वही पतवार थी। इस प्रकार जीवनकी शक्ति पुनः मेरे अंदर जाग्रत हुई और पुनः मैंने जीना शुरू किया।

: १३ :

मैं अपने वर्गके जीवनसे दूर हट गया और मैंने स्वीकार किया कि हमारा जीवन कोई जीवन नहीं, बल्कि जीवनका एक स्वांग भर है और वैभव एवं संपन्नताकी जिस स्थितिमें हम रहते हैं वह हमें जीवनको समझनेकी संभावनासे वंचित कर देती है। और यह कि जीवनको समझनेके-लिए अपने जैसे परान्नजीवियों और जीवनपर भार बने लोगोंके अपवाद-तुल्य जीवनको नहीं, बल्कि सीधे-सादे श्रमिक लोगोंके जीवनको समझना चाहिए—उन लोगोंके जीवनको जो जीवनका निर्माण करते हैं। वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं, इसपर भी हमें विचार करना चाहिए। हमारे चारों ओर मेहनत-मजदूरी करनेवाले रूसी लोग थे,

इसलिए मे उनकी ओर झुका और इस बातपर ध्यान देने लगा कि वे जीवनका क्या अर्थ और प्रयोजन समझते हैं। उनके अर्थको शब्दोंमे कहना चाहें तो यों कह सकते हैं : इस ससारमे प्रत्येक मनुष्य ईश्वरकी इच्छासे आया है। और ईश्वरने मनुष्यको इस तरह बनाया है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्माका विनाश व रक्षण कर सकता है। जीवनमे मनुष्यका उद्देश्य अपनी आत्माकी रक्षा करना है और अपनी आत्माकी रक्षा करनेकेलिए उसे 'दिव्य' जीवन बिताना चाहिए 'दिव्य' जीवन बितानेकेलिए उसे सब सुखोपभोगोंका त्याग करना चाहिए, स्वय श्रम करना चाहिए नम्र और दयावान बनना तथा कष्ट सहन करना चाहिए। जनता जीवनका यह अर्थ धर्म और निष्ठाकी उस संपूर्ण शिक्षासे ग्रहण करती है जो उसे पुरोहितो पादरियों और जीवित परपराओसे मिलती है। यह अर्थ मुझे स्पष्ट था और मेरे हृदयके निकट था। पर कोटि-कोटि असाम्प्रदायिक लोगोंके लोकधर्मके इस अर्थके साथ बहुत-सी ऐसी बाते भी अविभेद्य रूपसे मिल गई थी जो मेरी समझमे नही आती थी और जिनसे मुझे घृणा होती थी। सर्व-साधारण इनको अलग-अलग नहीं कर सकते: मैं भी नहीं कर सकता। और यद्यपि लोगोंके विश्वासके साथ मिली बहुतेरी बातोंपर मुझे आश्चर्य होता था फिर भी मैने उनकी सारी बातोंको ग्रहण कर लिया उपसभाओंमें शामिल होने लगा सुबह-शाम प्रार्थनामे सिर झुकाने लगा, उपवास भी किये। पहले मेरी बुद्धिने किसीका विरोध नहीं किया। जो बाते पहले मुझे असंभव प्रतीत होती थीं, अब मेरे अंदर किसी प्रकारका विरोध पैदा नहीं करती थीं।

श्रद्धाके साथ मेरा पहलेका और अबका सबंध बिलकुल जुदा था। पहले जीवन मुझे अर्थसे भरा प्रतीत होता था और श्रद्धा प्रमेयोंका स्वेच्छाचारपूर्ण कथन बिलकुल अनावश्यक, अनुचित और जीवनसे असंबद्ध मालूम पड़ता था। तब मैंने अपने मनमें पूछा कि आखिर इन प्रमेयोंका अर्थ क्या है और मुझको निश्चय हो गया कि उनका कुछ अर्थ नहीं है; मैंने उन्हें अस्वीकार कर दिया। पर अब इसके प्रतिकूल मैं

दृढ़तापूर्वक जानता था कि (बिना श्रद्धाके) मेरे जीवनका कोई अर्थ नहीं है, न कोई अर्थ हो ही सकता है, और श्रद्धाकी वे सब शर्तें अनावश्यक नहीं रह गई, बल्कि असंदिग्ध अनुभवके द्वारा मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि श्रद्धा द्वारा उपस्थित किये जानेवाले ये प्रमेय ही जीवनको एक अर्थ प्रदान करते हैं—उसे सार्थक बनाते हैं। पहले मैं उन्हें अनावश्यक निरर्थक बकवादकी तरह देखता था, पर अब यद्यपि मैं उनको समझता नहीं था फिर भी इतना जानता था कि उनका कुछ अर्थ अवश्य है, और मैंने अपनेमे कहा कि मुझे उनको अवश्य समझना चाहिए।

मैंने अपने मनमें कहा कि विवेकयुक्त सपूर्ण मानवताकी भांति धर्मका ज्ञान भी किसी गोप्य स्रोतमें प्रवाहित होता है। वह स्रोत ईश्वर है, जो मानव-शरीर एव मानवी-विवेक दोनोंका मूल है। जैसे मेरा शरीर मुझे ईश्वरसे मिला है, वैसे ही मेरा विवेक और जीवनका मेरा ज्ञान भी मुझे ईश्वरसे ही प्राप्त हुआ है। इसलिए जीवनके उस ज्ञानके विकासकी विभिन्न श्रेणियां झूठी नहीं हो सकतीं। जिन सब बातोंमें सर्व-साधारणका सच्चा विश्वास है, वे अवश्य सत्य होंगी, उनकी अभिव्यक्तियां भिन्न-भिन्न तरहसे हुई हों, पर वे असत्य नहीं हो सकतीं। इसलिए अगर वे मेरे सामने असत्यके रूपमें आती हैं तो इसका सिर्फ यही मतलब है कि मैं उनको समझ नहीं पाया हूँ। मैंने अपनेसे यह भी कहा कि हर-एक धर्मका तत्त्व जीवनको ऐसा अर्थ प्रदान करता है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं कर सकती। धर्मद्वारा विलासितामें मरते हुए राजा, शक्तिसे अधिक श्रम करनेके कारण पीड़ित वृद्ध-दास, बुद्धि-हीन बच्चे, ज्ञानवान् वृद्ध, मद-बुद्धि बुढ़िया, तरुण-सुखी पत्नी, वासनाओंसे सतप्त नौजवान, मतलब—हर तरहकी शिक्षा और जीवन-मर्यादाके आदमियोंके सवालोंका जवाब दिया जा सके, इसके लिए यह समझ लेना जरूरी है कि यद्यपि जीवनके इस नित्य प्रश्न—कि 'मैं क्यों जीता हूँ और मेरे जीवनमें क्या नतीजा निकलेगा?'—का एक ही उत्तर है अर्थात् यह उत्तर तत्त्वतः एक है, परंतु उसके रूप अनेक होने ही चाहिए और वह जितना ही एक सच्चा और गहरा होगा, प्रयत्न-पूर्वक

की जानेवाली उसकी अभिव्यक्तिमे उतनी ही विचित्रतायें एवं विकृतिया दिखाई पड़ेगी। ये विचित्रतायें और विकृतिया प्रत्येक व्यक्तिके शिक्षण और मर्यादाके अनुकूल होंगी। परतु इस तर्कने यद्यपि धर्मके कर्म-काड पक्षकी अनेक असगतियोंको मेरी आखोके सामने उचित सिद्ध करके पेश किया, फिर भी वह इतना काफी नहीं था कि जीवनके इस महान् मामले—धर्म—मे ऐसी बाते करनेकी आज्ञा देता जो मुझे आपत्ति-जनक प्रतीत होती थीं। अपने संपूर्ण अंतःकरणके साथ मै ऐसी स्थितिमे पहुँचनेकी कामना करता था जिसमें सर्व-साधारणके साथ हिल-मिल सकू और उनके धर्मके कर्म-काड पक्षका पालन एव आचरण कर सकू, लेकिन मैं वैसा कर नहीं सका। मुझे अनुभव होता था कि अगर मैं ऐसा करता हूँ तो मानो अपनेसे ही झूठ बोलता हूँ और जो कुछ मेरे निकट पवित्र है, उसका उपहास करता हूँ। जब मै इस उधेड़-बुनमे पड़ा हुआ था तब नूतन रूसी धार्मिक लेखकोंने मुझे इस संकटसे बचाया।

इन धर्मवेत्ताओंने जो व्याख्याकी वह यों थी कि हमारे धर्मका मुख्य सिद्धात चर्च (ईसाई मंदिर-संस्था) की निर्भ्रांतताका सिद्धात है। यदि हम इस सिद्धातको मान लेते हैं तो इससे अनिवार्य रूपसे निष्कर्ष निकलता है कि चर्च जो कुछ मानता है वह सब सत्य है। बस, प्रेम-द्वारा ग्रथित सच्चे आस्तिकों और फलतः सच्चे ज्ञानियोंके एक समुदायके रूपमें चर्चको मैंने अपने विश्वासका आधार बना लिया। मैंने अपनेसे कहा कि व्यक्तिको ईश्वरीय सत्य प्राप्त नहीं हो सकता· वह सत्य केवल प्रेम-द्वारा जुड़े हुए लोगोंको संपूर्ण समुदायके सामने ही प्रकट होसकता है। सत्यके पानेकेलिए सबसे जुदा नहीं होना चाहिए और सबसे जुदा होनेकेलिए यह जरूरी है कि मनुष्य प्यार करे और उन सब बातोंको सहन करे, जिनको वह नहीं मानता है।

सत्य प्रेमके सामने अपनेको प्रकट करता है और अगर तुम चर्च या ईसाई धर्म-संस्थाके आचारोंके सामने सिर नहीं झुकाते तो तुम प्रेमका उल्लंघन या तिरस्कार करते हो और प्रेमका उल्लंघन करनेके कारण तुम

अपनेको सत्य पहचानने और पानेकी सभावनासे वचित करते हो। इस तर्कमे जो हेत्वाभास या वाक्छल था उसे उस समय मैं देख न सका। मैं नही समझ सका कि प्रेमके सग्रथनसे यद्यपि परमोच्च प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु वह ईश्वरीय सत्यको देनेमे असमर्थ है। मै यह भी नहीं देख सका कि प्रेम सत्यकी किसी खास अभिव्यक्तिको भी सग्रथनकी आवश्यक शर्तके रूपमे नही रख सकता। मेरे तर्कमे जो दोष थे उन्हे उस समय मैंने नही देखा, इसलिए कट्टर धर्म-सस्थाके सपूर्ण आचारोंको मानकर मे उन्हे कार्यान्वित करने लगा—यद्यपि उनमेसे अधिकाशका अर्थ मेरी समझमें न आया था। उस समय मैंने अपने सपूर्ण अंत:करणके साथ सब तरहके तर्कों और विरोधोंसे बचनेकी कोशिश की और चर्चके जो वक्तव्य मेरे सामने आये, उन्हे जहा तक हो सका, उचित समझने और सिद्ध करनेका प्रयत्न किया।

ईसाई-धर्म-सस्था (चर्च) के आचारो और विधियोका पालन करते हुए मैंने अपनी बुद्धिका शमन कर दिया और उस परपराके आगे सिर झुका दिया जो संपूर्ण मानव-जातिमे पाई जाती है। मैंने अपने को पूर्वजों पिता-माता और दादा-दादीके साथ, जिनसे मैं प्रेम करता था, मिला दिया। उन्होंने तथा मेरे पूर्वजोंने इसी प्रकार चर्चमे विश्वास रखते हुए जीवन विताया था और उन्होंने ही मुझे उत्पन्न किया था। मैंने लाखों-करोडों सामान्य लोगोंके साथ भी अपनेको मिला लिया जिनकी मै इज्जत करता था। फिर इन आचारोंके पालनमे कोई 'बुराई' तो थी नहीं। (मै अपनी वासनाओंके प्रति आसक्तिको ही 'बुराई' मानता था)। गिर्जेकी उपासनाओं मे शामिल होनेकेलिए जब मैं सुबह जल्दी उठता था तो समझता था कि मे कोई अच्छा ही काम कर रहा हूँ, क्योंकि अपने पूर्वजों और समकालिकोंके साथ ऐक्य स्थापित करने और जीवनका अर्थ प्राप्त करनेकेलिए, मैं अपने मानसिक अहंकारका त्याग करते हुए अपने शारीरिक सुखोंको छोड़ रहा हूँ। इसी तरह घुटने मोड़कर प्रार्थना करने, व्रत-उपवास करने ईसाके स्मरणार्थ भोजनमें बैठने (कम्यूनियन) वगैरामें भी अच्छाई देखता था।

चाहे ये त्याग कितने ही नगण्य हों, मैं उनको कुछ अच्छेकेलिए ही करता था। मैं व्रत-उपवास रखता, घरपर तथा गिर्जेमें नियत समयपर प्रार्थना करता एवं अन्य आचारोंका पालन करता था। गिर्जेमें जब धर्मोपदेश होता तो मैं उसके एक-एक शब्दपर ध्यान देता और जहाँतक हो सकता उसमें अर्थ ढूँढनेकी कोशिश करता था। धर्मोपदेशमें मेरे-लिए सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द ये होते थे : 'हम एक-दूसरेको एक समान प्यार करें।' आगेके इन शब्दोंको—'हम परम पिता, उसके पुत्र और 'होली घोस्ट'[1]की एकतामें विश्वास रखते हैं' मैं दरगुजर कर जाता था, क्योंकि उन्हें समझ न सकता था।

: १४ :

जीवित रहनेकेलिए श्रद्धा रखना उस समय मेरेवास्ते इतना जरूरी हो गया था कि मैंने अचेतन रीतिसे धर्म-शास्त्रके पारस्परिक विरोधों और अस्पष्टताओंको अपनेसे छिपाया। लेकिन आचारों और विधियोंमें इस तरह अर्थ देखनेकी भी एक सीमा थी। प्रार्थनाका एक बड़ा हिस्सा सम्राट् या जार तथा उसके संबंधियोंकी हित-कामनासे भरा हुआ था। मैंने अपने मनको समझानेकी कोशिश की कि चूँकि उनके सामने प्रलोभन अधिक हैं, इसलिए उनकेलिए प्रभुसे प्रार्थना करना उचित ही है। इसी तरह अपने शत्रुओं और बुराइयोंको पाँव तले दबा सकनेकी प्रार्थनाके बारेमें मैंने अपने मनको यों समझानेकी कोशिशकी कि यहाँ 'शत्रु' का अर्थ 'पाप' है। किंतु इस तरहकी प्रार्थनाओंमें उपासना भरी होती थी। पूजा व उपासनाका प्रायः दो-तिहाई हिस्सा इसी प्रकारकी बातोंसे भरा होता था, जिनका या तो कोई अर्थ ही मेरी समझमें नहीं आता था अथवा यदि मैं खींच-तानकर उनका कोई अर्थ निकालनेकी कोशिश

१ 'होली घोस्ट'=ईसाई त्रिमूर्तिका तृतीय पुरुष जीवात्मा—परमपिता एवं पुत्र (ईसा) से उद्भूत।

करता तो मुझे अनुभव होता था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ और इस प्रकार ईश्वरके साथ मेरा जो सबंध है उसे नष्ट कर रहा हूँ और श्रद्धाकी संपूर्ण संभावनाओंसे अपनेको वंचित कर रहा हूँ।

कुछ ऐसा ही अनुभव मुझे मुख्य-मुख्य त्यौहारोंके बारेमें भी होता था। 'सैबेथ'का स्मरण करना, यानी ईश्वरके ध्यान-पूजामें एक दिन बिताना, इसे तो मैं समझ सकता था। लेकिन छुट्टीका मुख्य दिन प्रभु ईसाके सलीबपर पुनः जीवित हो उठनेके स्मारक-रूपमें मनाया जाता था और इस पुनर्जीवनकी सच्चाईकी मैं किसी प्रकार कल्पना या अनुभूति न कर पाता था। रविवारकी साप्ताहिक छुट्टीको भी 'पुनर्जीवन दिवस'का नाम दिया गया था। क्रिसमस या बड़ा दिनको छोड़कर शेष ग्यारह बड़े त्यौहार चमत्कारोंके स्मारक थे। इन दिवसोंको मनाते समय मुझे अनुभव होता था कि उन्हीं बातोंको महत्त्व दिया जा रहा है जिनका मेरे निकट कोई महत्त्व न था। मैं मनको समझाने और खींच-तानकर अर्थ निकालनेकी कोशिश करता या अपनेको प्रलुब्ध करनेवाली इन बातोंको न देखनेके लिए उधरसे आंख मूंद लेता था।

इनमेंसे ज्यादातर विचार सामान्य और महत्त्व पूर्ण धार्मिक विधियोंको करते समय मेरे दिलमें पैदा हुए थे। इनमें बपतिस्मा और 'कम्यूनियन' (ईसाके स्मरणार्थ भोज: प्रसाद जिसे ईसाई ईसाका रक्त-मांस समझकर ग्रहण करते हैं) की प्रथाएं मुख्य थीं। इनमें कोई ऐसी बात न थी जो दिमागमें न आ सकनेवाली हो, सब बातें साफ और समझमें आने लायक थीं और ऐसी बातें थीं जो मुझे प्रलोभनकी तरफ ले जाती मालूम पड़ती थीं। मैं बड़ी खींचातानीमें पड़ गया कि मुझे अपने प्रति झूठ बोलना चाहिए या उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए।

बहुत वर्षोंके बाद जब पहली बार मुझे 'यूकारिस्ट' (प्रभु ईसाके भोजका प्रसाद ईसाके रक्त-मांस रूपमें) मिला तो मेरे मनकी जो हालत

१ रविवारका दिन, जब ईसामसीह सूलीपर पुनर्जीवित हो उठे थे। रूसमें रविवारको 'पुनर्जीवन (रीजरेक्शन) दिवस' कहा जाता है।

हुई उसे मैं कभी भूल न सकूंगा। पूजा, पापोंकी स्वीकृति और प्रार्थनाएं हर समझमें आ सकनेवाली चीजें थीं और उनसे मेरे मनमें आह्लाद हुआ कि जीवनका अर्थ मेरे सामने खुल रहा है। 'कम्यूनियन'को तो मैंने एक ऐसा कृत्य समझ लिया जो ईसाके स्मरणार्थ किया जाता हो और ईसाकी शिक्षाओंको पूर्णतः ग्रहण करने एवं पापसे मुक्त होनेका निर्देश करता हो। यदि इस व्याख्यामें कुछ बनावट, कुछ कृत्रिमता थी तो मुझे उस वक्त उनका कुछ ध्यान न था। उस सीधे-सादे देहाती पादरीके सामने अपनी आत्माकी संपूर्ण गंदगी निकाल देने और अपने पापोंको स्वीकार करके अपनेको दीन-हीन प्रदर्शित करनेमें मुझे इतनी प्रसन्नता हुई थी मैं गिर्जेकेलिए प्रार्थनाएं लिखनेवाले अतीतकालके धर्म-पिताओंके साथ तन्मयता प्राप्त करके इतना खुश था, पूर्वकाल और इस समयके आस्तिकोंका सन्निध्य प्राप्त करके मुझे इतनी खुशी हासिल हुई थी कि अपनी व्याख्याकी सफाईकी कृत्रिमताकी ओर ध्यान देनेका मुझे मौका ही न मिला। लेकिन जब मैं वेदीके द्वारके निकट पहुँचा और पुरोहितने मुझसे कहलवाया कि 'मुझे विश्वास है कि जो कुछ मैं निगलने जा रहा हूँ वह सचमुच (ईसाका) रक्त और मांस हैं' तो मुझे अपने दिलमें दर्दका अनुभव हुआ। इसमें केवल असत्यकी झलक ही नहीं थी यह एक ऐसे आदमी द्वारा की जानेवाली निर्दय मांग थी जिसने कभी जाना ही नहीं कि श्रद्धा क्या चीज है।

आज मैं यह कह रहा हूँ कि यह एक निर्दय मांग थी लेकिन उस वक्त मैं ऐसा नहीं समझता था। उस वक्त तो मुझे सिर्फ एक गहरी वेदनाका अनुभव था यह वेदना अवर्णनीय थी। युवावस्थाकी मेरी वह स्थिति अब न थी जिसमें मैं समझता था कि जीवनमें सब-कुछ स्पष्ट है। यह ठीक है कि मैंने श्रद्धाको स्वीकार कर लिया क्योंकि श्रद्धाको छोड़कर दुनियामें विनाशके अतिरिक्त मैंने और कुछ न पाया था। इसलिए इस धर्म-निष्ठाका त्याग करना असंभव था और इसलिए मैं झुक गया—मैंने माथा टेक दिया। मुझे अपने अंतःकरणमें एक ऐसी अनुभूति प्राप्त हुई जो इस स्थितिको सहन करने योग्य बनानेमें मुझे सहायता देती रही। यह आत्म-

दैन्य और नम्रताकी अनुभूति थी। मैंने अपनेको दीन-हीन बना लिया, और पाखंड व नास्तिकताकी किसी अनुभूतिके बगैर उस रक्त-मांसको निगल गया। ऐसा करते वक्त मेरे मनमें यही इच्छा थी कि मुझे विश्वास रखना चाहिए लेकिन चोट पड़ चुकी थी और मैं फिर दूसरी बार वहां न जा सका।

फिर भी मैं चर्चकी विधियोंका पालन करता रहा और विश्वास करता रहा कि जिन धर्म-सिद्धांतोंका मैं पालन कर रहा हूँ उनमें सत्य निहित है। इसी वक्त मेरे साथ कुछ ऐसी बातें हुईं जिसे आज तो मैं समझता हूँ पर जो उस समय आश्चर्य-जनक मालूम पड़ता था।

एक दिन मैं एक अशिक्षितकी बातें सुन रहा था। वह ईश्वर, धर्म, जीवन और मुक्तिके बारेमें कह रहा था। उसी वक्त धर्मनिष्ठाका रहस्य अपने-आप मेरे सामने प्रकट हुआ। मैं जन-साधारणके निकट और भी खिंच गया, जीवन और धर्म-विश्वासके विषय में उनकी सम्मतियां सुनने लगा और दिन-दिन सत्यको अधिकाधिक समझने लगा। यही बात उस वक्त भी हुई जब मैं संतोंकी जीवन-गाथाएं पढ़ रहा था। ये मेरी बड़ी प्रिय पुस्तकें बन गई थीं। इनमें चमत्कारकी जो कथाएं थीं उन्हें मैंने यह समझकर अलग कर दिया कि वे विचारोंको चित्रित करनेवाली कथाएं हैं। बाकी जो बचा उसके अध्ययनने मेरे सामने जीवनका अर्थ प्रकाशित कर दिया। इन पुस्तकोंमें मकैरियस महानकी जीवनी थी; बुद्धकी कथा थी, संत जॉन क्रीसोस्तमके उपदेश थे और कुएं में पड़े यात्री, सोना प्राप्त करनेवाले सन्यासी, तथा पीटर भटियारे की कथाएं थीं। उनमें शहीदोंकी कथाएं थीं और सबमें यह घोषणा की गई थी कि मृत्युके साथ जीवनका अंत नहीं होता। ऐसे लोगोंकी भी कथाएं थीं जो अशिक्षित और मूर्ख थे और चर्चकी शिक्षाओंके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे, लेकिन फिर भी वे त्राण पा गये।

लेकिन ज्योंही मैं शिक्षित और विद्वान् आस्तिकोंसे मिला, अथवा उनकी पुस्तकें पढ़ीं त्योंही अपने विषयमें संदेह, असंतोष और निराशा-

मैं इन लोगोंकी वाणीके अर्थमें जितना ही घुसता हूं उतना ही मैं सत्यसे दूर जाता हूं और अथाह खाईकी ओर बढ़ता हूं।

: १५ :

न जाने कितनी बार मैंने किसानोंकी निरक्षरता और पांडित्य-हीनता पर उनसे ईर्षा की होगी! धर्मके लक्ष्य-संबंधी वक्तव्य मेरेलिए फिजूल और मिथ्या थे परन्तु उनको उनमें कोई झुठाई नहीं प्रतीत होती थी। वे उन्हें स्वीकार कर सकते और उस सत्यमें विश्वास करते थे जिसमें विश्वास रखनेका मेरा भी दावा था। पर एक मैं ही अभागा और दुखिया ऐसा था जिसको साफ दिखाई दे रहा था कि इस सत्यके साथ असत्यके बड़े बारीक तार एक-दूसरेसे गुथे हुए हैं और मैं इस रूपमें सत्यको स्वीकार नहीं कर सकता।

लगभग तीन सालतक मेरी यह अवस्था रही। शुरू-शुरूमें जब मैं ईसाई-धर्मका प्रारंभिक साधक व विद्यार्थी था, सत्यसे मेरा क्षीण संपर्क था और जो कुछ मुझे साफ मालूम पड़ता था उसका आभास मात्र मैं पा सका था तबतक यह आंतरिक संघर्ष उतना प्रबल न था। क्योंकि जब मैं किसी बातको न समझता तो कह देता—'यह मेरा दोष है, मैं पापी हूं।' लेकिन ज्यों-ज्यों मैं सत्यको अपनाता गया, और वे मेरे जीवनका आधार बनते गये त्यों-त्यों यह संघर्ष अधिकाधिक दुखदाई और पीड़ाकारी होता गया। इसके साथ ही समझनेमें अपनी असमर्थताके कारण जो कुछ मैं नहीं समझ सकता उसके और जो कुछ बिना झूठ बोले या अपनेको धोखा दिये समझा ही नहीं जा सकता उसके बीचकी रेखाएं गहरी होती गईं।

इन शंकाओं और पीड़ाओंके बावजूद मैं सनातन ईसाई सम्प्रदायको ग्रहण किये रहा। लेकिन जीवनके ऐसे सवाल उठते रहे जिनका निर्णय करना जरूरी था। कट्टर सनातनी चर्च इनपर जो निर्णय देता

था, वह तो धर्म-निष्ठाके उन मूलाधारोंके ही खिलाफ था जिनपर मेरा जीवन खड़ा था। इस कारण विवश होकर मुझे स्वीकार करना पड़ा कि कट्टर सनातनी संप्रदायमें रहकर सत्यकी प्राप्ति करना असंभव है। इन सवालोंमें एक खास सवाल इस कट्टर ईसाई सम्प्रदायका अन्य ईसाई सम्प्रदायोंके प्रति प्रकट होनेवाला दृष्टिकोण और व्यवहार भी था। चूंकि धर्ममें मेरी दिलचस्पी थी, इसलिए मैं सम्प्रदायोंके अनुयायियोंके सम्पर्कमें आता रहता था। इसमें कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, 'पुराने विश्वासी' (ओल्ड बिलीवर्स), सुधारवादी मोलोकन्स (जो कर्म-कांडकी अनेक विधियोंके विरोधी थे)—मतलब सभी तरहके लोग थे। इनमें मुझे ऊँचे चरित्रके बहुतेरे ऐसे आदमी मिले जो सचमुच धर्मात्मा थे। मैं उनके साथ भाई-चारा स्थापित करना चाहता था—उनको अपने बंधुरूपमें ग्रहण करना चाहता था। पर कट्टर सनातनी चर्चमें स्थिति बिलकुल विपरीत थी। जिस शिक्षाने सबको एक धर्म-निष्ठा और प्रेम-बंधनमें बांधनेका दावा किया था उसी शिक्षाके सर्वोत्तम प्रतिनिधियोंने मुझे बताया कि ये सारे आदमी असत्याचारी हैं, असत्यके बीच रह रहे हैं, उनके जीवनमें जो शक्ति दिखाई देती है, वह शैतानका प्रलोभन-मात्र है और जो कुछ हमारे पास है बस वही सत्य है। मैंने यह भी देखा कि जो लोग हर बात में उनसे सहमत नहीं हैं या उनकी 'हां'-में-'हां' नहीं कर सकते वे सब इन कट्टर सनातनियों-द्वारा नास्तिक और पतित समझे जाते हैं। मुझे यह भी दिखाई पड़ा कि जो लोग उनके स्वीकृत बाह्य चिह्नों और प्रतीकोंके द्वारा

मन जितना ही अधिक बढ़ता है, यह विरोध भाव भी उतना ही अधिक बढ़ता जाता है तब मेरे जैसे आदमीकेलिए जो प्रेम द्वारा ऐक्य एवं मिलनमें सत्यको स्थित मानता है, यह बात बिलकुल साफ हो गई कि धर्म-क्रिया ठीक उसी चीजका विनाश कर रही है जिसका निर्माण उसे करना चाहिए था।

जब हम देखते हैं कि प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरेके प्रति घृणाका भाव रखता है, केवल अपनेको ही सत्यका अधिकारी मानकर सन्तुष्ट है तो आश्चर्य होता है कि क्या ये लोग इतना भी नहीं देख सकते कि अगर दोनों-के दावे एक-दूसरेके विरोधी हैं तो उनमेंसे किसीमें भी पूर्ण सत्य नहीं हो सकता और धर्म-सिद्धान्तमें पूर्ण सत्य होना चाहिए। तब मनुष्य मनको यों भुलावा देनेकी चेष्टा करता है कि कोई और बात भी होगी इसका कुछ और मतलब होगा। मैंने भी यही समझा कि इसका कुछ और मतलब होगा और उस मतलबको पाने एवं समझनेकी कोशिश की। इस विषयपर जो-कुछ भी मुझे पढ़नेको मिला, मैंने पढ़ा और जिनसे भी सलाह-मशविरा कर सकता था, किया। किसीने मुझे उसकी कोई व्याख्या नहीं सुझाई—सिवाय उस व्याख्याके जिसे माननेके कारण 'क' अपनेको ही दुनियामें सर्वश्रेष्ठ मानता है और 'ख' अपनेको। हर संप्रदायने अपने सर्वोत्तम प्रतिनिधियों द्वारा मुझे कहा कि हमारा विश्वास है कि सिर्फ हमींको सत्य प्राप्त है और दूसरे सब गलत रास्तेपर हैं और हम उनकेलिए सिर्फ प्रार्थना कर सकते हैं। मैं पुरोहितों पादरियों, धर्माध्यक्षों और विद्यावयोवृद्ध पंडितोंके पास गया लेकिन किसीने मुझे इसका मतलब नहीं बताया—सिवाय एक आदमी-के जिसने इसकी पूरी व्याख्या मेरे सामने रखी और कुछ इस तरह रखी कि फिर आगे किसीसे पूछनेका मुझे साहस ही नहीं हुआ। मैंने कहा कि धर्म-निष्ठाकी ओर आकर्षित होनेवाला प्रत्येक नास्तिक (और हमारी सारी तरुण पीढ़ी कुछ इसी तरहकी है) पहले यह सवाल करता है कि लूथर संप्रदायमें या कैथोलिक संप्रदायमें सत्य क्यों नहीं है और कट्टर सनातनी संप्रदायमें ही सारा सत्य क्यों है? आधुनिक युवक शिक्षित होनेके कारण,

किसानोंकी भाँति, इस बातसे अपरिचित नहीं है कि प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक सम्प्रदाय भी इसी प्रकार जोरके साथ कहते हैं कि उनका ही धर्म-विश्वास एक-मात्र सच्चा है। ऐतिहासिक प्रमाणोंको प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय इस तरह तोड़-मरोड़कर पेश करता है कि वे इस संबंधमें कुछ सिद्ध करनेकेलिए काफी नहीं हैं। मैंने कहा कि क्या यह मुमकिन नहीं है कि धर्म-शिक्षाओंको इससे ऊँचे और श्रेष्ठ ढंगपर ग्रहण किया जाय कि उसकी ऊँचाईसे देखने-पर ये सब विभेद और मत-भेद दूर हो जायं, जैसा कि सच्चे आस्तिकोंके साथ होता भी है? हम जिस मार्गपर चल रहे हैं, सदा उसके आगे नहीं बढ़ सकते? क्या हम दूसरे सम्प्रदायवालोंसे यह नहीं कह सकते कि फलां-फलां तात्त्विक बातोंमें तो हमारे मत मिलते-जुलते हैं, तफसीलकी बातोंमें भले न मिलें। तात्त्विक और जरूरी बातोंको गैर-जरूरी बातोंपर श्रेष्ठता देकर हम एकताका अनुभव कर सकते हैं।

उस एक आदमीने, जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ, मेरे विचारों-का समर्थन किया पर मुझसे कहा कि अगर इस तरहकी छूट दी जाती है तो धर्माधिकारियोंपर यह कलंक लगता है कि उन्होंने हमारे पूर्वजोंके साथ विश्वासघात किया। इससे धर्म-भेद फैलता है, और धर्माधिकारियोंका काम तो यूनानी-रूसी कट्टर सनातनी चर्चकी पवित्रताकी रक्षा करना है जिसे हमने पूर्वजोंसे हासिल किया है।

अब सारी बातें मेरी समझमें आ गईं। मैं एक धर्म-निष्ठाकी खोज कर रहा हूँ, जो जीवनका बल है, और वे लोग कुछ मानवीय उत्तरदायित्वों-को लोगोंकी निगाहमें सर्वोत्तम ढंगसे निभानेका प्रयत्न कर रहे हैं और इन मानवीय मामलोंकी पूर्ति वे एक मानवीय ढंगसे करते हैं। चाहे वे अपने गलती करनेवाले भाइयोंपर करुणा रखनेकी कितनी ही बात करें और सर्वशक्तिमान् ईश्वरके सिंहासनसे उनके लिए कितनी ही प्रार्थना करें, पर ये मानवीय स्वार्थोंकी पूर्तिकेलिए हिंसा आवश्यक हो जाती है। सदा उसका प्रयोग हुआ है, होता है और होता रहेगा। अगर दो सम्प्रदायोंमेंसे हर एक सिर्फ अपनेको ही सच्चा समझता है और दूसरेको झूठा

मानता है तो फिर लोग दूसरोंको सचाईको ओर खींचनेकेलिए अपने धर्म-सिद्धांतोंका प्रचार और उपदेश करते ही रहेंगे। अगर उनके सच्चे चर्चके अनुभवहीन बच्चों या अनुयायियोंको गलत शिक्षा दी जाती है तो फिर चर्चके पास इसके सिवा क्या चारा रह जाता है कि वह ऐसी किताबें जला दे और जो आदमी उसके बच्चोंको गुमराह कर रहा है, उसे हटा दे। ऐसे सप्रदायवादीके साथ क्या किया जाय जो सनातनी चर्चकी रायमें भ्रमात्मक धर्म-सिद्धांतोंकी आगमें जल रहा है और जो जीवनके अत्यंत महत्त्वपूर्ण मामले, यानी धर्मकी निष्ठामें चर्चके बच्चोंको गुमराह कर रहा है? ऐसे आदमीके साथ उसे भेजने अथवा उसका सिर काट लेनेके सिवा और क्या व्यवहार किया जा सकता है? जार एलेक्सिस माइखेलोविचके समयमें लोगोंको जला दिया जाता था यानी उनपर उस वक्तके सबसे कड़े दंड-विधानका प्रयोग किया जाता था, और आज हमारे वक्तमें भी इस समयकी सबसे कड़ी दंड-विधि यानी एकांत कारावास[1] का प्रयोग किया जाता है।

तब मैंने उन बातोंपर ध्यान दिया जो धर्मके नामपर की जाती हैं और भय एवं संतापसे भर गया, और मैंने कट्टर सनातन ईसाई सम्प्रदायको करीब-करीब बिलकुल छोड़ दिया।

चर्चका दूसरा संबंध युद्ध और फांसीको लेकर जीवनके एक सवालसे था।

उस वक्त रूस लड़ रहा था। और रूसी लोग ईसाई प्रेमके नामपर, अपने मानव-बंधुओंको मारना शुरू कर चुके थे। इसके विषय में न सोचना असंभव था और इस बातकी तरफसे आंख मूंद लेना भी असंभव था कि हत्या एक ऐसा पाप है जो हर धर्मके मूल सिद्धांतोंके विरुद्ध है। इतने पर भी हमारी फौजोंकी सफलताकेलिए गिर्जोंमें प्रार्थनाएं की जाती

१ जब यह लिखा गया था तब ख्याल किया जाता था कि रूससे फांसीकी प्रथा उठा दी गई है।

थी और धर्मोपदेशक हत्या करने को धर्म-निष्ठासे ही पैदा होनेवाला एक काम मानते थे। फिर युद्ध-कालकी इन हत्याओंके अलावा, युद्धके बाद के झगड़ो-टंटोंमें भी मैंने देखा कि चर्चके अधिकारियों, शिक्षकों और सन्यासियोंने गलती करनेवाले असहाय युवकोंकी हत्याका समर्थन किया। मैंने ईसाई धर्म माननेका दावा करनेवाले आदमियोंके सब कृत्योंपर ध्यान दिया और मेरा दिल दहल गया।

: १६ :

बस मेरा संदेह दूर हो गया और मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया कि जिस धर्मको मैंने अंगीकार कर रखा है, उसमें सब सत्य-ही-सत्य नहीं है। शायद ऐसी हालतमें पहले मैं कहता कि वह सबका सब झूठा है, लेकिन अब मैं ऐसा भी नहीं कह सकता था। सारी जनता सत्यका कुछ-न-कुछ ज्ञान रखती है, क्योंकि बिना उसके वह जी नहीं सकती। फिर वह ज्ञान मेरेलिए भी प्राप्य है, क्योंकि मैंने उसकी अनुभूति की है और उसके सहारे जिंदगीके दिन भी बिताये हैं। यह सब था, पर अब मुझे कोई संदेह नहीं रह गया था कि सत्यके साथ इसमें असत्य भी है। जो बातें पहले मुझे घृणाजनक प्रतीत होती थीं वे सब फिर स्पष्ट रूपमें मेरे सामने आईं। यद्यपि मैंने देखा कि जिन झूठी बातोंसे मुझे घृणा होती है, उनका किसानोंमें चर्च व धर्म-संस्थाके प्रतिनिधियोंकी अपेक्षा कम ही मिश्रण है। पर यह तो तब भी साफ हो ही गया कि जनताके धर्म-विश्वास-में सत्यके साथ असत्य भी मिला हुआ है।

पर सवाल उठता है कि सत्य कहांसे आया और असत्य कहांसे आया? सत्य और असत्य दोनों पवित्र कही जानेवाली परंपरा और धर्म-ग्रंथोंमें मौजूद थे। सत्य और असत्य दोनों 'चर्च (ईसाई-धर्म-संस्था) द्वारा लोगोंको दिये गए हैं।

और स्वेच्छासे या नाखुशीसे मुझे इन ग्रंथोंका और इन परंपराओं-का अध्ययन और अन्वेषण करना पड़ा—उन्हीं ग्रंथों और परंपराओं-

का जिनका अन्वेषण करनेमे अभी तक मै इतना हिचकिचाता और डरता था।

मैं उसी धर्म-विद्याकी प्रतीक्षा करने लगा जिसे एक दिन अनावश्यक कहकर मैंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृत कर दिया था। पहले जब मै चारों तरफसे जीवनकी ऐसी अभिव्यक्तियोंसे घिरा था जो मुझे स्पष्ट और विवेक-पूर्ण प्रतीत होती थी तब वह मुझे यह (धर्मविद्या) अनावश्यक मूर्खताओं व असंगतियोंकी एक मालिका-सी प्रतीत होती थी, अब मै केवल उन्ही चीजोंको फेंककर सुखी हो सकता था जो मेरे दिमागमे न घुसती थीं। इसी शिलापर धार्मिक सिद्धातका आधार है या कम-से-कम इसके साथ मैंने जीवनके अर्थ एव प्रयोजनका जो एक-मात्र ज्ञान प्राप्त किया है, उसका अभेद्य संबंध है। मेरे दृढ़ और पुराने मनको यह बात चाहे कितनी ही निरर्थक प्रतीत हो, पर यही मुक्तिकी एक-मात्र आशा थी। इससे समझनेके-लिए बड़े ध्यान और सावधानीके साथ इसकी परीक्षा करनेकी जरूरत थी—उस तरहका समझना नहीं जैसा मै विज्ञानकी धारणाओंको समझता हूँ: मैं उसकी खोजमे नहीं हूँ और धर्म-निष्ठाके ज्ञानकी विशेषताओं एव विविध-ताओंको देखते हुए मैं उसकी प्राप्तिकेलिए प्रयत्न कर भी नही सकता। मैं हर चीजकी व्याख्या नहीं चाहता। मै जानता हूँ कि सब वस्तुओंके प्रारंभकी भाति सब वस्तुओंकी व्याख्या भी असीममें निहित है। लेकिन मै इसे ऐसे ढंगसे समझना चाहता हूँ जिससे जो कुछ अनिवार्यत: अबोध्य है, उसतक पहुँच सकूँ। जो कुछ भी अबोध्य है उसे मै मानना चाहता हूँ, इसलिए नहीं कि मेरे विवेककी माग गलत है (वह बिलकुल ठीक है और उससे अलग होकर तो मै कुछ भी समझ नही सकता) बल्कि इसलिए कि मैं अपनी बुद्धिकी सीमाओंको जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी बुद्धि एक सीमातक ही जा सकती है। मैं इस रीतिसे समझना चाहता हूँ कि जितनी भी बाते अबोध्य हैं वे सब स्वयं अपनेको अनिवार्यत: अबोध्य रूपमें मेरे सामने पेश करें—ऐसी चीजों के रूपमें नहीं जिनमे विश्वास करने-केलिए मैं विवशता पूर्वक बाध्य हूँ।

धर्मशिक्षामें सत्य है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है; पर यह भी निश्चित है कि उसमें असत्य है और मुझे जानना चाहिए कि कौन-सी बात सत्य है, कौन-सी असत्य, मुझे सत्य और असत्यको अलग-अलग करना चाहिए। इसी काममें मैं अपनेको लगा रहा हूं। मुझे धर्म-शिक्षामें क्या असत्य मिला, क्या सत्य मिला और किन नतीजों पर मैं पहुंचा, इसका जिक्र मैं आगे करूंगा, जो अगर कुछ महत्त्वका हुआ और किसीने चाहा तो शायद आगे कहीं प्रकाशित होगा।

सन् १८७९ ई०

ऊपर के अध्याय मैंने लगभग तीन साल पहले लिखे थे जो छापे जायेंगे।

थोड़े दिन पहलेकी बात है कि मैं इनको फिरसे देखकर ठीक कर रहा था और उस विचार-शैली और सहानुभूतियोंको वापस बुला रहा था, जो बीचमें इनको लिखते समय उदित हुई थीं। मुझे एक सपना दिखाई पड़ा। मैंने जो कुछ अनुभव किया था और जो कुछ वर्णन किया था, उसे इस स्वप्नने घनीभूत और संक्षिप्त रूपमें व्यक्त कर दिया। मैं समझता हूं कि जिन लोगोंने मुझे समझा है, उनके निकट इस स्वप्नका वर्णन कर देनेसे उनके दिमागमें सब बातें ताजी हो जायंगी जिनको मैंने इतने विस्तारसे पहले कहा है। स्वप्न इस प्रकार था :—

मैंने देखा कि मैं पलंग पर पड़ा हूं। मैं न आराम में था, न तकलीफमें। मैं पीठके बल लेटा हुआ था। पर मैंने सोचना शुरू कर दिया कि मैं कैसे और किस चीज पर लेटा हुआ हूं—ऐसा सवाल इससे पहले मेरे मनमें पैदा नहीं हुआ था। मैंने अपने पलंगकी तरफ ध्यान दिया और देखा कि मैं एक झूलनेपर लेटा हुआ हूं। झूलनेमें दूर-दूर पर पाटियां लगी हैं जिनपर मेरा शरीर सधा हुआ है। मेरे पांव एक पाटीपर हैं और जांघें किंचित् दूसरी पाटीपर हैं। पांवोंको आराम नहीं मिल रहा था। मुझे हल्के-से जान पड़ा था कि वे पाटियां खिसकाई जा सकती हैं। मैंने उनमेंसे

एक पाटीको धकेलकर पावके नीचे किया—शायद मैंने सोचा कि यह ज्यादा आराम-देह होगा। लेकिन वह मेरे धक्केसे जरूरतसे ज्यादा आगे खिसक गई और मैंने उसतक फिर अपना पांव पहुँचाना चाहा। इस प्रयत्नमें जांघकी पिंडलियोंके नीचे जो पाटी थी वह भी खिसक गई और मेरे पांव अधरमें झूलने लगे। मैंने अपने सारे शरीरको खिसका करके आरामके साथ लेटनेकी कोशिश की। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं तुरंत ऐसा कर सकता हूँ, लेकिन मेरे खिसकनेने कुछ ऐसी गड़बड़ी हुई कि मेरे नीचेकी और भी पाटियां खिसककर एक-दूसरे से उलझ गईं और मैंने देखा कि सारा मामला ही बिगड़ता जा रहा है। मेरे शरीरका सारा अधोभाग खिसककर नीचे लटक रहा था, यद्यपि मेरे पांव जमीनको नहीं छू रहे थे। मैं सिर्फ अपनी पीठके ऊपरी हिस्सेके सहारे लटक रहा था। इससे न सिर्फ तकलीफ हो रही थी बल्कि मैं डर भी गया था। तभी मैंने अपने-से किसी बातके बारेमें सवाल किया जिसका पहले मुझे खयाल ही नहीं हुआ था। मैंने अपनेसे सवाल किया : मैं कहाँ हूँ, और मैं किस चीज पर लेटा हुआ हूँ? मैंने इर्द-गिर्द देखना शुरू किया। पहले मैंने उस दिशामें दृष्टि डाली जिधर मेरा शरीर लटक रहा था और जिधर मुझे जल्द गिर पड़नेका अंदेशा था। मैंने नीचेकी तरफ देखा मुझे अपनी आंखोंपर विश्वास न हुआ। मैं ऊँचे-से-ऊँचे मीनार और पहाड़की ऊँचाईपर नहीं, बल्कि ऐसी ऊँचाईपर था कि उसकी कल्पना भी मेरे लिए असंभव थी।

मैं यह भी समझ न सका कि उस निचाईमें, उस अतल-पातालमें मुझे कोई चीज दिखाई भी देती है या नहीं जिसके ऊपर मैं लटका हुआ हूँ और जिसकी तरफ मैं खिंचता जा रहा हूँ। मेरे हृदयकी शिराएं सिकुड़ने लगीं और मैं डर गया। उस तरफ देखना भी भयंकर था। जब मैं उधर देखता तो मुझे मालूम होता कि अन्तिम पाटीसे भी खिसककर मैं तुरंत गिर जाऊँगा। तब मैंने उधर नहीं देखा। लेकिन न देखना और भी बुरा था क्योंकि मैं सोचने लगा कि जब मैं अन्तिम पाटी-

से खिसककर गिरूँगा, तब क्या होगा। मैंने अनुभव किया कि भयके कारण मेरा अंतिम आश्रय—अंतिम पाटी-भी खिसक रही है और मेरी पीठ धीरे-धीरे नीचेकी तरफ जा रही है। क्षण भर बाद ही मैं गिर जाऊँगा। उसी समय मुझे यह ध्यान आया कि यह सब सत्य नहीं हो सकता, यह सपना है। इससे जग जाओ! मैं अपनेको जगानेकी कोशिश करता हूँ पर जाग नहीं पाता। अब मैं क्या करूँ? अब मुझे क्या करना चाहिए, मैं इस तरह अपनेसे पूछता हूँ और ऊपरकी तरफ नजर दौड़ाता हूँ। ऊपर भी अनंत आकाश फैला हुआ है। मैं आकाशकी असीमताको देखता हूँ और नीचेकी—पातालकी अतलताको भूलनेकी कोशिश करता हूँ और मैं सचमुच उसे भूल जाता हूँ। नीचेकी, पातालकी असीमता मुझे डरा देती है, पर ऊपरकी अनंतता आकर्षित करती और बल देती है। मैं देखता हूँ कि अतलके ऊपर अब भी अंतिम पाटी मुझसे छूटी नहीं है। जानता हूँ मैं लटक रहा हूँ, लेकिन अब मैं सिर्फ ऊपरकी ओर देखता हूँ और मेरा भय दूर हो जाता है। जैसा कि सपनेमें होता है, एक आवाज सुनाई पड़ती है: 'इधर देखो, यही वह है! बस मैं अधिकाधिक अपने ऊपर अनंत आकाश देखता हूँ और मुझे अनुभव होता है कि मैं शांत और स्थिर हो रहा हूँ। जो-कुछ घटना घटी है वह सब मुझे याद है और भी याद है कि किस तरह वह सब हुआ, कैसे मैंने अपने पाँव बढ़ाये, कैसे मैं खिसककर टँग गया मैं कितना डर गया था और किस तरह ऊपर देखनेके कारण भयसे मेरी रक्षा हुई। तब मैं अपनेसे पूछता हूँ: क्या मैं इस वक्त इसी तरह नहीं लटक रहा हूँ? मैं इर्द-गिर्द देखनेकी जगह अपने सारे शरीरमें उस आश्रय-स्थलका अनुभव करता हूँ, जिसपर मैं पड़ा हुआ हूँ! मैं देखता हूँ कि अब इस तरह लटका हुआ नहीं हूँ कि गिर पड़ूँ, बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थित हूँ। तब मैं अपनेसे पूछता हूँ कि मैं किस प्रकार स्थित हूँ? मैं चारों ओर टटोलता हूँ इधर-उधर नजर दौड़ाता हूँ और देखता हूँ कि मेरे नीचे, मेरी कमरके नीचे भी एक पाटी है और जब मैं ऊपरकी ओर देख रहा हूँ तब सचमुच सुस्थिर रूपसे लेटा रहता हूँ और सिर्फ यही पाटी पहले भी मुझे थामे

हुए थी। तब, जैसा कि सपनोंमें होता है, मैं अपनेको स्थिर रखनेवाले साधन की बनावटकी कल्पना करता हूँ। यह एक बड़ा स्वाभाविक, समझमें आने लायक और अचूक साधन है—यद्यपि जाग्रत व्यक्तिकेलिए बनावटका कोई मतलब नहीं है। अपने स्वप्नमें मुझे आश्चर्यका अनुभव भी हुआ कि इस बात को मैं और पहले ही क्यों न समझ पाया? मालूम पड़ा कि मेरे सिरके ऊपर एक खंभा भी है और उस पतले खंभेकी सुरक्षामें कोई संदेह नहीं किया जा सकता, यद्यपि उसको आश्रय या सहारा देनेवाली कोई दूसरी चीज नहीं है। उस खंभेसे एक दोहरा फंदा नीचे लटक रहा है और यदि मैं उस फंदेके बीचमें अपने शरीरको ठीक तरहसे रखूं और ऊपर देखता रहूं तो गिरनेका कोई अंदेशा ही नहीं हो सकता। यह सब मुझे स्पष्ट दीख रहा था। मैं प्रसन्न और स्थिर था। मुझे जान पड़ा कि कोई मुझसे कह रहा है: 'देखो, इसे याद रखना।'

तब, मैं जग गया।

सन् १८८२ ई०।

संस्मरण

भूमिका

मेरे मित्र पी० बीरूकॉवने जब मेरी पुस्तकोंके फ्रांसीसी संस्करणके-लिए मेरी जीवनी लिखनेका काम अपने ऊपर लिया तो उन्होंने मुझसे अपने जीवनके संबंधमें जरूरी बातें लिख भेजनेका अनुरोध किया।

उन्होंने जो अनुरोध किया था, उसे मैं पूरा करना चाहता था, इस-लिए मैं मन-ही-मन अपनी जीवनीकी रूप-रेखा तैयार करने लगा। पहले-पहल मेरी स्मृति जीवनीकी अच्छाइयोंकी ओर ही दौड़ी और उन्हें जैसे उभाड़नेकेलिए ही चित्रमें रंग भरनेके समान मैंने अपने चरित्रकी बुरा-इयां भी दीं। परंतु अपने जीवनकी घटनाओंपर अधिक गंभीरतासे विचार करते हुए मैंने देखा कि ऐसी जीवनी यद्यपि सर्वांशमें मिथ्या न होगी, परंतु वह जीवनपर गलत प्रकाश डालने और उसे गलत रूपमें रखनेके कारण—ऐसे रूपमें, जिसमें अच्छाइयोंपर तो प्रकाश डाला गया है, परंतु बुराइयोंकी ओरसे या तो आंखें ही मूंद ली गई हैं, या उनको ढकनेका प्रयत्न किया गया है—मिथ्या होगी। परंतु जिस समय मैंने अपने दोषोंको जरा भी छिपाए बिना सारी बातें सच्ची-सच्ची लिखनेका विचार किया, उस समय मैं, ऐसी जीवनी पढ़कर लोगोंके मनमें क्या भावना उठेगी उसकी [illegible] करके [illegible] उठा। उसी समय मैं बीमार पड़ गया।[1] बीमारीके समय [illegible] पड़े-पड़े मेरा मन बार-बार जीवनकी स्मृतियोंपर दौड़ता था। ये [illegible] बड़े [illegible] करा देनेवाले थे। उस समय मुझे बिलकुल

[1] ये पंक्तियां सन् १९०२में लिखी गई थीं जब टॉल्स्टॉय एक लंबी बीमारीके बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे।

वैसा ही अनुभव हुआ जैसा कि पुश्किनने अपनी कविता "स्मृतिया" में वर्णन किया है: जब हम मरणशील प्राणियोंकी जगती पर दिन भरके बाद शांति छा जाती है, और नगरोंकी सुनसान सड़कों पर शोरोगुलके बाद अर्द्धपारभासक भूरी रातकी छायाएं नाचने लगती हैं, और दिन भरकी मेहनतके प्रसादस्वरूप निद्रादेवीका आगमन होता है तब मेरेलिए वह समय आता है जब गंभीर नीरवतामें सारी रातके उस अनिवार्य अवकाश-कालमें निद्राहीन पीड़नकी लंबी और सूनी घड़िया आहिस्ता-आहिस्ता रेंगती हैं।

मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी अग्नि जोरोंसे धधक उठी है
मेरा मन खौल रहा है और मेरे थके और दुखते सिर में,
न जाने कितने तीखे विचारों की भीड़ लगी है,

और पुरानी अपयशपूर्ण तथा लज्जाजनक स्मृतिया नीरवताके बीच अपना कष्टकर लेखा-जोखा खोल रही हैं। मैं घृणापूर्वक अपने जीवनके इस वृत्तको देखता हूँ, मैं अपनेको शाप देता हूँ, ताड़ता हूँ और बार-बार काप उठता हूँ, अनुतापपूर्ण आसू मेरी आखोंसे झर-झर गिरते हैं पर वे मेरी दुःखपूर्ण गाथाकी पंक्तिया हरगिज मिटा नहीं सकते।

इसमें सिर्फ आखिरी पंक्तिमें ही इतना परिवर्तन करना चाहता हूँ कि 'दुखपूर्ण' के स्थान पर 'कलंकपूर्ण' शब्द रख दिया जाय।

इन्हीं भावनाओंमें डूबते-उतराते हुए मैंने अपनी डायरीमें निम्न पंक्तिया लिखीं।

६ जनवरी १६०३

'इस समय मैं नरककी यातनाओंका अनुभव कर रहा हूँ। अपने पिछले जीवन की सारी बुराइया मुझे याद आ रही हैं, ये स्मृतियाँ मेरे जीवनको विषाक्त बना रही हैं और मेरा पीछा नहीं छोड़तीं। लोग इस बातपर खेद प्रकट करते हैं कि मरनेके बाद मनुष्यको अपने जीवनकी घट-नाएं याद नहीं रहतीं। लेकिन यह तो बड़े भाग्यकी बात है। अगर मुझे अपने भावी जीवनमें सब बुरे काम (पाप) याद रहे, जो मैंने इस जीवनमें-

किये हैं, और इस समय मेरी अंतरात्मामें डंक मार रहे हैं, तो मुझे कितनी पीड़ा हो? यह तो हो ही नहीं सकता कि मुझे अच्छी बातें ही याद रहें, क्योंकि अगर मुझे अपने पुण्यकार्य याद रहें तो अपने पाप-कार्य भी अवश्य याद रहेंगे। यह कितने भाग्यकी बात है कि मृत्युके साथ-साथ सब पिछली बातें भूल जाती हैं और केवल एक प्रकार की चेतना शेष रह जाती है जो ऐसी मालूम होती है कि मानो वह अच्छे और बुरे संस्कारोंसे बनी एक वस्तु है, एक विषम भिन्न है, जिसे सम करने पर वह कम या अधिक, सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है।

हां, तो स्मृतियोंका नष्ट हो जाना अत्यंत आनंददायक है। स्मृति रहने पर तो सुखपूर्वक रहना असंभव ही हो जाता। परंतु स्मृतियां नष्ट हो जाने पर तो हम नये जीवन में एक साफ पट्टी लेकर प्रवेश करते हैं, जिस पर हम नये सिरेसे अच्छा और बुरा लिख सकते हैं।

यह सच है कि मेरा सारा जीवन इस प्रकार।भीषण रूपसे पाप-मय नहीं था। उसके केवल २० वर्ष ही खराब थे। बीमारीके समय अपने पिछले जीवनका सिंहावलोकन करते हुए मुझे ऐसा मालूम पड़ा था कि यह युग बुराइयोंसे ही भरा पड़ा था, किंतु बात ऐसी नहीं है। इस अवधिमें भी मेरे मनमें अच्छी भावनाएं उठती थीं, परंतु वे अधिक समय तक टिक नहीं पाती थीं और शीघ्र ही वासनाएं उन्हें दबा देती थीं। फिर भी अपने जीवनका सिंहावलोकन करनेसे विशेषकर अपनी लंबी बीमारीके समय-मुझे यह साफ मालूम पड़ा कि यदि मेरी जीवनी उसी तरह लिखी गई जिस तरह अधिकतर जीवनियां लिखी जाती हैं, जिसमें मेरे दोषों, अपराधों और नीच-कर्मोंके संबंधमें कुछ भी न कहा गया हो, तो वह जीवनी झूठी होगी अत यदि मेरी जीवनी लिखी ही जाये, तो उसमें सारी बातें सच्ची-सच्ची प्रकट होनी चाहिए। ऐसी ही जीवनी लिखी जानेपर, चाहे उसे लिखनेमें लेखकको कितनी ही लज्जा क्यों न लगे, पाठकोंके लिए वह लाभ-प्रद हो सकती है। अपने जीवन पर इस दृष्टिसे विचार करते हुए, अर्थात् पाप ... दृष्टिसे विचार करते हुए मैंने देखा कि मैं अपने जीवनको

चार भागोंमें बांट सकता हूं। प्रथम चौदह साल तककी आयुका (विशेषकर आगेके जीवनकी तुलनामें) भोला-भाला आनंदमय और काव्य-पूर्ण बाल्य-काल, तत्पश्चात् उसके बादके भयानक बीस वर्ष, जो सिर्फ महत्त्वाकांक्षा, दुरभिमान और दुर्वासनाओंमें व्यतीत हुए। उसके बाद विवाहसे लेकर मुझे आत्म-ज्ञान होने तकके १८ वर्ष। यह काल संसारी दृष्टिसे नैतिक कहा जा सकता है, अर्थात् इन १८ वर्षोंमें मैंने उचित रूपसे और ईमानदारीसे गार्हस्थ-जीवन बिताया। यद्यपि इन वर्षोंमें मैं अपने परिवार की हित-चिंता करने, अपनी संपत्ति बढ़ाने, साहित्यिक-क्षेत्रमें उन्नति करने तथा सब तरहका आनंद लूटनेमें ही मग्न रहा, परंतु मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसकी समाज निंदा करता हो या जिसे बुरा कहता हो। अंतमें बीस वर्षका वह काल है जिसमें मैं रह रहा हूं और जिसके भीतर ही मुझे आशा है कि मैं मर जाऊंगा। इसी कालके जीवनके दृष्टिकोणसे मैं अपने अतीत पर विचार करता हूं और इसमें केवल उन बुराइयोंके बुरे प्रभावोंको दूर करनेके सिवाय जिनका आदी मैं पिछले सालोंसे हो गया था, मैं जरा भी परिवर्तन करना न चाहूंगा।

यदि ईश्वरने मुझे जिंदगी और शक्ति दी तो मैं इन चारों कालोंकी बिलकुल सच्ची कहानी लिखूंगा। मैं समझता हूं कि मेरे ग्रंथोंकी बारह जिल्दोंमें जो कलापूर्ण बकवास भरी हुई है और जिसे लोग आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देते हैं, उसकी अपेक्षा मेरी यह जीवनी अपनी कमियोंके बावजूद लोगोंकेलिए ज्यादा लाभ-प्रद होगी।

अब मैं यही काम करना चाहता हूं। पहले मैं अपने आनंदमय बाल्यकालके संबंधमें कुछ कहूंगा जो मुझे विशेष रूपसे आकर्षित करता है। उसके बाद चाहे मेरे लिए कितना भी लज्जा-प्रद क्यों न हो, मैं अपने जीवनके दूसरे कालके २० वर्षोंकी भयानक कथा बिना कुछ छिपाये हुए कहूंगा।

१उस समय, अर्थात् जनवरी १९०३ तक, टॉल्स्टॉयकी वे रचनाएं जिन्हें रूसमें प्रकाशित करनेकी आज्ञा मिल चुकी थी, बारह भागोंमें प्रकाशित हो चुकी थीं। धर्म, समाजकी समस्याएं युद्ध और हिंसा आदि पर लिखी पुस्तकें आम तौरपर सेन्सरों द्वारा दबा दी गई थीं।

बादमें तीसरे कालके विषयमें लिखूंगा, जो अन्य कालोंकी अपेक्षा कम रोचक है। अंतमें मैं अपने चौथे कालके विषयमें लिखूंगा। इस कालमें मेरी आंखें खुलीं, मैंने सत्यको पहचाना और मुझे जीवनकी सबसे बड़ी अच्छाई और प्रतिदिन निकट आती हुई मृत्युके प्रति आनंदमय शांति प्राप्त हुई।

पुनरुक्ति दोषसे बचनेके लिए अपने बाल्यकालके संबंधमें मैंने जो कुछ लिखा है उसे दुबारा पढ़ लिया है। मुझे दुःख है कि मैंने इसे क्यों लिखा। जो यह सब मैंने लिखा है बहुत बुरा लिखा है और (यदि साहित्यिक भाषामें कहें तो) सच्चे हृदयसे, ईमानदारीसे नहीं लिखा गया। लेकिन इसका कोई उपाय भी नहीं था। क्योंकि पहली बात तो यह कि अपने बचपनका हाल लिखनेके बजाय मैंने अपने बचपनके मित्रोंका हाल लिखना सोचा था और इसके फलस्वरूप उसमें मेरे और उनके बाल्यकालकी घटनाओंका एक बेजोड़ मिश्रण हो गया। दूसरे जिस समय यह लिखा गया, उस समय मेरी अपनी स्वतंत्र वर्णन-शैली कोई भी न थी और मुझपर दो लेखकों (स्टर्न) और टौफर[1]का बहुत प्रभाव था।

विशेष रीतिसे मैं अंतिम दो भाग, 'किशोरावस्था' और 'युवावस्था'से अप्रसन्न हूं। उनमें एक तो तथ्य और कल्पनाका अनुचित सम्मिश्रण है और दूसरे गैरईमानदारीकी भावना व्याप्त है। उस समय मैं जिसे—अपनी लोकतंत्रवादी प्रवृत्तिको—उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण नहीं मानता था, उसे उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण चित्रित करनेकी भावना व्याप्त है। मुझे आशा है कि अब मैं जो कुछ लिखूंगा वह अच्छा होगा और विशेष रीतिसे अन्य लोगोंके लिए अधिक उपयोगी होगा।

[टॉल्स्टॉय अपनी आत्मकथा लिखनेका इरादा कभी पूरा नहीं कर सके। अपने संस्मरणोंके अलावा, जो सन् १८७८ में प्रकाशित हुए थे, वे जो कुछ लिखकर छोड़ गये, उनमेंसे कुछ सुंदर अंश यहां दिए जाते हैं।—संपादक]

१ लॉरेंस स्टर्न (१७१३-६८) अंगरेजी उपन्यास-लेखक। रोडोल्फ टाफर (१७९९-१८४६), स्विस उपन्यासकार और कलाकार।

संस्मरण

मेरी दादी पेरागेया निकोलेवना (टॉल्स्टाय) उस अंधे राजकुमार निकोलस इवोनेविच गोर्शकोवकी लड़की थी, जिन्होंने अपार संपत्ति जोड़ रखी थी। दादीके संबंधमें मुझे जितना याद है, उनसे मैं कह सकता हूं कि उनमें थोड़ी बुद्धि थी और उनकी शिक्षा भी थोड़ी ही हुई थी। अपने वर्गकी अन्य महिलाओंकी तरह वह भी रूसी भाषाकी अपेक्षा फ्रेंच अच्छी तरह जानती थीं (यह उनकी शिक्षाकी सीमा थी)। पहले उनके पिताने, फिर उनके पतिने, और बाद में, जहांतक मुझे याद पड़ता है, उनके लड़केने उन्हें बिलकुल बिगाड़ दिया था। लेकिन कुटुंबके सबसे बड़े—बूढ़े व्यक्तिकी पुत्री होनेके कारण सभी उनका सम्मान करते थे।

मेरे दादा (उनके पति) भी, जहां तक याद है मामूली बुद्धिके, बड़े नम्र हंसमुख और केवल उदार ही नहीं, बल्कि बड़े उड़ाऊ और साथ ही बड़े विश्वासी और श्रद्धालु व्यक्ति थे। बेलेव्स्की जिलेमें स्थित पाल्येनी (यास्नाया पोल्याना नहीं) में उनकी जागीर पर बहुत दिनोंतक जल्सों, दावतों नाटकों, नाच—गानों और पार्टियोंकी धूम रही। लेकिन बड़े—बड़े दाव लगाकर ताश खेलने और हर एक आदमीको मुक्तहस्तसे कर्ज या दान देनेकी आदतके कारण और बादमें घरेलू झगड़ोंके फल-स्वरूप उन्होंने अन्तमें अपनी पत्नीकी विशाल जागीर पर कर्जा चढ़ा लिया उनके पेटके भी लाले पड़ने लगे और अन्तमें उनको कज़ानकी गवर्नरीके लिए अर्जी देनी पड़ी और वह पद स्वीकार करना पड़ा। यह पद ऐसा था जो उनके ऊंचे कुल और उच्च पदाधिकारियोंसे संबंध रखनेवाले व्यक्तिको मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं थी।

यद्यपि उस समय घूस लेना एक साधारण बात थी, लेकिन मैंने सुना है कि (शराबके ठेकेदारोंके सिवा) उन्होंने किसीसे घूस नहीं ली, यही नहीं, जब कभी उनके सामने इस तरह का प्रस्ताव रखा जाता था, तो वह नाराज होते थे। लेकिन मैंने यह भी सुना है कि मेरी दादी, मेरे दादाको विना बताये रुपया ले लिया करती थी!

कजानमें मेरी दादीने अपनी छोटी लड़की पेलागयाका विवाह यशकोवके साथ कर दिया था। उनकी बड़ी लड़कीकी शादी पीटर्सबर्गके काउंट ऑस्टन-सेकन के साथ हो चुकी थी।

कजानमें अपने पतिकी मृत्यु होनेके बाद और मेरे पिताका विवाह हो जानेके बाद मेरी दादी यास्नाया पोल्यानामें मेरे पिताके साथ रहने लगी, जहां उनके बुढापेके दिनोंकी मुझे अब भी अच्छी तरह याद है।

मेरी दादी मेरे पिताको और अपने पोतों अर्थात् हम लोगोंको बहुत प्यार करती थीं और हमारे साथ अपना मनोविनोद कर लेती थीं। वह मेरी बुआओंसे भी बहुत प्रेम करती थी, लेकिन मेरा खयाल है वह मेरी माता को ज्यादा नहीं चाहती थीं, क्योंकि वह उन्हें मेरे पिताकेलिए योग्य नहीं समझती थीं। यही नहीं पिताजीका मेरी माताकेलिए जो बहुत ज्यादा प्रेम था उससे उन्हें ईर्ष्या होती थी। नौकरोंके साथ उन्हें कड़ा बर्ताव करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती थी, क्योंकि हरएक आदमी यह जानता था कि वह घरभरमें सबसे बड़ी हैं, इसलिए उन्हें खुश रखनेकी कोशिश करता था। परंतु अपनी नौकरानी गाशा पर वह बहुत अत्याचार करती थीं और उससे यह आशा किया करती थीं कि उससे जो काम न करा गया हो, वह उसे भी कर रखे। वह उसे तानेमें 'आप' कहकर पुकारा

मास्को जाने और वहां रहनेसे पहले मुझे अपनी दादीकी तीन बातें अच्छी तरह याद हैं। पहली बात उनका कपड़े आदि धोनेका तरीका था। वह अपने हाथों पर एक खास तरहके साबुनसे बहुत-सा झाग उठा लेती थीं, और मैं समझता हूं कि वही अकेली ऐसा कर सकती थी। जब वह कपड़े धोती थीं तो हमें खासतौरपर उनका कपड़ा धोना देखनेको ले जाया जाता था। संभवत: साबुनके झागों पर हमारा खुश होना और अचभेसे भर उठना देखकर उन्हें भी आनद होता था। उनकी सफेद टोपी, उनकी जाकट उनके बूढे सफेद हाथ और उनपर उठे हुए असंख्य झाग एवं एक सतोषपूर्ण मुस्कान सहित उनका सफेद मु ह मुझे आज भी याद है।

दूसरी बात उनका बिना घोड़ेकी पीली गाड़ीमें बैठकर पासके छोटे जगलमें अखरोट बीनने जाना था जिनकी उस साल इफरातसे पैदावार हुई थी। बिना घोड़ेकी उस गाड़ीको मेरे पिताके सईस खींचकर ले जाते थे। इसी गाड़ीमें हम लोग भी अपने शिक्षक फीडर इवानोविचको साथ लेकर घूमने जाया करते थे। उन घनी और आस-पास उगी हुई झाड़ियोंकी मुझे अब भी याद है जिनके बीचसे हमारे पिताके सईस पेट्रुश्का और मत्यूशा उस गाडीको, जिसमें मेरी दादी बैठी रहती थीं, खींच ले जाते थे और किस प्रकार वे अखरोटके गुच्छोंसे लदी हुई टहनियोंको जिनमें बहुतसे पके हुए अखरोट अपने छिलकोंसे निकल-निकल कर गिर रहे होते थे, उनतक झुका देते थे। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार मेरी दादी उन्हें तोड़तीं और अपने थैलेमें डालती जाती थीं, और किस प्रकार हम बच्चे भी कुछ टहनियां झुकाकर उसी प्रकार खुश होते थे जिस प्रकार फीडर इवानोविच मोटी-मोटी टहनियां झुकाकर हमें अपने बलसे चकित कर देते थे। हम चारों तरफ हाथ लपकाकर अखरोट तोड़ते और जब फीडर इवानोविच टहनियोंको छोड़ देते और वे फिर पहलेकी स्थितिमें पहुंच जातीं उस समय हम देखते थे कि अब भी बहुतसे अखरोट उनमें लगे रह गये हैं, जिन्हे हमने नहीं देखा। मुझे याद है कि जंगलके खुले भागमें कितनी गर्मी और वृक्षोंकी छायामें कितनी ठडक होती थी।

अखरोटकी पत्तियोंकी तीखी गंध और किस प्रकार हमारी नौकरानियां अखरोटोंको दांतोंसे कड़कड़ाकर खाती थीं, और हम स्वयं भी बराबर मुंह चलाते हुए ताजे मधुर सफेद गूदेको खाते जाते थे, यह सब बातें मुझे अब भी याद हैं।

हम अपनी जेबोंमें, गोदमें और गाड़ीमें अखरोट भर लेते थे। दादी हमें अंदर बुला लेतीं और हमारी तारीफ करती थीं। हम घर किस प्रकार लौटते थे, और घर लौटने पर क्या होता था, यह सब मुझे जरा भी याद नहीं। मुझे तो सिर्फ दादी, अखरोटके जंगलका खुला भाग, अखरोटके वृक्षोंकी पत्तियोंकी तीखी गंध, दोनों सईस, पीली गाड़ी तथा सूर्य सबकी एक संयुक्त सुखद याद है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह साबुनके झाग वहीं उठ सकते थे जहां मेरी दादी हो, उसी प्रकार झाड़ियां, अखरोट, सूर्य तथा अन्य चीजें भी वहीं हो सकती थीं, जहां मेरी दादी पीली गाड़ीमें बैठी हो, और पैट्रूश्का और मत्यूशा उसे खींच रहे हों।

सबसे ज्यादा याद मुझे उस रातकी है जो मैंने अपनी दादीके सोनेके कमरेमें लेव स्टीपेनिशके साथ बिताई थी। लेव स्टीपेनिश एक अंधा कहानी सुनानेवाला था। (जिस समय मैंने उसे जाना वह बूढ़ा हो चुका था।) वह मेरे दादाकी प्रभुताके दिनोंकी यादगार था। वह एक दास था जिसे खरीदा ही इसलिये गया था कि वह कहानियां सुनाए। अंधोंकी स्मरण-शक्ति बड़ी तेज होती है और एक या दो बार कोई कहानी सुन लेने पर वह उसे शब्दशः याद हो जाती थी।

रात बितानेकी बारी थी, वह लंबा गहरे नीले रंगका कोट पहने हुए खिड़की पर बैठा खाना खा रहा था। मुझे याद नहीं कि मेरी दादीने कहां पर कपड़े बदले, उसी कमरेमें या दूसरे कमरेमें या मैं किस प्रकार बिस्तर पर सुलाया गया। मुझे केवल उस क्षणकी याद है जबकि मोमबत्ती बुझा दी गई और एक छोटा लैंप सुनहरी मूर्तियोंके सामने जलता छोड़ दिया गया। मेरी दादी, वह करामाती दादी, जो सात्तुनके आश्चर्यजनक झाग उठाया करती थी, सिरसे पैर तक सफेद कपड़े पहने हुए बर्फके समान श्वेत बिछौने पर, सफेद ही चादर ओढ़े और सिरपर सफेद ही टोपी दिये ऊंचे तकियेके सहारे लेटी थीं। उसी समय खिड़कीसे लेव स्टीपेनिश की शांत और मीठी आवाज आई "क्या मैं कहानी शुरू करूं ?" "हां, शुरू करो।" लेव स्टीपेनिशने अपनी शांत, साफ और गंभीर आवाजमें अपनी कहानी आरंभ की। 'प्रिय बहन, उसने कहा, हमें उन सुंदर और रोचक कहानियोंमें से एक कहानी सुनाओ जिन्हें तुम इतनी सुंदरता के साथ सुनाती हो।" शाहजादीने उत्तर दिया—"बड़े शौकसे। अगर आपके स्वामी मुझे आज्ञा दें तो मैं राजकुमार कमरुज्जमनकी कहानी सुनाऊं।" सुल्तानकी स्वीकृति मिल जाने पर शाहजादीने इस प्रकार अपनी कहानी आरंभ की—"किसी राजाके एक ही लड़का था···।" इसी प्रकार लेव स्टीपेनिशने भी राजकुमार कमरुज्जमनकी कहानी उसी प्रकार अक्षरशः कह सुनाई, जैसी कि किताबमें थी। मैं न तो कुछ समझता था, न सुनता था। मैं तो सफेद वस्त्रोंमें अपनी दादीकी रहस्यमयी मूर्ति और दीवार पर पड़ती हुई उनकी धुंधली छाया तथा सफेद ज्योतिहीन आंखवाले वृद्धको देखनेमें डूबा रहता था। उस वृद्धको यद्यपि मैं इस समय नहीं देखता, परंतु उसकी खिड़कीमें बैठी हुई मूर्ति जिसके मुंहसे कुछ अजीब शब्द निकल रहे थे और वे शब्द उस अंधेरे-से कमरेमें, जिसमें केवल एक ही लैंप टिमटिमा रहा था अत्यंत एकरस मालूम होते थे, अब भी मेरी आंखोंके सामने नाच रही है। शायद मैं लेटते ही सो गया था क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई भी बात मुझे याद नहीं है। परंतु सवेरे ही

दादीके हाथों पर कपड़े धोने समय साबुनके झागोको देखकर मुझे सिर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता हुई।"

* * ❀ *

अपने नानाके सबंधमे टॉल्स्टॉयने बताया है:—

अपने नानाके विषयमे तो मुझे इतना याद है कि प्रधान सेनापतिका ऊचा पद प्राप्त करनेके कुछ ही दिन बाद वह पोटेम्किनकी भतीजी और रखेली वारवरा ए जिलहार्टमे विवाह करनेसे इन्कार कर देने पर उस पदसे हटा दिये गये। पोटोम्किनके इस प्रस्ताव पर उन्होंने उत्तर दिया—"पोटेम्किनके मनमे किस प्रकार यह विचार उठा कि मैं उस वेश्यासे शादी कर लूगा?"

राजकुमारी कैथरीन डिट्रीविना ट्रूबेटस्कसे विवाह करनेके बाद मेरे नाना उन्हींकी जागीर यास्नया पोल्यानामे (जो राजकुमारीको अपने पिता सर्जे फिओरोविचसे मिली थी) रहने लगे।

राजकुमारी एक कन्या—मारया-को छोड़कर शीघ्र ही परलोक सिधार गई। अपनी उस प्यारी पुत्री और उसकी फ्रासीसी सहेलीके साथ मेरे नाना अपनी मृत्यु (सन् १८२१ तक) वहीं रहे। वह बड़ा कड़ा काम लेने वाले मालिक समझे जाते थे, लेकिन मैने कभी उनकी क्रूरताकी एक भी घटना या नौकरोंको उतना कठोर दड देनेकी बात नहीं सुनी जितना उन दिनों दिया जाता था। मै यह जानता हू कि उनकी जागीर पर ऐसी बातें होती थीं, लेकिन घरके और खेत पर काम करनेवाले दासोंके मनमे जिनसे मैने कई बार इस विषयमे प्रश्न किया, उनकी महत्ता और चतुरताके

मिलता रहे। छुट्टीके दिन वह उनके लिए भूलों, नाच-रग (ग्रामीण-नृत्य) तथा आमोद-प्रमोदका भी प्रबध करते थे।

उस समयके प्रत्येक बुद्धिमान भूमि-पतिके समान वह खेत पर काम करने वाले दासोंकी भलाई और बढ़तीके लिए बहुत चिंतित रहते थे। उनके समयमें ये दास इसलिए फूले-फले कि मेरे नानाके बड़े पद पर होनेके कारण पुलिसवाले उनका बड़ा आदर करते थे और इसीलिए दासोंको अधिकारियोंकी ज्यादतियोंसे बच निकलनेका अवसर मिल जाता था।

वह सौंदर्यके बहुत प्रेमी थे और यही कारण था कि उनके सारे मकान न सिर्फ अच्छे बने हुए और आरामदेह थे, बल्कि बहुत सुदर और सजे हुए थे। मकानके सामने उन्होंने जो बाग लगवाया था वह बहुत ही सुदर व सुहावना था। शायद उहे संगीतसे भी बहुत प्रेम था, क्योंकि उन्होंने केवल अपनी तथा मेरी माताके लिए एक छोटी परतु सुदर सगीत-मंडली जोड़ रखी थी। मुझे याद है कि बागमे जहा नीबूके पेड़ोंकी कतारे मिलती थीं, एक बड़ा पेड़ खड़ा था जिसका तना इतना मोटा था कि तीन आदमी एक साथ उसके चारो ओर लिपट सकते थे। उसी पेड़के नीचे सगीतज्ञों-के बैठनेके लिए बेंचे और मेजे पड़ी हुई थी। किसी दिन प्रातःकाल मेरे नाना बागमे घूमने निकल जाते और गाना सुनते। उन्हे शिकार करना अच्छा नहीं लगता था। वे फूलो और पौधोंके बड़े प्रेमी थे।

भाग्य-चक्रसे एक दिन वह उसी वारवारा ऐंजिलहार्टके सपर्कमे आये, जिसके साथ विवाह करनेसे इंकार कर देनेके कारण उनका सैनिक जीवन नष्ट हुआ था। उसने राजकुमार सर्जी फीडोरोविच गोलिटसिनसे विवाह कर लिया था, जिसे इस विवाहके उपलक्षमे सब प्रकारका मान और सम्मान मिला था। मेरे नाना सर्जी फीडोरोविच और फलत: वारवारा ऐंजिलहार्टके इतने निकट सपर्कमे आये कि मेरी माताकी सगाई बचपनमें ही उन दोनोंके दस लड़कोमेसे एकके साथ हो गई और दोनो राजकुमारोंने अपने-अपने परिवारके चित्र (जो उनके दासों-द्वारा बनाये गये थे) परस्पर एक-दूसरेको दिये। गोलिटसिन परिवारके ये सब चित्र हमारे पास हैं।

इनमें सर्जी फीडोरोविच का एक चित्र है, जिसमें वह सेंट-ऐण्ड्रू के आर्डर का रिबन पहने हुए हैं तथा सुसगठित देह और लाल केशोंवाली राजकुमारी ऐञ्जिलहार्टका चित्र भी है। परन्तु मेरी माताकी सगाई विवाह-रूपमें परिणित न होनी थी, क्योंकि राजकुमार विवाहसे पहले ही तेज बुखारके कारण परलोक सिधार गये।

* * * *

माताजीकी मुझे जरा भी याद नहीं। जिस समय मैं डेढ़ सालका था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। संयोगसे उनका कोई चित्र भी सुरक्षित नहीं रखा गया, अतः मैं उनकी मूर्तिकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब मेरे मनमें उनकी अशरीरी कल्पना है और मैं जितना भी कुछ उनके विषयमें जानता हूं, सुंदर है। मैं समझता हूं कि मेरी यह धारणा इसलिए नहीं बनी है कि उनके विषयमें जिस किसीने जो-कुछ भी कहा उनकी अच्छी ही बातें बतानेकी कोशिशकी, बल्कि इसलिए कि उनमें वास्तवमें कुछ ठोस गुण और अच्छाइयां थीं।

मेरी माता सुंदरी तो नहीं थी परंतु अपने समयकी दृष्टिसे वह अच्छी पढ़ी-लिखी थीं। रूसी भाषाके साथ (जिसे वह उस समयकी प्रथाके विरुद्ध भी शुद्ध लिख सकती थीं) वह फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी और इटालियन चार भाषायें जानती थीं और ललित कलाओंके लिए भी उनके हृदयमें अवश्य प्रेम रहा होगा। वह पियानो बहुत अच्छी तरह बजाती थीं और उनकी समान अवस्थावाली स्त्रियोंने मुझे बताया है कि वह बड़ी रोचक कहानियां

से कुछ पत्र और मेरे सबसे बड़े भाई निकोलेन्काके आचार-विचारकी जो डायरी वह रखती थीं, वह मेरे पास है। जिस समय उनकी मृत्यु हुई मेरे बड़े भाईकी आयु ६ वर्ष थी. मैं समझता हूं कि शकल-सूरतमें हममेंसे सबकी अपेक्षा वह माताजीसे अधिक मिलते-जुलते थे। उन दोनोंका एक गुण मुझे बहुत प्रिय है। कम-से-कम माताजीके पत्रोंसे तो यही झलकता है कि उनमें यह गुण था और मुझे मालूम है कि यह गुण मेरे भाइयोंमें तो था ही। दोनोंमें यह गुण था कि दूसरे उनके प्रति क्या विचार रखते हैं, इसकी ओरसे वे उदासीन रहते थे। उनमें लज्जा और संकोच तो इतना अधिक था कि वे अपनी मानसिक और नैतिक श्रेष्ठता तथा उच्च शिक्षा भी दूसरोंसे छिपानेकी कोशिश करते थे। वे गुणों पर लज्जित होतेसे प्रतीत होते थे।

मेरे भाईके लिए तुर्गनेवने ठीक ही लिखा है कि उन दोषोंसे परे थे, जो एक बड़ा लेखक होनेके लिए जरूरी हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अंतिम गुण उनमें स्पष्ट रूपमें था।

मुझे याद है कि किस प्रकार एक बेवकूफ और नीच आदमी ने, जो गवर्नरका सहायक था, और जो मेरे भाईके साथ शिकार खेल रहा था, मेरे सामने ही मेरे भाई की खिल्ली उड़ाई, और किस प्रकार मेरे भाईने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उसके खिल्ली उड़ानेमें भी उन्हें आनंद मिला था।

माताजीके पत्रोंमें भी मैंने यही गुण पाया है। शायद टाटियाना एले-क्जेण्ड्रोवना एर्गोल्स्कीको छोड़कर जिनके साथ मैंने अपना आधा जीवन बिताया और जो वास्तवमें अद्भुत नैतिक गुणवाली महिला थी, मेरी माता निश्चय ही मेरे पिता और उनके परिवारवालोंमें सबसे अधिक नैतिक गुणवाली थीं।

इनके अलावा दोनोंमें एक खास गुण और था और वही दूसरे लोगों-द्वारा अपनी निंदाके प्रति उनकी उदासीनता का कारण था। वह गुण यह था कि वे कभी दूसरोंको दोष नहीं देते थे। कम-से-कम मेरे भाईमें

इनमें सर्जी फीडोरोविच का एक चित्र है, जिसमें वह सेंट-ऐण्ड्रू के आर्डर का रिबन पहने हुए हैं तथा सुसगठित देह और लाल केशोंवाली वारवारा ऐञ्जिलहार्टका चित्र भी है। परंतु मेरी माताकी सगाई विवाह-रूपमें परिणित न होनी थी, क्योंकि राजकुमार विवाहसे पहले ही तेज बुखारके कारण परलोक सिधार गये।

* * * *

माताजीकी मुझे जरा भी याद नहीं। जिस समय मैं डेढ़ सालका था उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। सयोगसे उनका कोई चित्र भी सुरक्षित नहीं रखा गया, अतः मैं उनकी मूर्तिकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि अब मेरे मनमें उनकी अशरीरी कल्पना है और मैं जितना भी कुछ उनके विषयमें जानता हूं, सुदर है। मैं समझता हूं कि मेरी यह धारणा इसलिए नहीं बनी है कि उनके विषयमें जिस किसीने जो-कुछ भी कहा उनकी अच्छी ही बातें बतानेकी कोशिशकी, बल्कि इसलिए कि उनमें वास्तवमें कुछ ठोस गुण और अच्छाइयां थीं।

मेरी माता सुंदरी तो नहीं थी, परतु अपने समयकी दृष्टिसे वह अच्छी पढ़ी-लिखी थीं। रूसी भाषाके साथ (जिसे वह उस समयकी प्रथाके विरुद्ध भी शुद्ध लिख सकती थी) वह फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी और इटालियन चार भाषायें जानती थीं और ललित कलाओंके लिए भी उनके हृदयमें अवश्य प्रेम रहा होगा। वह पियानो बहुत अच्छी तरह बजाती थी और उन्हींकी समान अवस्थावाली स्त्रियोंने मुझे बताया है कि वह बड़ी रोचक कहानियां सुनाया करती थीं। वह कहानियां गढ़ती जाती थीं और सुनाती जाती थीं। उनके नौकरोंके कथनानुसार यद्यपि उन्हें जल्दी गुस्सा आ जाता था, लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण यही था कि उनमें आत्म-सयम बहुत था। "गुस्सेसे उनका चेहरा तमतमा उठता था और वह चीखने-चिल्लाने भी लगती थीं"—उनकी नौकरानी का कहना है—"परतु उन्होंने कभी कोई अपशब्द मुहसे नहीं निकाला वह कोई अपशब्द या गाली जानती ही न थीं।"

मेरे पिताजी और मेरी बुआओंको उन्होंने जो पत्र लिखे थे, उनमें

से कुछ पत्र और मेरे सबसे बड़े भाई निकोलेन्काके आचार-विचारकी जो डायरी वह रखती थी, वह मेरे पास है। जिस समय उनकी मृत्यु हुई मेरे बड़े भाईकी आयु ६ वर्ष थी, मैं समझता हू कि शकल-सूरतमे हममेसे सबकी अपेक्षा वह माताजीसे अधिक मिलने-जुलत थे। उन दोनोका एक गुण मुझे बहुत प्रिय है। कम-से-कम माताजीके पत्रोसे तो यही झलकता है कि उनमे यह गुण था और मुझे मालूम है कि यह गुण मेरे भाइयोमे तो था ही। दोनोंमे यह गुण था कि दूसरे उनके प्रति क्या विचार रखते हैं, इसकी ओरसे वे उदासीन रहते थे। उनमे लज्जा और सकोच तो इतना अधिक था कि वे अपनी मानसिक और नैतिक श्रेष्ठता तथा उच्च शिक्षा भी दूसरोंसे छिपानेकी कोशिश करते थे। वे गुणो पर लज्जित होतेसे प्रतीत होते थे।

मेरे भाईके लिए तुर्गनेवने ठीक ही लिखा है कि उन दोषोंमे परे थे, जो एक बड़ा लेखक होनेके लिए जरूरी हैं। मै अच्छी तरह जानता हूँ कि अतिम गुण उनमे स्पष्ट रूपमे था।

मुझे याद है कि किस प्रकार एक बेवकूफ और नीच आदमी ने, जो गवर्नरका सहायक था, और जो मेरे भाईके साथ शिकार खेल रहा था, मेरे सामने ही मेरे भाई की खिल्ली उडाई, और किस प्रकार मेरे भाईने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। उसके खिल्ली उड़ानेमे भी उन्हे आनद मिला था।

माताजीके पत्रोंमे भी मैंने यही गुण पाया है। शायद टाटियाना एले-क्जेण्ड्रोवना एर्गोल्स्कीको छोड़कर जिनके साथ मैंने अपना आधा जीवन बिताया, और जो वास्तवमें अद्भुत नैतिक गुणवाली महिला थीं, मेरी माता निश्चय ही मेरे पिता और उनके परिवारवालोंमे सबसे अधिक नैतिक गुणवाली थीं।

इनके अलावा दोनोमे एक खास गुण और था, और वही दूसरे लोगों-द्वारा अपनी निंदाके प्रति उनकी उदासीनता का कारण था। वह गुण यह था कि वे कभी दूसरोको दोष नहीं देते थे। कम-से-कम मेरे भाईमे

तो, जिनके साथ मैंने आधा जीवन व्यतीत किया, यह गुण अवश्य था। किसी व्यक्तिके प्रति अपनी उदासीनता वह बहुत हल्की और मीठी चुटकी (व्यंग) तथा हलकी और मीठी मुस्कराहट-द्वारा व्यक्त करते थे। यही बात मैंने माताजीके पत्रोंमें पाई है और उन लोगोंके मुँहसे भी सुनी है। जो उन्हें जानते थे।

मेरी मातामें एक तीसरा गुण, जो उन्हें उनके आस-पास रहनेवाले लोगोंसे ऊपर उठाता है, उनके पत्रोंमें प्रकट उनकी सादगी और सचाई थी। उन दिनों बहुत बना-चुना कर हृदयके भाव प्रकट करनेका रिवाज-सा हो गया था। अपने परिचितोंमें अनेक संबोधन चल पड़े थे, और उनमें जितनी ज्यादा अतिशयोक्ति होती थी, उतनी ही कम सचाई होती थी।

यह गुण तो मेरे पिताके पत्रोंमें भी पाया जाता है, लेकिन बहुत अधिक मात्रामें नहीं। वह लिखते थे—"मेरी परम मधुर संगिनी! मैं हर समय तुम्हारे साथ रहनेके आनंदका ही स्वप्न देखता रहता हूँ।" इसमें मुश्किलसे ही कुछ सचाई है। परंतु मेरी माता सदा एक ही प्रकारसे—"मेरे अच्छे मित्र!" लिखती थीं। एक पत्रमें तो वह साफ लिखती हैं—"आपके बिना दिन पहाड़के समान लगते हैं यद्यपि यदि सच-सच लिखूं तो जब आप यहां होते हैं तो हमें आपके साथ रहनेसे बहुत आनंद नहीं मिलता," पत्रके अंतमें वह हस्ताक्षर भी उसी प्रकार किया करती थीं—"आपकी उपासिका मेरी"।

माताजीका बाल्यकाल कुछ तो मास्कोमें और मेरे सुयोग्य, गुणी और गर्वीले नानाके साथ गांवमें बीता। मुझे बताया गया है कि वह मुझे बहुत चाहती थीं और मुझे 'मेरे प्यारे बेंजामिन' कहकर बुलाया करती थीं।

मैं समझता हूं कि उस व्यक्तिके प्रति जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी। और जो बादमें मर गया था, उनका प्रेम वैसा ही रहा होगा, जैसा कि एक लड़की अपने जीवनमें केवल एक बार ही अनुभव करती है। पिताजीके साथ माताजीकी शादी उनके और पिताजीके संबंधियोंने ही तय की थी। मेरी माता धनी थीं, यौवनका प्रथम चरण पार कर चुकी थीं और अनाथ

हो चुकी थीं। पिताजी हसमुख और ऊंचे कुलके युवक थे, परंतु उनकी सारी संपत्ति उनके पिता इल्या टाल्स्टायने पूरी तरहसे नष्ट कर दी थी। उसको उन्होंने इस तरह चौपट कर दिया था कि पिताजीने बादमें उसे लेनेसे भी इन्कार कर दिया। मैं समझता हूं कि माताजीका मेरे पिताजी पर गूढ़ प्रेम नहीं था, वह उनसे पतिके नाते तथा अपने बच्चोंके पिताके नाते प्रेम करती थीं। जहांतक मुझे मालूम है वह तीन-चार व्यक्तियोंसे ही प्रेम करती थीं। गोलिट्सिनके मृत पुत्रसे, जिनके साथ उनकी सगाई हुई थी, उनका विशेष प्रेम था। फिर उनकी विशेष मित्रता अपनी फ्रांसीसी सहेली श्रीमती हेनीशीनके साथ थी जिनके संबंधमें मैं अपनी चाचियोंके मुंहसे सुना करता था। वह मित्रता मालूम पड़ता है बादमें टूट गई। श्रीमती हेनीशीनने मेरी माताके एक संबंधी राजकुमार माइकेल एलेक्जेण्ड्रोविच वोल्कान्स्कीसे विवाह कर लिया था, जो वर्त्तमान लेखक वोल्कान्स्कीके पिता थे।

तीसरे मेरे बड़े भाई कोको (निकोलस) पर उनका सबसे अधिक प्रेम था। वह सवेरेसे शाम तक जो कुछ करते, उसे एक डायरी में रूसी भाषामें लिखती जाती और फिर उन्हें पढ़कर सुनाती थी। इस डायरीसे दो बातें साफ झलकती हैं। एक तो उन्हें अपने पुत्रको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देनेकी भारी उत्कंठा थी, परंतु वह स्वयं यह नहीं जानती थीं कि अच्छी-से-अच्छी शिक्षा कैसी होनी चाहिए। वह उन्हें, उदाहरणार्थ, बहुत भावुक होने और जानवरोंको पीड़ा होते देख चिल्लाने लगनेपर झिड़कतीं क्योंकि उनका विचार था कि एक मनुष्यको दृढ़ होना चाहिए—कमजोर हृदयका नहीं। भाई साहबका दूसरा दोष, जो वह दूर करना चाहती थीं, उनकी लापरवाही थी।

अपनी बुआओंसे जो बात मुझे मालूम हुई और जिसे मैं भी समझता हूं कि ठीक ही होगी वह यह है कि वह मेरे प्रति भी प्रेम रखती थीं। इस प्रेमने धीरे-धीरे कोको (मेरे बड़े भाई निकोलस) का स्थान ले लिया, जो मेरे जन्मके बाद उनसे दूर हटते गये और पुरुषोंके हाथमें

सौंप दिये गये। उन्हें तो किसी एकको प्रेम करना ही था, इसलिए एकके स्थानमें दूसरा आ गया।

माताजीका यही प्रेमपूर्ण चित्र मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। वह मुझे इतनी विशुद्ध और महान् मालूम पड़ती थीं कि अपने जीवनके मध्यकालमें जब मैं चारों ओर प्रलोभनोंसे घिरा हुआ संघर्ष कर रहा था, मैंने अनेक बार उनकी आत्मासे अपनी सहायताकी प्रार्थना की और उस प्रार्थनाने मेरी बड़ी मदद की।

माताजीके पत्रों और उनके संबंधमें दूसरोंके मुंहसे सुनी हुई बातोंके आधार पर मैं कह सकता हूं कि हमारे पिताजीके परिवारमें उनका जीवन सुखी और आनंदमय था।

परिवारके लोगोंमें मेरी दादी थी, मेरी बुआएं थीं—काउंटेस अलेक्जेन्ड्राइलीनिशना ओस्टेन-सेकेन भी मेरी बुआ थीं और प्राशेनकाको उन्होंने पाला था। एक दूसरेके रिश्तेकी, जिन्हें हम 'बुआ' पुकारते थे, टाटिआना अलेक्जेन्ड्रोवना ऐरगोलस्की थीं! वह मेरे दादाके घरमें पली थीं और जीवनभर मेरे पिताके घर रहीं। मेरे शिक्षक फेडोर इवानोविच रेसेल थे, जिनका ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपन में किया है। इसके अलावा हम पांच बहन-भाई थे। निकोलस, सर्जी, मिट्री, मैं और मेरी बहन माशेंका (मारया) जिसकी पैदाइशके वक्त माताजीकी मृत्यु हो गई थी। माताजीका ६ वर्षों का छोटा-सा वैवाहिक जीवन बहुत सुखी और संतोषपूर्ण था परिवारके सभी लोगोंसे वह स्नेह करती थीं और स्वयं सबके स्नेह की पात्री थीं। उनके पत्रोंसे मालूम होता है कि उस समय उनका जीवन समाजसे विलग रहते हुए बीत रहा था। हमारे निकट परिचितों ओगरेव परिवारवालों और उन संबंधियोंके सिवा, जो घूमने-घामते उधर आ निकलते थे और कोई यास्नाया पोल्यानामें नहीं आता था।

मेरी माताका समय अपने बच्चोंकी देख-रेखमें, घरका प्रबंध करनेमें, घूमनेमें, शामको मेरी दादीको उपन्यास सुनानेमें, रूसोकी

'एमाइल' जैसी गंभीर पुस्तके पढनेमे, जो पढ़ा हो उस पर वाद-विवाद करनेमे, पियानो बजानेमे और मेरी एक बुआको इटालियन भाषा सिखानेमे जाता था।

प्राय: सभी परिवारोमे ऐसे समय आते हैं, जब कि सब लोग आनद-से रहते हैं और बीमारी या मृत्यु से पाला नही पड़ता। मैं समझता हूं कि मेरी माताकी मृत्युतक हमारे परिवारमे भी ऐसा ही समय रहा। न तो किसीकी मृत्यु ही हुई न कोई सख्त बीमार ही पडा और मेरे पिताजी-की बिगड़ी हुई आर्थिक अवस्था भी बहुत-कुछ सुधर गई। हर एक आदमी स्वस्थ, प्रसन्न और मित्र-भावसे रहता था। मेरे पिता हम सबका कहानियों और चुटकुलोसे मनोरंजन किया करते थे। परतु जब मैंने होश सभाला वे अच्छे दिन बीत चुके थे, माताजीकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके शोककी गहरी छाप हमारे परिवार पर लग चुकी थी।

* * * *

मैंने ऊपर जो कुछ भी लिखा है वह सुनी-सुनाई बातों और चिट्ठी-पत्रियोंके आधार पर लिखा है। अब मैं लिखूंगा कि उस समयके मेरे अनुभव क्या हैं और मुझे क्या-क्या बातें याद हैं। मैं अपने बचपनकी वे बाते नहीं लिखूंगा, जिनकी केवल धुंधली-सी स्मृति है और मैं नहीं कह सकता कि उनमे क्या-तो वास्तविक है और क्या काल्पनिक; बल्कि मैं उस जगहसे लिखना शुरू करूंगा, जहांसे मुझे सब बातों, उन स्थानों और उन आदमियोंकी, जो बचपनसे ही मेरे आस-पास रहते आ रहे थे, साफ-साफ याद है। उन आदमियोंमे स्वभावत: पहला स्थान मेरे पिताका है। इसलिए नहीं कि उनकी मुझपर कुछ छाप पड़ी है, बल्कि इसलिए कि उनके प्रति मेरी आदर-भावना बहुत ज्यादा रही है।

अपने बचपन ही में वह अपने पिताके इकलौते लड़के रह गये थे। उनके छोटे भाई एलेका रीढकी हड्डी टूट जानेसे कुबड़े हो गये थे और बाल्यावस्थामे ही मर गये थे। सन् १८१२[1]मे मेरे पिताकी आयु

१ जब नेपोलियनने रूस पर हमला किया। अनु०

केवल १७ वर्षकी थी। माता-पिताके बहुत झिड़कने, मना करने, डराने और विरोध करने पर भी वे फौजमें भर्ती हो गये। उस समय मेरी दादीके (जो स्वयं गौशकोव कुलकी राजकुमारी थीं) एक निकट संबंधी राजकुमार एलेक्से इवानोविच गौशकोव युद्ध-मंत्री थे। उनके भाई एँड्रू इवानोविच युद्धकेलिए भेजी गई सेनाके एक भागका संचालन कर रहे थे। मेरे पिता इन्हींके जेट (सहायक) नियुक्त हुए। उन्होंने १८१३–१४ और १८१४के युद्धोंमें भाग लिया। उन्हें खरीते देकर फ्रांसमें किसी जगह भेजा गया। वहां वह कैद कर लिये गये और तभी छूटे जब हमारी सेनाओंने पेरिसमें प्रवेश किया।

बीस वर्षकी आयुमें मेरे पिता अनजान बच्चे नहीं रह गये थे, क्योंकि १६ वर्ष की अवस्थामें, सेनामें भर्ती होनेसे पहले, उनके माता-पिताने उनका संबंध एक दास-कन्यासे करा दिया था। उस समय ऐसे संबंध युवकोंके स्वास्थ्यके लिए वाञ्छनीय समझे जाते थे। उनसे उन्हें एक पुत्र मिशेका हुआ जो कोचवान बनाया गया। जबतक मेरे पिता जीवित रहे, मिशेकाकी हालत ठीक रही, परंतु बादमें उसने अपनेको चौपट कर लिया और जब हम भाई बड़े हो गये तब वह बहुधा हमारे पास भीख मांगने आया करता। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोग उस समय विमूढ़ हो जाते थे, जब मेरा यह भाई, जो हमारे पितासे शकल-सूरतमें हम सब भाइयोंसे अधिक मिलता-जुलता था, अपनी हालत खराब हो जानेके फलस्वरूप हमसे १० या १५ रूबल, हम जो कुछ उसे दे सकते थे, प्राप्त कर बड़ी कृतज्ञता दिखाता।

युद्ध समाप्त होनेके बाद पिताजीने, फौजकी नौकरीसे उकता कर, जैसा कि उनके पत्रोंसे झलकता है, वह नौकरी छोड़ दी और अपने कजान लौट आये, जहां कि मेरे दादा गवर्नर थे। दादाकी हालत उस समय बिलकुल खराब हो चुकी थी। कजानमें मेरी बुआ पेलागेया इलीनिश्ना भी, जिनका विवाह युश्कोवके साथ हुआ था, रहती थीं। थोड़े दिन बाद मेरे दादा मर गये और मेरे पिताके कंधों पर एक ऐसी जागीरका, जिस

पर उसके मूल्यसे कहीं अधिक कर्जा था, बूढ़ी दादीका, जो विलासी जीवन बितानेकी आदी थीं, तथा बुआका व एक और संबधीका भार आ पड़ा। माताजीके साथ उनका विवाह भी उसी समय तय हुआ था। वह कजानसे यास्नाय पोल्याना आ गए, जहां ६ वर्ष बाद वह विधुर हो गये।

हां, तो मैं अपने पिताके जीवन-चित्र पर ही फिर आता हूं। वह मझोले कद व गठीले बदनके चुस्त आदमी थे। उनका चेहरा बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता था, परतु उनकी आखे उदास रहती। उनका मुख्य धधा खेती और मुकदमेबाजी विशेषतः मुकदमेबाजी था वैसे तो उस जमानेमें हर एकको ही मुकदमेबाजी करनी पड़ती थी, लेकिन मेरे दादाके झगड़ोंको सुलझानेकेलिए पिताजीको खास तौरसे बहुत मुकदमे लड़ने पड़ते थे। इन मुकदमोंके कारण उन्हें अक्सर घर छोड़कर जाना पड़ता था इसके अलावा वह बहुधा शिकार खेलनेके लिए भी बाहर जाया करते थे। शिकारके समय उनके साथियोंमे उनके मित्र एक मालदार और प्रौढ़ अविवाहित सज्जन किरिवस्की, ग्लेबोव और इस्लेनेव रहते थे। अन्य जागीरदारोंके समान मेरे पिताजीके घरके दासोंमे कुछ ऐसे थे जो उनके कृपा-पात्र थे पेट्रुश्का और मत्यूशा, दोनों भाई उनके विशेष कृपा-पात्र थे। वे दोनों सुदर, कार्य-पटु तथा होशियार शिकारी थे। मेरे पिताजी जब घर रहते थे तो खेतीका काम और और बच्चोंको देखते-भालते तो थे ही, पढ़ते भी बहुत थे। उनका अपना पुस्तकालय था जिसमें फ्रासका उच्चकोटिका साहित्य, ऐतिहासिक ग्रथ, प्राकृतिक इतिहास की पुस्तके-बफन और क्यूवियरके ग्रथ थे। मेरी बुआ कहा करती थीं कि मेरे पिताजीका यह नियम था कि वह पुरानी किताबे पढ़े बिना नई किताब नहीं खरीदते थे। यद्यपि उन्होंने बहुत-कुछ पढ़ा, तथापि यह मानना कठिन है कि उन्होंने 'क्रूसेडके इतिहास' और 'पोप' नामक ग्रथ जो उन्होंने अपने पुस्तकालयके लिए प्राप्त कर रखे थे सारे-के-सारे पढ़ लिए होंगे।

जहातक मैं समझता हूं, उन्हे विज्ञानसे अधिक प्रेम नहीं था परतु

उनकी जानकारी अपने समयके साधारण आदमियोंके ज्ञानके बराबर थी। ऐलेक्जेन्डर प्रथमके राज्यकालके शुरूके समय तथा १८१३-१८१४ और १८१५ के युद्ध-कालके समयके बहुतसे आदमियोंके समान उन्हें भी उदार दलका तो नहीं कहा जा सकता, परंतु आत्म-सम्मानकी भावनाके कारण ही उनके लिए ऐलेक्जेन्डरके प्रतिक्रियावादी राज्यकालमें या निकोलसके आधीन काम करना सभव नहीं हो सका था। वह अकेले ही नहीं, बल्कि उनके सभी मित्र इसी प्रकार सरकारी नौकरियोंसे अलग रहे थे और निकोलस प्रथमके राज्यकालमें एक तरहसे विद्रोही थे।

मेरे बाल्य-काल और यौवन-काल तक हमारे परिवारका न तो किसी सरकारी अफसरसे परिचय था, न किसी प्रकारका निकट संपर्क ही था। अपने बचपनमें तो मैं इनका महत्त्व न समझ सका। उस समय तो मैं इतनाही जानता था कि पिताजीने कभी किसीके सामने सिर नहीं झुकाया, उनकी वाणी मधुर, नम्र और बहुधा व्यंग और कटाक्षभरी होती थी। उनमें आत्म-गौरवकी यह भावना देखकर ही मेरा उनके प्रति प्रेम बढ गया और उन्हें देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता होने लगी।

उनके पढने-लिखनेके कमरेमें, मुझे खूब याद है, हम लोग रातको सोते समय उन्हे प्रणाम करने अथवा कभी-कभी सिर्फ खेलने जाते थे। वह कमरेमें चमड़ेके सोफेपर बैठे हुए तमाखू पीते होते थे। हमारे जाने पर वह हमारी पीठ ठोकते और कभी-कभी जब वह थके होते या दरवाजे पर खड़े अपने क्लर्कसे या हमारे धर्म-गुरु याजीकोव से (जो अधिकतर हमारे यहा रहते थे) बातचीत करते, तो हमें अपने सोफेकी पीठ पर चढ लेने देते। उस समय हमें बड़ा आनंद आता था। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार वह नीचे आते और हमें तसवीरें बनाकर देते जो हमें सर्वोत्तम मालूम होती थीं। मुझे यह भी याद है कि किस प्रकार एक बार उन्होंने मुझसे पुश्किनकी कविताए पढवाकर सुनी जो मुझे बहुत अच्छी लगी थीं और मैंने उन्हे कठस्थ कर लिया था। वे कविताए 'समुद्र-की ओर' 'ओ मुक्त तत्त्व जाओ-जाओ !' 'और 'नेपोलियन से' आदि-

आदि थीं। मैं जिस हृदयस्पर्शी और मार्मिक ढंगमें इन कविताओंको पढ़ा करता था, वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था। मुझसे ये कविताएं सुननेके बाद वह पाजीकोवकी ओर, जो वहां बैठे थे, मर्म-भरी दृष्टिसे देखने लगे। मैं समझ गया कि ये मेरे कविता पढ़नेके ढंगको अच्छा समझते हैं अतः मैं इसपर बड़ा खुश हुआ था।

मुझे याद है कि दोपहरके व रातके भोजनके समय वह बहुत-सी व्यंग और विनोद-भरी बातें और कहानियां सुनाते थे और हमारी दादी, हमारी बुआएं और सब बच्चे उन्हें सुनकर बहुत हंसते थे। मुझे उनकी नगरकी यात्राएं याद हैं। जब वह अपना फ्राक-कोट और तंग मोहड़ीका पाजामा पहनते तो बहुत सुंदर लगते थे। मुझे सबसे अधिक याद उनके शिकारकी व कुत्तोंकी है। शिकारके लिए उनका जाना मुझे खूब याद है। उनके साथ घूमने जाना और उनके शिकारी कुत्तोंका उस लंबी-लंबी घास-से जो कभी उनके पेटसे चुभ जाती और कभी बदन पर लगती, उत्तेजित हो उठना और पूंछ खड़ी करके चारों ओर भागना और मेरे पिताजीका तारीफ करना, ये सब बातें भी मुझे याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार पहली सितंबरको, शिकारकी छुट्टीके दिन, हम सब गाड़ीमें बैठकर एक जंगलमें गये जहां एक लोमड़ी लाई गई थी, किस प्रकार शिकारी कुत्तोंने उसका पीछा किया और किस प्रकार उन्होंने उसे किसी स्थान पर, जहां हम उन्हें देख नहीं सके, पकड़ लिया। मुझे एक भेड़िया अपने घरके पास लाए जाने और हम सब बच्चोंके नंगे पैर उसे देखने जानेकी भी अच्छी तरह याद है। वह भूरे रंगका विशाल भेड़िया एक गाड़ीमें पैर बांधकर, बंद करके लाया गया था। वह गाड़ीमें चुपचाप लेटा था लेकिन जो भी कोई उसके पास जाता उसकी ओर वह तरेर कर देखता था। बागके पीछे एक जगह भेड़िया गाड़ीसे उतारा गया। कुछ लोगोंने बड़ी-बड़ी लकड़ियों की कमानी (टिकटी) से उसे जमीनपर दबाये रखा और अन्य लोगोंने उसके पैरकी रस्सी खोलनी शुरू की। वह रस्सीसे झगड़ने, उसे झकझोरने और दांतोंसे काटने लगा। आखिर लोगोंने पीछेसे रस्सी खोल दी और

उनमेसे एक चिल्लाया—'उसे छोड़ दो।' कमानिया उठा दी गई और भेड़िया भी उठ बैठा। वह लगभग दस सैकंड तक चुपचाप खड़ा रहा, परंतु लोग चिल्लाने लगे और शिकारी कुत्तोंको भी खोल दिया गया। बस फिर क्या था, भेड़िया, कुत्ते, घुड़सवार, शिकारी सब सामनेका मैदान पार करके पहाड़के नीचे तराई की ओर दौड़ पड़े। भेड़िया भाग गया। मुझे याद है कि इसपर पिताजी घर आकर नाराज हुए थे।

पिताजी मुझे उस समय सबसे अच्छे लगते थे जब वह सोफेपर दादीके साथ बैठे होते थे और पेशेंस' खेलके लिए ताशके पत्ते फैलानेमे उनकी सहायता करते थे। वह हर एक आदमीके प्रति नम्र और मृदुभाषी थे लेकिन मेरी दादीके प्रति तो खास तौरसे विनम्र थे। मेरी दादी अपनी लंबी ठोड़ी झुकाये और सिर पर एक झालदार टेढ़ी टोपी लगाये, सोफे पर बैठी रहती और ताशके पत्ते खोल-खोल कर सामने रखती जाती थीं। बीच-बीच मे वह अपनी सोनेकी सुंघनीसे चुटकी भर-भरकर सूंघती जाती थी।

पिताजीकी दादीके साथ सोफे पर बैठकर उन्हे पेशस खेलनेमें मदद देनेकी स्मृति सबसे मधुर है। एक बार, मुझे याद है, पेशेंस खेल-के दर्मियान, जबकि मेरी बुआ जोर-जोरसे पढ रही थी, उनमेसे एकने बीचमे रोका और एक आइनेकी तरफ इशारा किया और धीरेसे कुछ कहा। हम सब उधर देखने लगे। बात यह थी कि एक नौकर टीखोन यह समझकर कि मेरे पिता दीवानखानेमे होंगे, पढ़नेके कमरेमे रखे हुए तमाखूके बड़े थैलेमेसे तमाखू चुराने जा रहा था। पिताजीने आइनेमे देखा कि वह पंजेके बल चुपके-चुपके जारहा था। बुआएं हसने लगीं, दादी बड़ी देरतक न समझ सकी, पर जब समझ गई तो वे भी मुस्करा दीं। मै अपने पितासे बहुत मुहब्बत रखता था, लेकिन वह मुहब्बत कितनी गहरी थी, यह तभी मालूम हुआ, जब वह मर गए।

सोफेके पास एक आराम कुर्सीपर खुदाईके कामकी बंदूक बनानेवाली

१ पेशेंस ताशका एक खेल है जिसे एक आदमी अकेला ही खेलता है।

पेट्रोव्ना कारतूसोंका पट्टा और एक तंग और छोटी-सी जाकट पहने बैठी रहती। अक्सर वह कातती रहती और रीलको दीवारपर दे मारती, जिसकी चोटने दीवारपर निशान पड़ गये थे। यह पेट्रोव्ना एक व्यापारी स्त्री थी जिसे मेरी दादी बहुत चाहती थीं। वह अक्सर हम लोगोंके यहा रहती थी और दादीके सोफेके पास ही बैठा करती थी। मेरी बुआए आराम-कुर्सीपर बैठी रहती और उनमेंसे एक जोर-जोरसे पढ़ती रहती थी। एक आराम-कुर्सीपर पिताजीकी प्यारी कुत्ती मिल्काने अपनी जगह बना रखी थी, उसकी काली-काली सुंदर आखे थीं और चितकबरा रंग था। हम लोग प्रणाम करनेकेलिए रातमे उस कमरेमे जाते थे और कुछ देरके लिए वहा ठहर जाते थे।

* * * *

बचपनमें टबमें न्हाने और कपड़ेमें बाधकर[१] डाल दिये जानेके ये मेरे संस्मरण सबसे पहलेके हैं। मै उन्हे एक क्रमसे तो नहीं लिख सकता, क्योंकि मुझे मालूम नही कि उनमें कौन-सा पहला और कौन-सा दूसरा है। उनमेंसे कुछके विषयमें तो मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे बातें स्वप्नमें हुईं या जाग्रत अवस्थामें। मैं लिपटा-लिपटाया पड़ा रहता, अपने हाथ फैलानेका प्रयत्न करता, परंतु फैला नहीं सकता था। मै रोता और चिल्लाता। वह रोना-चिल्लाना मुझे स्वय अच्छा नहीं लगता था, परतु मैं चुप भी नहीं रह सकता था। उस समय कोई—मुझे याद नहीं कौन—आता और मेरे ऊपर झुकता। यह सब बाते कुछ-कुछ अंधेरेमें होती थीं। मुझे मालूम था कि वह दो ही आदमी हैं। मेरे रोने-चिल्लानेसे वे भी विचलित होते, परंतु जैसा कि मैं चाहता था, मुझे खोलते नहीं थे। अतः मैं जोर-जोरसे चिल्लाता। वे तो यह समझते थे कि इस प्रकार मुझे दाबे रखना आवश्यक है परतु मैं इसे बिलकुल अनावश्यक समझता था और यही बात उन्हे सिद्ध करके दिखाना चाहता था। अत. मैं जोर-जोर-

१ रूसमें यह प्रथा थी कि छोटे-छोटे बालकोंको कपडेमें इस प्रकार लपेट देते थे कि वह हिल-डुल न सकें और हाथ-पैर न चला सकें।

से रोने और चिल्लाने लगता था। यह चिल्लाहट स्वयं मुझे अप्रिय थी, परंतु मैं इसे रोक नहीं सकता था। मैं इस अन्याय और अत्याचारका—मनुष्योंका नहीं, क्योंकि वे तो मुझपर तरस खाते थे, वरन् भाग्यका अनुभव करता और अपने ऊपर रोता था। लेकिन यह सब क्या था, इसके संबंधमें न तो मैं जानता हूं और न कभी भविष्यमें जाननेकी संभावना ही है कि आया उस समय मुझे बांधकर डाला जाता था जब कि दूध-पीता बच्चा ही था (और मैं अपने हाथ छुड़ानेके लिए प्रयत्न करता रहता था) अथवा लोग मुझे उस समय भी बांधकर डाल देते थे जब कि मैं एक सालका हो गया था ताकि मैं कोई फोड़ा-फुंसी न खुरच डालूं, अथवा यह एक ही अनुभूति है और इस एक ही अनुभूतिमें अन्य बहुत-से अनुभव भी आ मिले हैं, जैसा कि अधिकतर स्वप्नावस्थामें होता है। लेकिन हां, यह तो निश्चित है कि यह मेरे जीवनकी सबसे पहली और सबसे अच्छी स्मृति है। मेरे हृदयपर इसकी जो छाप है, वह रोने-चिल्लानेकी स्मृति-मात्र ही नहीं है, अपितु उन अनुभूतियोंके पेचीदेपन और पारस्परिक विरोधिताकी छाप है। मैं स्वतंत्रता चाहता हूं, इससे किसीको नुकसान न पहुंचेगा, परंतु सारी बात तो यह है कि मैं, जिसे शक्ति प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, कमजोर हूं, जब कि वे बलवान हैं।

दूसरी स्मृति भी बड़ी सुखद है। मैं एक टबमें बैठा हुआ हूं। मेरे चारों ओर किसी चीजकी, जिससे वे मेरा छोटा-सा शरीर रगड़ रहे हैं, एक तरहकी गंध फैल रही है जो अप्रिय नहीं है। मेरे विचारमें वह गंध चोकर है, जो मुझे नहलानेके टबमें डाल दी गई है। उस चोकरकी गंध व स्पर्शसे जो सुंदर व अभूतपूर्व संवेदना उठी उसने मुझे जाग्रत कर दिया और पहली बार ही मुझे अपने शरीरका, जिसकी छाती पर पतली-पतली हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं, चिकनी लकड़ीके गहरे रंगके टबका, धाय माके खुले हाथोंका, भाप उठते हुए और चक्कर खाते हुए गरम पानी-का, छपछपानेकी आवाजका, टबके गीले किनारों पर हाथ फेरनेपर उसकी चिकनाईका भान और बोध हुआ और ये सब चीजें मुझे अच्छी लगने लगीं।

यह सोचकर आश्चर्य और भय मालूम होता है कि जन्मसे लेकर तीन सालकी आयु तक, जब मैं स्तन-पान कराकर रखा जाता था, और जब मेरा स्तन-पान करना छुड़ाया गया और जब पहले-पहल घुटनोंके बल चलना, फिर खड़े होकर चलना और और कुछ बोलना सीखा था, मुझे उन दो बातों और अर्थात् नहाने और कपड़ेमें बंधे रहनेके अतिरिक्त बहुत दिमाग खरोचनेपर भी कोई घटना याद नहीं आती। आखिर मैं इस संसारमें कब आया? मेरा जीवन कब आरंभ हुआ? उस समय मैं किस अवस्थामें था उसकी कल्पना इतनी दुखद क्यों है? क्यों यह सोचकर कि मृत्युके समय भी ऐसी ही अवस्था हो जायगी जब जीवनकी किसी घटनाकी स्मृति नहीं रहेगी, जिसे शब्दों-द्वारा व्यक्त किया जा सके, हृदय थर्रा उठता है—एक समय यह सोचकर मेरा भी हृदय थर्रा उठता था और अब भी बहुत-से लोगोंका थर्रा उठता है? क्या मैं उस समय जीवित नहीं था जब कि मैं देखना, सुनना, समझना, बोलना, स्तन-पान करना हंसना और अपनी माताको प्रसन्न करना सीख रहा था? अवश्य मैं जीवित था और आनदसे रह रहा था। क्या उस समय मेरे पास वे सब चीजें नहीं थीं जिनसे अब मैं जीवित रह रहा हूं? क्या मैंने उसी समय इतना कुछ, इतनी शीघ्रतासे प्राप्त नहीं कर लिया कि उसका सौवां भाग भी बादके सारे जीवनमें फिर प्राप्त नहीं हुआ? पांच सालके बालकसे इस आयुतक मानो मैं एक कदम चला हू, जन्मके समयसे पांच सालकी आयुतक बड़ा लंबा रास्ता था, गर्भमें आनेके समयसे जन्म होनेके बीच एक लंबी खाई थी, परंतु गर्भमें आनेकी पूर्व-स्थितिसे गर्भमें आने तकका समय एक लंबी खाई नहीं वरन् अगम्य और अचिन्त्य है। तीन तत्त्व आकाश, काल, कारण व कार्य हमारी कल्पनाके ही मूर्त्त-रूप हैं। हमारे जीवनका सार इन कल्पनाओं-में रहे नहीं है अपितु हमारा सारा जीवन इन कल्पनाओंका अधिकाधिक दास होते जाना और फिर उनसे मुक्त होना ही है।

* * *

इसके बाद जो तीसरा अनुभव आता है वह ईरीमीवनाका है। 'ईरीमीवना' वह हौवा था जिससे लोग हम बच्चोंको डराया करते थे। शायद वे बहुत समयसे इस तरह हमें डराते रहे होंगे, परंतु मुझे जो इसकी याद है, वह यों है : मैं अपने बिस्तरेपर पड़ा हूं और रोजकी तरह प्रसन्न हूँ। इसी समय मुझे पालने-पोसनेवालोंमेंसे कोई आता और एक नई-सी आवाज बनाकर मेरे सामने कुछ कह कर चला जाता। मैं प्रसन्न होनेके साथ-साथ डर भी जाता। मेरे साथ मेरे कमरेमें मेरे-जैसा ही कोई और भी होता। संभवतः वह मेरी बहन मारया थी। उसका पालना भी मेरे ही कमरेमें था। मुझे याद है कि मेरे पालनेके पास एक परदा भी पड़ा हुआ था। मैं और मेरी बहन दोनों इस अद्भुत घटना पर जो कि घटनेवाली है, प्रसन्न भी होते और डरते भी। मैं तकियेमें छिप जाता और उसके नीचेसे दरवाजेकी ओर देखता। दरवाजेमेंसे मैं कोई अद्भुत और प्रसन्नता देनेवाली वस्तुके आनेकी आशा रखता था। उसी वक्त कोई ऐसे कपड़े और टोपी पहने हुए आता जिसे पहले मैंने कभी न देखा था। मैं इतना तो अवश्य जान जाता कि यह व्यक्ति हमारा परिचित है (वह हमारी बुआ थी या धाय, यह मुझे याद नहीं) और वह किन्हीं बुरे बच्चों और ईरीमीवनाके विषयमें कर्कश स्वरमें न जाने क्या कहता था। मैं सचमुच डर जाता और डरसे और प्रसन्नता-से किलकारियां मारता, परंतु फिर भी उस डरमें मुझे आनंद आता और मैं यह नहीं चाहता था कि मुझे डरानेवाला व्यक्ति यह समझ जाय कि मैंने उसे पहचान लिया है।

इसी ईरीमीवनासे मिलता-जुलता एक और अनुभव है और चूंकि वह इस अनुभवसे अधिक स्पष्ट है, अतः मैं समझता हूं कि वह काफी बादका है। उसका आशय मैं आजतक नहीं समझ सका हूं। इस घटना-में हमारे जर्मन शिक्षक थियोदोर इवानिचका प्रमुख भाग है। किंतु चूंकि उस समयतक मैं उनको नहीं सौंपा गया था, इसलिए मैं समझता कि मेरी यह घटना मेरी ५ सालकी आयुके पहलेकी होगी। अपनी यादमें

थियोडोर इवानिचके सपर्कमे आनेका यह मेरा पहला अवसर था और यह घटना भी इतने पहले हुई कि इसमे थियोडोरके अतिरिक्त अपने भाइयों या पिताकी जरा भी याद नहीं। यदि इस संबंधमें मुझे किसीका जरा भी खयाल है तो वह मेरी बहनका है और वह भी इसलिए कि वह मेरी ही तरह ईरीमीवनासे डरती थी। इस घटनाके साथ-साथ मुझे एक बात और याद है और वह यह कि हमारे मकानमे एक ऊपरकी मंजिल और थी। मैं उस मंजिलमे कैसे पहुचा, अपने-आप गया अथवा कोई दूसरा आदमी मुझे ले गया, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन यह मुझे अवश्य याद है कि हममेंसे बहुतोंने वहां पहुंचकर एक-दूसरेका हाथ पकड़कर घेरा डाल लिया। हमारे साथ कुछ स्त्रियां भी थीं, जिन्हे मैं नहीं जानता। परंतु, हां, किसी भी प्रकार मुझे यह मालूम हो गया कि वे धोबिनें थीं। हम सब गोल चक्करमें घूमते और कूदते। थियोडोर ईवानिच बहुत ऊंचे-ऊंचे पैर उठाता और बड़ी आवाजसे जमीन पर पटकता। मैंने उसी समय यह महसूस किया कि यह बात गलत और खेलको बिगाड़नेवाली है। मैं उसे देखता और (शायद) चिल्लाने लगता। बस उसी वक्त सारा खेल खत्म हो जाता।

बस पांच सालतक मुझे इतना ही याद है। इसके अलावा मुझे अपनी धायों, दुआओं, बहनों, भाइयों यहांतक कि पिताजी व अपने कमरों और अपने खिलौनोंतककी भी याद नहीं। अपने बाल्य-जीवनकी घटनाओंकी अधिक स्पष्ट स्मृति तो उस समयसे आरंभ होती है, जबकि मैं नीचेकी मंजिलमें थियोडोर ईवानिच तथा बड़े-बड़े लड़कोंके पास पुरुष-गृहमें आ गया।

जब कि मैं नीचे थियोडोर ईवानिच और बड़े लड़कोंके पास आ गया, उसी समय जीवनमें पहली बार और इसलिए अधिक तीव्रतासे मुझे उस भावनाका और उन धार्मिक आचरणोंका अनुभव हुआ, जिसे कर्तव्यकी भावना कहते हैं और जिनका पालन हर एकको करना पड़ता है। जिनके ही जिन चीजों और जिन आदतोंका मैं आदी हो गया था उन्हें छोड़ना

कठिन था। मै स्वभावतः ही उदास रहने लगा, इसलिए नहीं कि मै अपनी धायसे, बहनसे, और बुआसे अलग हो गया बल्कि यह उदासी इसलिए थी कि म अपने पालने अपने परदे और अपने तकिएसे बिछुड़ गया था। यही नहीं, मैं अपने उस नये जीवनसे, जिसमे कि मं प्रवेश कर रहा था, कुछ डरने-सा लगा। मै उस भावी जीवनके अच्छे अंशको ही देखने और थियोडोरके लाड़ और दुलार-भरे शब्दोंमे विश्वास करनेकी कोशिश करता था। मैंने उस अपमान और घृणाके भावकी ओरसे आखें मूंद ली जो मुझ सबसे छोटे लड़केके प्रति दूसरे लड़के दिखाते थे। मै इस बातको अपने मनमें बिठानेकी कोशिश करने लगा कि एक बड़े लड़केका लड़कियोंके साथ रहना शर्मकी बात है और यह भी कि धाय आदिके साथ ऊपरकी मजिलमें (अर्थात् रनवासमें) जीवन व्यतीत करना अच्छा नही है। परंतु फिर भी मेरा मन सदैव उदास रहता था और मैं जानता था कि मेरा भोलापन और आनंद इस बुरी तरह नष्ट हो रहा है और अब वह कभी प्राप्त न होगा। बस, आत्माभिमान और आत्म-गौरव तथा कर्त्तव्य-पालनकी भावना ही ऐसी थी जिसने मुझे रोक रखा। इसी तरह भावी जीवनमे कोई नया काम आरंभ करते समय किसी दुविधामें या धर्म-सकटमें पड़ जाने पर मै इन्ही दो भावनाओंसे किसी निश्चय पर पहुचता था। मुझे उस हानि पर, जिसकी मैं पूर्ति नही कर सकता था, बड़ा दुःख होता था। यद्यपि मुझसे यह कहा गया था कि अब मुझे लड़कोंके साथ रखा जाना चाहिए, परंतु इस पर भी मै तो यह कभी विश्वास ही नही कर सका कि ऐसा कभी होगा। जो गाउन मुझे पहनाया जाता था उसमे एक पेटी भी कमरमें बाधनेके लिए थी और मुझे ऐसा मालूम होता था मानो इस पेटीने सदाके लिए ऊपर की मजिल—(जहा स्त्रिया रहती हैं अथवा यदि राजसी-भाषामें कहे तो रनवास)से मेरा सबंध तोड़ दिया है। उस वक्त जिन सब व्यक्तियोंके साथ मै रह चुका था, उनका खयाल तो मुझे आया नही, मगर वहाकी एक मुख्य स्त्रीका जिसके बारेमें इसके पहलेकी कोई बात मुझे याद नही है, खयाल आया। वह महिला थी

टाशियाना एलेक्जेड्रोवना एर्गोल्स्की। मुझे उनका ठिगना और सुसगठित शरीर, काले-काले केश, दयालु और नम्र स्वभाव अब भी याद है। उन्होंने ही वह गाउन मुझे पहनाया था और मुझे छातीसे लगाकर चूमते हुए उन्होंने ही मेरी कमरमे पेटी बाधी थी उस समय मैने देखा कि वह भी मेरे जैसा अनुभव कर रही थी कि यह अवसर दुःख और बड़े दुःखका अवसर है। परतु यह तो होता ही है। उसी समय जीवनमे पहली बार मैने जाना कि जीवन कोई खेल नही वरन् गंभीर वस्तु है।

* * * *

माता-पिताके बाद मेरे जीवन पर जिनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, वह टाशियाना ऐलेक्जेड्रोवना ऐर्गोल्स्की थी, जिन्हे हम बुआ कहा करते थे। वह मेरी दादीके पीहरके नातेसे कोई बहुत दूरकी रिश्तेदार थीं। अपने माता-पिताकी मृत्युके बाद वह और उनकी बहन लीसा अनाथ हो गई। लीसाने बादमे पीटर ईवानोविच टाल्स्टायसे विवाह कर लिया था। उनके कुछ भाई थे जिनके पालन-पोषणका प्रबध उनके सबंधियों-ने किसी प्रकार कर दिया था। दोनो लड़कियोंकी शिक्षा-दीक्षाका भार चर्न जिलेमे अपने क्षेत्रोंमे प्रसिद्ध, अभिमानी और प्रमुख महिला टाशियाना सीमीनोव्ना स्कूरेटोव और मेरी दादीने ले लिया। उन्होंने पर्चियों पर लड़कियोंके नाम लिखकर उन्हे मोड़कर देव-मूर्त्तिके सामने डाल दिया और उसकी प्रार्थना कर लाटरी उठाई। लीसा टाशियाना सीमानोव्ना के हिस्सेमे आई और यह मेरी दादीके। हमारे घरमें वे तेनिश्का पुकारी जाती थीं। दोनोका जन्म १७६५ ई० मे हुआ था। उनकी आयु मेरे पिताके बराबर थी। उन्हें मेरी बुआओंके बराबर ही शिक्षा दी गई थी और घरमे सब लोग उन्हे प्यार करते थे। कोई उनसे नाराज तो हो ही नही सकता था क्योंकि वह दृढ, उत्साही और आत्म-त्याग करनेवाली, चरित्रवान् महिला थी। उनके चरित्रकी दृढता एक घटनासे साफ झलकती है जो वह हमे अपने हाथमें हथेलीके बराबर जले स्थानका दाग दिखाकर सुनाया करती थीं। वे सब बच्चे म्यूकियस

स्केवोलाकी कहानी पढ़ रहे थे। उन्होंने आपसमें कहा कि जैसा उसने किया वैसा कोई नहीं कर सकता। तेनिश्काने कहा, 'मैं वैसा कर दिखाऊंगी।' मेरे धर्म-पिता याजीकोवने कहा, 'तुम नहीं कर सकतीं।' और उन्होंने तुरंत एक रूल मोमबत्तीमें गरम किया और जब वह पिघलने लगा और उसमेंसे धुंआ निकलने लगा तो उन्होंने कहा, 'लो, अब इसे अपने हाथ पर लगाओ।' तेनिश्काने अपना खुला हाथ बढ़ा दिया (उस समय लड़कियां आधी बांहोंका कपड़ा ही पहनती थीं) और याजीकोवने वह जलता हुआ रूल उनके हाथ पर दबा दिया। वह खीजी तो, परंतु उन्होंने अपना हाथ पीछे न हटाया, और उस समय तक उफ न किया जब तक याजीकोवने वह रूल हटा नहीं लिया। इस रूलके साथ ही उनके हाथकी चमड़ी भी उधड़ गई। जब घरके बड़े आदमियोंने पूछा कि यह कैसे जल गया तो उन्होंने कहा कि यह मैंने अपने हाथसे जला लिया है, क्योंकि मैं भी यह देखना चाहती थी कि म्यूकियस स्केवोला-को उस समय कैसा अनुभव हुआ होगा।

सभी बातोंमें वह ऐसी ही थीं। उनमें दृढ़ता थी, साथ ही आत्म-त्याग था। घने, काले और घुंघराले बालोंकी गुथी हुई लटों, काली-काली आंखों तथा प्रफुल्ल मुखमंडल-सहित वह बड़ी सुन्दर और आकर्षक मालूम पड़ती रही होंगी।

मुझे उनकी जबकी याद है, वह ४०से ऊपर थीं और मेरे मनमें कभी यह विचार भी नहीं उठा था कि वह सुन्दर हैं या नहीं। मैं उन्हें प्यार करता था, उनकी आंखोंको, उनकी मुस्कराहटको, उनके छोटे-छोटे हाथोंको प्यार करता था।

संभवतः वह मेरे पिताको प्यार करती थी और मेरे पिता भी उनसे प्रेम करते थे, परंतु उन्होंने युवावस्थामें उनसे विवाह नहीं किया। उन्होंने सोचा कि मेरी धनी मातासे विवाह करनेमें उन्हें लाभ होगा। बादमें (अर्थात् मेरी माताकी मृत्युके बाद) उन्होंने इसलिए उनसे विवाह नहीं किया कि वह अपने और पिताजीके तथा हमारे बीच जो

काव्यमय संबंध था, उसे बिगाड़ना नहीं चाहती थीं। एक सुंदर बस्तेमें बंधे उनके कागजोंमें सन् १८३६की यानी मेरी माताकी मृत्युके ६ साल बादको लिखी हुई निम्न पंक्तियां मिली हैं:—

"१६ अगस्त १८३६। निकोलसने मेरे सामने आज एक विचित्र प्रस्ताव रखा, वह यह कि मैं उससे विवाह कर लूं और उसके बच्चोंकी माता बन जाऊं तथा उन्हें कभी न छोड़ूं। मैंने पहला प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया लेकिन दूसरेको जीवन रहते निबाहने का वायदा किया है।"

इस प्रकार उन्होंने लिखा था लेकिन उन्होंने इस बातका हमसे या किसी औरसे भी कभी जिक्र नहीं किया। पिताजीकी मृत्युके बाद उन्होंने उनकी दूसरी बात पूरी की। हमारी दो बुआएं और एक दादी थी, जिनका हमारे ऊपर टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नासे अधिक अधिकार था। टाशियाना एलेक्जेंड्रोव्नाको बुआ कहनेकी हमारी आदत पड़ गई थी अन्यथा रिश्तेमें तो वह हमसे इतनी दूर थी कि मैं उस संबंधकी याद भी नहीं कर सकता। परंतु अपने प्रेमके कारण ही (घायल हंसकी कथामें बुद्धके समान) हमारे पालन-पोषणमें उनका सबसे अधिक हाथ रहा और हम इसे अनुभव करते थे।

मैं तो उनके प्रेममें उन्मत्त हो जाया करता था। मुझे याद है कि किस प्रकार एक बार जब मैं पांच वर्षका था, ड्राइंग रूममें सोफेके पीछेसे हाथ डालकर उनसे लिपट गया और किस प्रकार दुलार और प्यारसे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने भी उनका हाथ पकड़ लिया और उसे चूमने लगा और प्रेमोन्मत्त होकर किलकारियां मारने लगा।

एक अमीर घरानेकी लड़कीके समान ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। वह रूसी भाषासे फ्रांसीसी भाषा अच्छी लिख और बोल सकती थीं। पियानो भी बहुत सुंदर बजाती थी. परंतु लगभग ३० सालसे उन्होंने उसे छुआ तक नहीं था। जब मैं बड़ा हो गया और मैं भी पियानो बजाना सीखने लगा तो उन्होंने भी उसे बजाना शुरू किया। कभी-कभी जब हम दोनों मिलकर गाते तो वह अपने मधुर स्वरके ठीक उतार-चढाव और ताल-स्वर मिले हुए गानेसे मुझे चकित कर देती।

अपने नौकरोंके प्रति वह बड़ी दयालु थीं। उनसे कभी नाराज होकर नहीं बोलती थी। उनको मारने और पीटनेका तो विचार भी उन्हें सह्य नहीं था। फिर भी इतना मानती थीं कि दास तो आखिर दास ही है और उनके साथ मालकिन जैसा वर्ताव करती थीं। फिर भी वे लोग उन्हें औरोंसे भिन्न मानते थे और सब उन्हें प्यार करते थे। जब उनकी मृत्यु हुई और वह अंत्येष्टि-क्रियाके लिए गावमें होकर ले जायी जा रही थीं, उस समय सारे-के-सारे किसान अपने घरोंसे निकल आये और उनके लिए प्रार्थना करवाई।[1] उनका एक विशेष गुण उनका प्रेम था, लेकिन वह प्रेम मैं चाहता था कि ऐसा न होता, तो अच्छा था, केवल एक ही आदमी अर्थात् पिताजीके प्रति था। उसी केंद्रसे फैल कर उनका प्रेम सबको मिलता था। हम यह अनुभव करते थे कि वह हमें हमारे पिताजीके कारण ही प्रेम करती हैं। वह उनके-द्वारा ही किसी और को प्रेम करती थीं, क्योंकि उनका सारा जीवन प्रेममय था।

यद्यपि हमारे प्रति अपने प्रेमके कारण उनका हमारे ऊपर अधिक अधिकार था, लेकिन फिर भी हमारी बुआओंका हमारे ऊपर उनसे अधिक कानूनी अधिकार था, और जब पेलागेया इलीनिच्ना हमें कजान ले जाने लगी, तो वह उनका अधिकार मान गईं। लेकिन इससे हमारे प्रति उनके प्रेममें तिल-मात्रभी अंतर नहीं आया। यद्यपि वह अपनी बहिन काउंटेस ई० ए० टॉल्स्टॉयके साथ रहती थीं, लेकिन वास्तवमें उनका मन हमारे यहां रहता था। और यथासंभव जल्दी-से-जल्दी हमारे यहां लौट आती थीं। वह अपने जीवनके अंतिम २० दिनोंमें हमारे साथ यास्नया पाल्यानामें रहीं और यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नताकी बात थी। लेकिन हम अपनी प्रसन्नताका मूल्य आंकनेमें असमर्थ रहे थे, क्योंकि सच्ची प्रसन्नता तो

१ उस समय मृत व्यक्तिकी आत्माकी शांतिके लिए पदाधिकारियोंको थोड़ी-सी दक्षिणा देकर प्रार्थना-करानेकी प्रथा तो थी, परंतु किसानों द्वारा किसी महिलाके लिए, जो उनके गांवकी मालकिन भी न हो, ऐसी प्रार्थनाएं कराना असाधारण बात थी।

मौन और अलक्षित होती है। मैं उसकी कदर अवश्य करता था, लेकिन वह पर्याप्त नहीं थी। उन्हें अपने कमरेमें मर्तबानोंमें मिठाई, अंजीर, सौंठ पड़ी हुई मोटी रोटी और खजूर रखनेका शौक था और वह विशेष रूपसे मुझे ये चीजें दिखलाया करती थीं। मुझे यह बात कभी नहीं भूलती और स्मरण आने पर हृदयमें पश्चात्तापकी एक तीखी चुभन होती है कि इन चीजोंके लिए उनके रुपया मांगने पर मैंने हर बार इंकार ही कर दिया और वह सदा ठंडी सांस खींचकर चुप हो गईं। यह सच है कि मुझे स्वयं रुपयोंकी जरूरत थी लेकिन अब तो मुझे जब कभी भी स्मरण होता है कि मैंने उन्हें रुपया देनेसे इंकार किया तो उस समय मैं सिहर उठता हूं।

तबकी बात है, जब मेरा विवाह हो चुका था और वह भी कमजोर हो चली थीं। एक दिन हम सब उनके कमरेमें जमा थे। मौका देखकर, पीछेको मुंह फेरकर (मैंने उस समय देखा कि वह रोने ही वाली हैं) उन्होंने कहा—'देखो मेरे प्यारे बच्चे, मेरा कमरा अच्छा है और शायद तुम्हें इसकी जरूरत पड़े।' और उनकी आवाज कांपने लगी—'अगर मेरी इसी कमरेमें मृत्यु हुई तो मेरी स्मृति तुम्हें दुःख पहुंचावेगी अतः मुझे कोई और कमरा दे दो, ताकि मैं इस कमरेमें न मरूं।' मेरे प्रति उनका बचपनसे ही जब कि मैंने उन्हें समझा भी नहीं था, तबसे, ऐसा ही प्रेम था।

मैं ऊपर कह चुका हूं कि टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नाका मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने मुझे पहले-पहल, बचपनमें प्रेमके आध्यात्मिक आनंदका पाठ पढ़ाया। यह शिक्षा उन्होंने पुस्तकों या उपदेशों द्वारा नहीं दी, बल्कि अपने संपूर्ण जीवनसे उन्होंने मुझे प्रेमसे लबालब भर दिया।

मैंने यह देखा और अनुभव किया कि उन्हें प्रेम करनेमें कितना आनंद आता है। मैं स्वयं भी प्रेमके उस आनंदको समझता था। दूसरी बात जो मैंने सीखी, वह शांत और स्थिर जीवनका आनंद था।

   

[अर्द्ध-विक्षिप्त साधुओंके संबधमें, जो एक तीर्थ-स्थानसे दूसरे तीर्थ स्थानमे घूमा करते थे और रूसमे जहा-तहा दिखाई पड़ते थे और उनमेंसे कुछ टॉल्सटॉयके घर भी जब-तब आया करने थे, वह लिखते हैं:]

ग्रीशा (जिसका 'बचपन'में उल्लेख है) एक काल्पनिक चरित्र था। इस तरहके 'नाना' साधु हमारे घर पर आते रहते थे। मैं उन्हें बड़े आदर की दृष्टिसे देखना सीख गया था। उसके लिए मैं उन लोगोंका आभारी हूँ जिन्होंने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी। यद्यपि उनमेंमे कुछ ऐसे भी थे जो शुद्ध हृदयके नहीं थे और जिनके जीवनमें किसी समय कमजोरिया थीं, परतु उसके जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य विवेक-शून्य होते हुए भी बहुत ऊंचा था और मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि मैं बचपनसे ही उनकी महानता पहचानने लगा। उनका आचरण एक प्रकारसे मारकस ओरिलिअसके इस कथनकी पूर्ति करता था कि 'एक अच्छे जीवनके लिए घृणा सह लेनेसे बढ़कर ससारमे दूसरी चीज नहीं है।' अच्छे कामोंकी दूसरोंसे प्रशंसा पानेका लोभ इतना हानिकारक और अनिवार्य है कि हमे उन लोगोंके साथ सहानुभूति दिखानी ही चाहिए, जो प्रशंसासे दूर रहनेकी अथवा कभी-कभी दूसरोंके मनमें घृणा करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे ही साधुओंमेंसे मेरी बहिनकी धर्म-माता मेरिया जेरासीमोव्ना, अर्द्ध-मूढ एवडोकीमुश्का तथा अन्य थे, जो हमारे घर आया करते थे।

और हम बच्चे इन साधुओंके भजन न सुनकर अपने मालिकके सहायक अकीम नामक मूर्ख आदमीके भजन सुना करते थे। उसके भजन मुझे चकित कर देते थे और हृदय-स्पर्शी लगते थे। इन भजनोंमें वह ईश्वरको एक जीवित मनुष्य के समान सबोधन करता और हृदयमे पक्के विश्वास और धारणाके साथ कहता—तुम मुझे अच्छा करने चले हो, तुम मुझे मुक्ति दिलाने वाले हो।' उसके बाद वह कयामतके दिनके संबधमे भजन गाता कि किस प्रकार ईश्वर उस दिन न्याय और अन्यायको अलग करेगा और पापियोंकी आंखोंमे पीली रेत भर देगा।

मेरे भाइयों और बहनोंके अतिरिक्त मेरी ही उम्रकी एक-लड़की ड्यूनेश्का टेमीअशोव भी हमारे घरमें तब रहती थी, जब मैं पाच वर्षका था। यह बताना जरूरी है कि वह कौन थी और किस प्रकार हमारे यहा आई। जब हम बच्चे थे तो उस समय हमारे घरपर हमारे फूफा यशकोव जब-तब आया करते थे। उनकी काली मूंछ, गलमुच्छा और चश्मा हम बच्चोंको अचंभेमे डाल देता था। दूसरे सज्जन मेरे धर्म-पिता एस आई. याजीकोव थे। उनके शरीरसे हमेशा तमाखूकी बदबू आया करती थी. और मुह पर लटकती हुई चमड़ीकी वजहसे उनकी सूरत बड़ी भद्दी लगती थी। वह अजेब-अजीब तरहसे मुह मोड़ा करते थे। इन दो सज्जनों तथा हमारे दो पड़ोसियों ओगरेव और इस्लेनेवके अतिरिक्त हमारी माताके (पीहरके रिस्तेके) एक और दूरके संबंधी आया करते थे। यह एक धनी अविवाहित सज्जन थे। उनका नाम टेमीअशोव था। वह पिताजीको भाई कहकर पुकारा करते और उनके प्रति अगाध प्रेम रखते थे। वह यास्नया पाल्यानासे ४० वर्स्ट[१] (लगभग २७ मील) की दूरीपर पीरोगोव नामक गावमें रहते थे। एकबार वह वहासे नम्रूरके छोटे-छोटे दूध पीते बच्चे लाये जिनकी पूंछे गोल लिपटी हुई थी। उन्हें नौकरोंके कमरेमें एक बड़ी रकाबीमें रख दिया मेरे मनमें टेमीअशोव, पीरोगोव और नम्रूरके बच्चे तीनोंका चित्र एक ही साथ जुड़ गया।

इसके अतिरिक्त टेमीअशोव हम बच्चोंको इस कारण भी अच्छे लगते कि वह पियानो पर नाचनेकी एक गत (बस वह केवल वही एक गत बजा भी सकते) बजाते थे और हम सब बच्चोंको उस पर नचाते थे। हम पूछते कि यह कौन-सा नाच है तो कहते इस गत पर सब तरहके नाच नाचे जा सकते हैं। हम लोग भी ऐसा मौका पाकर बड़े प्रसन्न होते थे।

एक दिन एक जाड़ेकी रात थी। हम चाय पी चुके थे और शीघ्र ही बिस्तरोंपर ले जाये जाने वाले थे। मेरी आखे नींदके मारे झंपी जा रही थीं। उस समय अचानक नौकरोंके मकानोंकी ओरसे बड़े दरवाजेसे

[१] एक वर्स्ट ३५०० फीटका होता है

होकर एक आदमी ड्राइंग रूममें जहां हम सब केवल दो मोमबत्तियोंके धुंधले प्रकाशमें बैठे हुए थे, हलके-हलके पैर रखता हुआ जल्दीसे आया और बीच कमरेमें पहुंचते ही घुटनोंके बल गिर पड़ा। उसके हाथोंमें जो सुलगती हुई सिगरेट पाइप थी, वह जमीन पर गिर पड़ी और उससे जो चिनगारियां उड़ीं, उनका प्रकाश उसके मुख पर पड़ा। हमने देखा कि वह टेमीअशोव है। वह पिताजीके सामने घुटने टेककर कुछ प्रार्थना कर रहा था। मैं नहीं जानता कि उसने क्या कहा, क्योंकि मैं उसकी बात सुन ही न सका। मुझे तो बादमें यह मालूम हुआ कि वह मेरे पिताके सामने घुटने टेककर इसलिए बैठा कि वह अपनी नाजायज लड़की ड्युनेश्काको, जिसके विषयमें वह पहले भी पिताजीसे कह चुका था, उनके पास लाया था और उनसे प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे अपने पास रखें और अपने बच्चोंके साथ शिक्षा दें। उसके बादसे ही हमने अपने बीच उस चौड़े मुंहवाली बालिका ड्यूनेश्का और उसकी धाय-मां एव्रेक्शीयाको देखा। धाय लंबे कदकी एक बूढ़ी औरत थी। उसके मुंह पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं और तुर्की मुर्गेकी-सी उसकी ठुड्डी पर एक गांठ थी, जिसे हम घूरकर देखा करते थे।

ड्यूनेश्काका हमारे घर आना पिताजी और टेमीअशोवमें एक जटिल लेन-देनके फलस्वरूप हुआ था।

टेमीअशोव बहुत धनी आदमी था, लेकिन उसके कोई जायज संतान न थी। हां, दो लड़कियां थीं, एक तो ड्यूनेश्का और दूसरी कूबड़ी वेरोश्का जिसकी मां मरफ़सा एक दासीकी लड़की थी। टेमीअशोवकी उत्तराधिकारिणी उसकी दो बहिनें थीं। वह उनके लिए अपनी सारी शेष संपत्ति छोड़ रहा था, लेकिन पीरोगोवकी जागीर, जहां वह रहता था, पिताजीको इस शर्त पर देना चाहता था कि पिताजी उस जागीरका मूल्य ३ लाख रूबल उन दोनों लड़कियोंको दे दें (पीरोगोव जागीरके संबंधमें यह कहा जाता था कि इसका मूल्य इससे कहीं ज्यादा है, क्योंकि उसमें सोने की खान है)। इसके लिए यह चाल चली गई कि टेमीअशोव पिताजीको एक रसीद देगा,

जिसमें तीन लाख रूबलके लिए पीरोगोव जागीर मेरे पिताको बेची गई दिखाई जायगी। मेरे पिताने अपने हाथमें एक-एक लाख रूबलके तीन प्रनोट लिखकर इस्लेनेव, याजीकोव और ग्लेबोवाको दिये। टेमीअशोवकी मृत्यु होने पर पिताजीको वह जागीर मिलनी थी, जिसके बदलेमें इन्हें तीन लाख रूबल उन दोनों कन्याओंको देने थे। (इस्लेनेव, याजीकोव और ग्लेबोव को पहले ही बतला दिया गया था कि उन्हें उनके नामसे प्रनोट क्यों दिये जा रहे हैं)

शायद मैं सारी योजनाको ठीकसे नहीं बतला सका होऊं, लेकिन इतना मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि मेरे पिताकी मृत्यु के बाद वह जागीर हमें मिली इस्लेनेव. ग्लेबोव और याजीकोवके पास तीन प्रनोट निकले। जब हमारे सरक्षकने उन प्रनोटोंका रुपया दिया तो इस्लेनेव और ग्लेबोवने तो एक-एक लाख रूबल दे दिया, लेकिन याजीकोव सारा रुपया हड़प गया।

इयूनेश्का हमारे साथ रहती थी। वह सीधी-सादी और शात लड़की थी लेकिन वह चतुर लड़की नहीं थी, और बहुत रोनेवाली थी। मुझे याद है कि उसे अक्षर-ज्ञान करानेका काम मुझे सौंपा गया था, क्योंकि मुझे उस वक्त तक फ्रेंच भाषा पढ़ना आ गया था। पहले तो सब ठीक-ठीक चलता रहा (मैं भी पाच सालका था और वह भी) परतु बादमें मैं वह सभवत: उकता उठी और जो शब्द मैं उसे बताता. उसका ठीक-ठीक उच्चारण नहीं करती। मैं उसे विवश करता। वह रोने लगती और उसके साथ-साथ मैं भी रोने लगता और जिस समय घरके लोग हमें लेने आते, उस समय हमारी आखोंमें इतने आसू भरे होते कि हम एक भी शब्द नहीं बोल पाते थे।

उसके बारेमें दूसरी बात मुझे यह याद है कि जब कभी रकाबीमेंसे एक बेर गायब हो जाता और उसके चुरानेवालेका पता न चलता तो फीडर इवानोविच बड़ी गभीर मुद्रा बनाकर और हमारी ओर दृष्टिपात न करते हुए कहता कि बेर खानेमें तो कोई हर्ज नहीं लेकिन, अगर कोई

उसकी गुठली भी निगल गया तो उसकी मृत्यु हो सकती है। बस, ड्यूनेश्का तुरंत भयभीत होकर बोल उठती कि नहीं, उसने गुठली उगल दी है। एक बार उसके फूट-फूट कर रोनेकी अच्छी तरह याद है। मेरा भाई मिटेका (डिमिट्री और वह दोनों एक दूसरेके मुहमें एक पीतलकी जजीर उगलनेका खेल खेल रहे थे। खेलते-खेलते उसने उस जजीरको इतने जोरसे उगला और मेरे भाईने अपना मुह इतना अधिक खोल दिया कि जंजीर उसके गलेसे नीचे उतरकर पेटमे चली गई। उस समय वह नौ-नौ आसू रोई और उस समयतक रोती रही जबतक डाक्टरने आकर हम सबको शाति नही दिलाई।

वह चतुर लड़की नही थी, लेकिन बड़ी सीधी-सादी और अच्छी। लड़की थी और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह अत्यंत पवित्र मनकी थी और हमारे बीच सदा भाई-बहिनका संबध रहा।

* * *

[अपने नौकरोंके संबंधमें टॉल्स्टॉयने लिखा है।]

प्रास्कोव्या ईसेव्नाका काफी ठीक-ठीक वर्णन मैंने बचपनमे नटाल्या सेविश्नाके नामसे किया है। उसके विषयमे मैंने जो कुछ लिखा है, वह उसके जीवनसे लेकर ही लिखा है। प्रास्कोव्या ईसेव्नाका सब आदर करते थे। वह घरका प्रबंध करती थी और हम बचोंका सदूक उसीके छोटे कमरेमें रहता था। उसके सबधमे मुझे सबसे सुखद स्मृति यह है कि उसके छोटेसे कमरेमे बैठे हुए हम पढाईके बाद अथवा बीचमे ही उससे बात करने लगते थे अथवा उसकी बातें सुना करते थे। शायद वह हमारी उस आनदमय सुकुमार और विकासशील अवस्थामे, हमे देखकर प्रसन्न होती थी। 'प्रासकोव्या ईसेव्ना, दादा लड़ाईमे किस प्रकार जाते हैं ? क्या घोड़े पर ?' इस प्रकार उससे बात छेड़नेके लिए कोई उससे पूछ बैठता।

'वह घोड़ेकी पीठपर और पैदल सब तरह लड़ाईमे लड़े, तभी तो वह प्रधान सेनापति बना दिये गए' वह जवाब देती और साथ ही आलमारी-

मेंसे थोड़ी-सी धूप, जिसे वह ओशेकोवकी धूप कहती, निकाल लेती। उसके कहनेसे यही मालूम होता था कि हमारे दादा वह धूप ओशेकोवके घेरेसे लाये थे। वह देवमूर्तिके सामने जलती हुई मोमबत्तीसे एक कागज जलाती और उससे उस धूपको भी जला देती, जिससे बड़ी सुंदर सुगंध निकलती थी।

एक गीले तौलियेसे मुझे पीटकर मेरा अपमान करनेके अलावा (जैसा कि मैंने 'बचपन' में वर्णन किया है) उसने एकबार और मुझे गुस्सा किया था। और कामोंके साथ उसका एक काम यह भी था कि जब आवश्यकता पड़े हमारे एनीमा लगाये। बात उस समयकी है जब मैंने स्त्रियोंके कमरेमें रहना छोड़ दिया था और नीचेकी मंजिलमें थियोडोर ईवानोविचके पास आ गया था। एक दिन सवेरे हम सब बस सोकर उठे ही थे और मेरे बड़े भाइयोंने कपड़े भी पहन लिये थे। मैं जरा पीछे पड़ गया था। मैं अपने सोनेके कपड़े उतार कर पहननेही वाला था कि प्रास्कोव्या ईसेव्ना जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती हुई अपना सारा सामान लेकर आ गई। इस सामानमें एक रबड़की नली थी जो किसी कारण कपड़ेमें लिपटी हुई थी, और उसकी केवल हड्डीकी पीली टोंटी ही दिखाई पड़ती थी, और जैतूनके तेलसे भरी हुई एक रकाबी थी। इस रकाबीमें नलीका मुंह डूबा हुआ था। मुझे देखकर वह यह समझी कि मैं भी उन बच्चोंमें हूं, जिन्हे बुआने एनीमा देनेको कहा है। वास्तवमें वह मेरे भाईको लगाना था, लेकिन मेरा भाई संयोगसे अथवा छलसे अचानक यह बात पहलेसे ही भाप गया। वस्तुतः हम सभी बच्चे प्रास्कोव्यासे एनीमा लगवानेसे बहुत घबराते थे। अतः मेरा भाई शीघ्र ही कपड़े पहनकर सोनेके कमरेके बाहर चला गया था, और मेरे शपथपूर्वक यह कहने पर भी कि मुझे एनीमा नहीं लगाना है, प्रास्कोव्या न मानी और एनीमा लगा ही दिया।

उसकी ईमानदारी और वफादारीके कारण तो मैं उससे प्रेम करता ही था, लेकिन इसलिए और करता था कि वह और बूढ़ी अन्ना इवेनोव्ना ओशकोवके घेरेसे संबंधित मेरे दादाके रहस्यमय जीवनकी प्रतिनिधि थीं।

अन्ना इवेनोव्ना हमारी नौकर नहीं रही थी, लेकिन मैंने उसे एक-दो बार अपने घर पर देखा था। लोग कहते थे कि उसकी आयु १०० वर्षकी है और उसे पूगाशेव याद है। उसकी आखें बहुत काली थीं और एक ही दात बच रहा था। उसका बुढ़ापा हम बच्चों को बहुत ही भयानक मालूम पड़ता था।

छोटी धाय टाशियाना फिलिप्पोव्ना सावले रंगकी छोटे, परन्तु मोटे-मोटे हाथवाली ठिगने कदकी जवान स्त्री थी। वह बूढ़ी धाय ऐनुश्काकी मदद किया करती थी। ऐनुश्काके विषयमें तो मुझे कुछ भी याद नहीं, क्योंकि उस समय मैं बहुत छोटा था। मुझे अपने होने या न होनेका भान उस समय होता था जब कि मैं उसके पास होता था, चूंकि उस समय मैं अपने को देख और समझ नहीं सकता था, इसलिए मैं उसे भी देख और समझ नहीं सकता था; अतः उसके बारेमें मुझे कुछ भी याद नहीं। मैं उस समय इतना छोटा था कि मुझे अपना ही कुछ ज्ञान नहीं था, फिर धाय का कैसे होता?

लेकिन मुझे ड्यूनेश्काकी धाय एवप्रेक्शिया और उसकी गर्दनकी गाठ खूब याद है। हम लोग बारी-बारीसे उसकी गर्दनकी गाठ छूते थे। हमें यह बात बिलकुल नई लगती थी कि हमारी धाय ऐनुश्का सबकी धाय नहीं है और ड्यूनेश्का अपने लिए पीरोगोवसे खास तौरपर धाय लाई है।

धाय टाशियाना फिलिप्पोव्नाकी तो मुझे खूब याद है, क्योंकि आगे चलकर वह मेरी भतीजियोंकी और फिर मेरे सबसे बड़े लड़केकी धाय हुई। वह उन स्नेहशील प्राणियोंमें थी, जो अपने पौत्र-पुत्रोंमें इतना प्रेम करने लगती हैं कि फिर उनके सारे हित उन्हींमें केंद्रित हो जाते हैं। अपने संबंधियोंसे फिर उनका इतना ही नाता रह जाता है कि या तो वे उन्हें फुसलाकर कुछ रुपया ऐंठ लें या उनकी मृत्युके बाद उनकी संपत्तिके अधिकारी हो जायें।

ऐसी स्त्रियोंके भाई पति और लड़के बड़े उड़ाऊ होते हैं। जहांतक

मुझे याद है। दॉशिनाना फिलिपोव्नाका पति और पुत्र, दोनों ऐसे ही थे। इसी मकानमें उसी जगह, जहांपर बैठा-बैठा मैं यह संस्मरण लिख रहा हूं, मैंने उसको बड़े कष्टसे, लेकिन साथ ही शांतिसे मरते देखा है।

उसका भाई निकोलस फिलिपोविच हमारा कोचवान था। जागीरदारोंके अधिकारी लड़कोंके समान हमभी उसे केवल प्यार ही नहीं करते थे, बल्कि बड़े मान और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। वह विशेष मोटे जूते पहिनता था। उसके पास खड़े होने पर अस्तबलकी बू आती थी। उसकी आवाज मधुर और गंभीर थी।

खानसामा वेसिली ट्रूबेटस्कायका उल्लेख करना भी जरूरी है। यह मिलनसार और दयालु व्यक्ति था। उसे बच्चोंसे विशेषकर सर्जीसे बहुत प्रेम था। बादमें सर्जीके यहां वह नौकर हुआ और वहीं उसका देहांत भी हुआ। वह हमें एक बड़े थालमें बिठाकर ऊपर रसोईघरमें ले जाता और फिर नीचे ले आता। इसमें हमें बड़ा आनंद आता और हम उससे कहते—"हमें भी! अब हमारी बारी है।" मुझे उसकी प्रेमभरी तिरछी मुसकान याद है। जब वह हमें गोदमें ले लेता था तो उसका झुर्रियां पड़ा हुआ चेहरा और उसकी गर्दन साफ दिखाई पड़ती थी। मुझे उस वक्तकी याद है जब वह स्कारवाचेव्काको विदा हो रहा था। यह जागीर कुर्स्क प्रांतमें थी और पेट्रोव्स्कीने मेरे पिताको विरासतमें मिली थी। वेसिल ट्रूवेट्स्कायकी विदाई बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हुई थी, जबकि हम बच्चे कुछ दासोंके साथ बड़े कमरेमें 'छोटे स्वल, जाओ' खेल खेल रहे थे।

बड़े दिनके त्यौहारकी कुछ बातें भी कह देनी चाहिए। इन दिनों हमारे घरके सब दास जिनकी संख्या लगभग ३०के थी, बहुरूपियोंके समान भिन्न-भिन्न प्रकारके कपड़े पहनकर बड़े कमरेमें इकट्ठे होते और बहुतसे खेल खेला करते थे। ग्रेगोरी, जो सिर्फ ऐसे ही मौकोंपर हमारे यहां आया करता था बाजा बजाता और सब लोग नाचते थे। इससे हमारा बड़ा मनोविनोद होता था कपड़े वे ही पिछले सालोंके होते थे। कोई मैदान बनता कोई मदारी। कोई दरजीका सा धंधा करता। कुछ तुर्की

आदमी औरतोंका बाना पहिनते, कुछ डाकू और किसान स्त्री-पुरुषों के भेष धरते थे। मुझे याद है कि इन विचित्र पोशाकोंमें कुछ लोग बहुत सुंदर लगते थे। विशेषकर तुर्की लड़की माशा तो बहुत ही अच्छी लगती थी। कभी-कभी बुआ हमें भी ऐसे ही कपड़े पहना देती थीं। जवाहरात लगी हुई पेटी और सोने-चांदीके कामका एक जाल पहननेके लिए सभी उत्सुक रहते थे। मैं भी अपने होठोंपर कोयलासे काली-काली मूंछें बनाकर अपनेको बड़ा स्वरूपवान समझने लगता था। मैं शीशेमें अपना मुंह काली-काली मूंछें और भौंहे देखता. और यद्यपि मुझे चाहिए था कि मैं एक तुर्ककी भांति गंभीर मुद्रा बना लूं, लेकिन मैं खुशीसे अपनी मुस्कराहट नही रोक पाता था। बहुरूपिये सभी कमरोंमें जाते, और वहां उन्हें सुस्वादु भोजन खानेको मिलता था।

एक बार जब मैं बहुत छोटा था, बड़े दिनकी छुट्टियोंमें इस्लेनेव-परिवारके सब लोग—इस्लेनेव (मेरी पत्नी के दादा), उनके तीन लड़के और तीनों लड़कियां स्वांग भरकर हमारे यहां आये। उन्होंने आश्चर्यजनक भेष बना रखे थे। उनमें एक शृंगारदान बना हुआ था, दूसरा जूता तीसरा विदूषक और चौथा कुछ और बना हुआ था। वे तीस मील चलकर गांवमें आये और वहां उन्होंने अपना-अपना स्वांग बनाया और फिर हमारे बड़े कमरेमें आये। इस्लेनेव पियानो बजाने बैठ गये, और अपने बनाये हुए गाने बड़े लयसे गाने लगे, जो मुझे अबभी याद हैं। उनकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं।

नये वर्षमें नाच रंग कर,
हम अभिवादन करने आये।
सुख पायेंगे, यदि तुम सबका,
हम कुछ भी मन बहला पाये।

ये सब बातें बड़ी आश्चर्यकारी थीं और शायद बड़े लोग इनसे बहुत प्रसन्न भी होते थे, लेकिन हम बच्चोंका तो घरके दासोंके स्वांगमें ही आनंद आता था।

ये सब उत्सव बड़े दिनसे आरंभ होकर नये सालमें जाकर समाप्त होते थे लेकिन कभी-कभी वे १२ वें दिनकी राततक चलते थे। पर नये सालके बाद थोड़े आदमी आते थे और उत्सव फीके पड़ जाते थे। इसी दिन वेस्ली स्कारवाचेव्स्काके लिए रवाना हुआ। मुझे याद है कि हम लोग अपने बड़े कमरेके धुंधले प्रकाशमें चमड़ेकी गद्दियोंदार कुर्सियों पर एक कोनेमें घेरा-सा बनाकर बैठे हुए 'छोटे रूबल, जाओ' खेल खेल रहे थे। हम लोग एक-दूसरेको रूबल देते जाते थे और गाते जाते थे—'छोटे रूबल जाओ—छोटे रूबल जाओ।' फिर हममेंसे एक लड़का उस रूबलको ढूंढ़ने जाता। मुझे याद है कि एक दास-पुत्री इन पंक्तियोंको बड़े ही सुंदर और मधुर स्वरसे गा रही थी। इसी समय एकाएक दरवाजा खुला और वेस्ली आया। वह अपने सब कपड़े-लत्ते पहने हुए था। उसके हाथमें थाल-वाल भी नहीं था। वह कमरेमेंसे होता हुआ पढ़नेके कमरेमें चला गया। उसी समय मालूम हुआ कि वह कारिंदा बनकर स्कारवाचेव्स्का जा रहा है। मुझे इस बातसे खुशी हुई कि उसकी तरक्की हो गई है। लेकिन साथ ही मुझे दुःख भी हुआ कि वह अब यहां नहीं आवेगा और हमें बिठा बिठाकर ऊपर खोई-घरमें नहीं ले जायगा। वास्तवमें उस समय न तो मैं यह समझ सका, न यह विश्वास ही कर सका कि इतना बड़ा परिवर्तन सम्भव हो सकता है। मैं बहुत अधिक उदास हो गया और 'छोटे रूबल जाओ' पद हृदयको सालने लगा और जब वेस्ली हमारी बुआओंको प्रणामकर लौटा और अपनी मृदुल मुस्कराहटके साथ हमारे पास आकर हमारे कंधोंको चुम्मा लेने लगा, उस समय जीवनमें पहली बार मुझे इस जीवनकी अस्थिरता पर भय लगा और प्रिय वेसिलीके प्रति करुणा और प्रेम उमड़ पड़ा।

लेकिन बादमें जबमैं दुबारा वेसिलीसे अपने भाईके कारिंदेके रूपमें मिला, तब पहलेकी भ्रातृ-भावकी वह पवित्र और मानवी भावना मुझमें नहीं रही थी।

[टॉल्स्टॉयके तीन बड़े भाई थे। उनमें बड़े निकोलस थे, जिनको

घरमे निकोलेका कहकर पुकारते थे और टॉल्स्टॉय सबसे अधिक प्रेम और समान करते थे। इनका टॉल्स्टॉयके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके विषयमे टॉल्स्टॉय लिखते हैं।]

वह बाल्यकालमें बड़े तेज और प्रतिभाशाली थे और बड़े होनेपर उनकी प्रतिभा और भी विकसित हुई। तुर्गनेव उनके विषयमे ठीक ही कहते थे कि उनमे ऐसी कोई कमी नही हैं जो एक अच्छा लेखक बननेके लिए जरूरी है। उनमे एक अच्छे लेखकके कई गुण थे। उनमे कलाकी भावना बड़ी तेज थी। क्या बात किस प्रकार किस स्थान पर लिखी जानी चाहिए, यह भी वह अच्छी तरह जानते थे। उनका व्यंग भी बहुत प्रसन्न करनेवाला और अच्छा होता था। उनकी कल्पना तेज और अनत थी। वह जीवनका उच्च आदर्श रखते थे। इन सबके अतिरिक्त एक विशेष गुण यह था कि उन्हे अहंकार छू भी नही गया था। उनकी कल्पना इतनी तेज थी कि वह घंटों परियों या भूतोंकी कहानिया अथवा श्रीमती रेडक्लिफके ढगकी अन्य मनोरंजक कहानिया बिना रुके हुए सुना सकते थे और उन कहानियोमे इतनी सजीवता और स्वाधीनता होती थी कि उनको सुनते समय आदमी यह भूल जाता था कि वे सची नही हैं बल्कि काल्पनिक हैं। जिस समय वह कहानी सुना या पढ़ रहे न होते (वह पढ़ते बहुत थे) उस समय चित्र बनाया करते थे। सींग और चढ़ी मूछों सहित शैतानके चित्र बहुत तरहके और बहुतसे काम करते हुए बनाते थे। ये चित्र भी एकदम काल्पनिक होते थे।

जिस समय मेरे भाई डिमिट्री ६ सालके और सर्जी ७ वर्षके थे, उस समय निकोलसने ही सबसे यह कहा था कि उन्हे एक ऐसा मत्र मालूम है, जिसे यदि बता दिया जाये तो ससारमे कोई भी दुःखी न रहे, कोई बीमारी न हो, किसीको कोई कष्ट न हो, कोई आदमी किसीसे नाराज न हो, सब एक-दूसरेसे प्रेम करें और परस्पर धर्म-भाई बन जाय। यही नहीं, हमने तो धर्म-भाईका एक खेल खेलना भी आरभ किया, जिसमे हम सब कुर्सियोंके नीचे बैठ जाते और दुशालोंका पर्दा डालकर अपनेको छुपा

लेते, एक दूसरेसे सटकर और लिपटकर बैठ जाते अथवा अंधेरेमे एक दूसरेके पैरोंपर पड़ जाते ।

हमे यह धर्म-भ्रातृत्व तो बतला दिया गया, किंतु असली मंत्र नही बतलाया गया जिससे कि हर एक मनुष्यकी पीड़ाएं और दुःख मिट जाते और वे एक दूसरेसे लड़ना-झगड़ना और गुस्सा होना बंद कर देते और अनंत आनंद अनुभव करते । उन्होंने कहा कि मैंने वह मंत्र एक हरी लड़की पर लिखकर उसे एक खड्डके किनारे एक सड़कके पास गाड़ दिया है । और चूं कि मृत्युके बाद मुझे तो कहीं-न-कहीं दफनाया ही जाता, अतः मैंने वह इच्छा प्रकट की कि मेरी मृत्युके बाद मुझे निकोलेककी स्मृतिमे उसी स्थान पर, जहां कि वह लकड़ी गाड़ी गई थी, दफनाया जाय । उस लकड़ीके अतिरिक्त वह हमे फेनकेरोनीव पहाड़ीपर भी ले जानेके लिए कहते थे परंतु इस शर्तपर कि हम एक कोनेपर खड़े हो और सफेद रीछ-का विचार भी मनमे न आने दें । मुझे याद है कि मैं अधिकतर एक कोनेमे खड़ा रहता और इस बातका प्रयत्न करता कि मुझे सफेद रीछका ध्यान न आये । परंतु उसका ध्यान आये बिना न रहता । दूसरी शर्त यह थी कि फर्शपर रखे तख्तोंकी दरार पर बिना थर्राये या बिना कांपे चलना पड़ेगा । तीसरी शर्त यह थी कि एक साल तक जीवित या मृत या पका हुआ खरगोश न देखो । इसके साथ-साथ यह भी शपथ लेनी पड़ती थी कि हम यह भेद किसीको न बतलायेंगे । जो कोई भी आदमी निकोलसकी इन शर्तोंको तथा इनके अतिरिक्त उन शर्तोंको, जो बादमे वह बतावे, पालन करे, तो उसकी एक इच्छा, चाहे वह कुछ भी हो, अवश्य पूर्ण हो जायगी ।

[अपने अन्य भाइयोंके विषयमे टॉल्स्टॉय लिखते हैं ।]

डिमिट्री मेरे साथी थे । निकोलसका तो मैं संमान करता था, परंतु सर्जेको देखकर मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता था । मैं उनका अनु-सरण करता, उनसे प्रेम करता और यही कामना किया करता था कि मैं बिलकुल उन-जैसा हो जाऊं । उनकी सुंदरता, मधुर स्वर (वह सदा गाने

रहते थे), उनकी चित्रकला, उनकी चपलता, प्रफुल्लता और विशेषकर उनके स्वाभाविक आत्माभिमानको देखकर मैं आनंदसे फूल उठता था। मुझे अपना बड़ा खयाल रहता था और मैं सदा इस बातका, चाहे इसमें मेरी गलती हो या न हो, ध्यान रखता था कि दूसरे लोग मेरे विषयमें क्या खयाल रखते हैं। इसी कारण मेरे जीवनका आनंद मिट जाता था और संभवत: इसीलिए मैं दूसरे आदमियोंमें इससे विपरीत गुण अर्थात् स्वाभाविक आत्मश्लाघा देखना पसंद करता था। इसीलिए मैं सर्जोसे प्रेम करता था। लेकिन उस भावनाको बतलानेके लिए 'प्रेम' बिलकुल ठीक शब्द नहीं है। मैं निकोलससे प्रेम करता था लेकिन सर्जोको देखकर तो मैं अपनेको भूल-सा जाता था, मानो मैं अपनेसे कोई भिन्न और अबूझ वस्तु पाकर मंत्र-मुग्ध हो गया हूं। उनका जीवन वास्तवमें मनुष्यका जीवन था— वह बहुत सुंदर परंतु मेरे लिये अगम्य, रहस्यपूर्ण और इसी कारण बहुत आकर्षक था।

अभी थोड़े दिन हुए[1] उनकी मृत्यु हो गई। अपनी आखिरी बीमारीमें और अपनी मृत्यु-शैय्या पर भी वह मेरे लिए उतने ही गहन, अगाध और प्रिय थे जैसे कि बचपनके दिनोंमें। बादमें बुढ़ापेमें वह मुझे ज्यादा प्यार करने लगे थे, अपने प्रति मेरे प्रेमका आदर करते थे, मुझपर अभिमान करते थे और विवादास्पद विषयोंमें मेरे मतसे सहमत होनेका प्रयत्न करते, लेकिन हो नहीं सकते थे। वह जैसे थे अततक वैसे ही रहे। वह अद्वितीय, विलक्षण, सुंदर, कुलीन, आत्माभिमानी और इन सबसे अधिक इतने सच्चे और शुद्ध-हृदय व्यक्ति थे कि मैंने आज तक वैसा दूसरा व्यक्ति नहीं देखा। वह जैसे अंदरमें थे वैसेही बाहरसे थे। वह कोई बात छिपाते नहीं थे और जो थे उससे बढ़कर किसीके सामने अपनेको प्रकट न करते थे।

निकोलसके साथ तो मैं रहना, बातें करना और विचार-विनिमय करना पसंद करता था। सर्जोका मैं पदानुसरण करना चाहता था। उनका

[1] अगस्त १९०४ में।—सं०

अनुसरण करना मैंने बहुत बचपनसे आरंभ कर दिया था। वह मुर्गियां पालते थे, अतः मैंने भी मुर्गियां रखनी आरंभ करदी। पशु-पक्षियोंके जीवनका अध्ययन करनेका वह मेरा पहला ही अवसर था। मुझे मुर्गियों-की बहुत-सी जातियां, भूरी, चितकबरी और कलगीवाली, अब भी याद हैं। मुझे याद है कि किस प्रकार हमारे बुलाने पर वह दौड़ कर आतीं किस प्रकार हम उन्हें दाना डालते और हम उस डच मुर्गेसे जो उनके साथ दुर्व्यवहार करता था, कितनी घृणा करते थे। सर्जोने ही पहले-पहल मुर्गियोंके बच्चे मंगाये और उन्हे पालना शुरू किया। मैंने तो केवल उनकी नकल करनेकेलिए पाला था। सर्जो एक कागजपर मुर्गे-मुर्गियोंके चित्र बनाते और उनमें बड़े सुंदर रंग भरते। वे मुझे बड़े आश्चर्य-जनक लगते थे। मैं भी यही करता था, लेकिन मेरे चित्र बड़े भद्दे होते थे। (फिर भी मैं इस कलामें लंबी-चौड़ी बातें बनाकर ही अभ्यस्त होनेकी आशा करता था) जब सर्दियोंके दिन खिड़कियोंमें दोहरे किवाड़ लगा दिये गये, तब सर्जो ने मुर्गियोंको खाना देनेका एक नया उपाय खोज निकाला। वह किवाड़ोंकी चाबियों के छेदमेंसे सफेद और काली रोटी-के लंबे-लंबे टुकड़े बनाकर उन्हें दिया करते। मैं भी यही करता था।

मेरे बाल-मस्तिष्क पर एक मामूली-सी घटनाने बड़ा प्रभाव डाला। मुझे वह घटना इतनी अच्छी तरह याद है, मानों वह अभी घटी हो। टेमीअशोव हम बच्चोंके कमरेमें बैठा हुआ फीडर ईवानोविचके साथ बात-चीत कर रहा था। न जाने कैसे उपवासकी बात चल पड़ी और अच्छे-स्वभाव वाले टेमीअशोवने सीधे-सादे भावसे कहा—"मेरे पास एक रसोइया था, जो व्रतके दिन भी मांस खाता था। मैंने उसे फौजमें भेज दिया।" मुझे यह घटना अब इसलिए याद है कि उस समय मुझे यह बात एकदम अजीब-सी मालूम पड़ी और मेरी समझमें जरा भी नहीं आई।

एक घटना और है और वह पेरोवस्कीकी जागीरके[१] उत्तराधिकारके

१ इस जागीरमें कुर्स्क प्रांतके स्कारदावेस्का और नेरच नामक दो जागीरें थीं।

संबधमे थी। पेरोवस्कोकी जागीरका एक भूतपूर्व दास इल्या मेट्रोफेनिच था। वह एक लबा तथा बूढ़ा आदमी था। उसके बाल सफेद हो गये थे। वह पक्का शराबी और अपने समयके सारे हथकंडोमें उस्ताद था। उसकी सहायतासे इस जागीरके उत्तराधिकारके संबधमे जो मुकदमा चला था वह जीत लिया गया और नेरुचसे भरी हुई गाड़ियो एवं घोड़ोंके झुड-के-झुड आये, जिनकी मुझे अब भी याद है। इल्याने इस जागीरको दिलानेमे बहुत काम किया था, अतः उसके उपलक्षमे मृत्यु-पर्यंत यास्नाया पोल्यानामे रहनेका उसका प्रबंध कर दिया गया।

मेरे बहनोई वेलेरियनके चाचा प्रसिद्ध 'अमरीकन' थियोडोर टॉल्स्टॉय हमारे यहा आये थे, इसको मुझे अच्छी तरह याद है। वे एक घोड़ा-गाड़ीमे बैठकर आये थे, वे सीधे पिताजीके पढनेके कमरेमें पहुंचे और बोले, मेरे लिए खास तरह की सूखी फ्रासीसी रोटी मंगाइये। वह उसे छोड़कर दूसरी रोटी खाते ही न थे। मेरे भाई सर्जीके दातोमे बड़ा जोरका दर्द हो रहा था। थियोडोरने पूछा कि सर्जीको क्या हुआ? और जब उन्हे मालूम हुआ कि उसके दातोमे दर्द हो रहा है, तब उन्होंने कहा, अच्छा, मैं अभी जादूसे इसे बंद किये देता हूँ। वह पिताजीके पढनेके कमरेमे गये और भीतरसे दरवाजा बद कर लिया। थोड़ी देर बाद वह मलमलके दो रूमाल, जिनके किनारे पर कुछ फूल-पत्तिया कढी हुई थी, हाथमे लेकर आये। उन्होंने दोनो रूमाल हमारी बुआको देते हुए कहा—'यह रूमाल बाधते ही दर्द मिट जायगा। और यह रूमाल लगते ही उसे नींद आ जायगी।' बुआने वे रूमाल ले लिये और उन्हे उसी प्रकार रख दिया। हमारे मनमे यही खयाल बना रहा कि उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही हुआ।

उनका हजामत बना हुआ कठोर, रूखा और दमकता हुआ सुदर मुख मुंहके कोनोतक कटी हुई कलम और घुघराले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते थे। इस असाधारण, अपराधी और आकर्षक व्यक्तिके संबधमे बहुत-सी बातें ऐसी है, जिन्हे मैं कहना पसद न करूंगा।

राजकुमार वोल्कोंस्कीके भी अपने यहां आनेकी मुझे याद है। वह माताजीके कोई मौसेरे या फुफेरे भाई थे। वह मेरा दुलार करना चाहते थे। उन्होंने मुझे अपने घुटने पर बिठा लिया, और जैसा कि बहुधा होता है, मुझे गोदीमें बिठाये-बिठाये घरके बड़े आदमियोंसे बातें करनेमें मग्न रहे। मैं उनकी गोदीसे उठनेका प्रयत्न करता तो वह मुझे और कसकर थाम लेते। कुछ मिनटों तक यही चलता रहा। लेकिन इस तरह कैद हो जाने, आजादी छिन जाने और ऊपरसे बल-प्रयोगसे मैं इतना उकता उठा और मुझे इतना क्रोध आया कि मैं एकाएक जोरोंसे उनके चंगुलसे छूटनेकी कोशिश करने, चिल्लाने और उन्हें मारने भी लगा।

यास्नाया पोल्यानासे दो मील दूर एक गांव ग्रुमंड है (उसका यह नाम मेरे दादाने रखा था, वह आर्केंजलके जहां पर ग्रुमंड नामका एक टापू था, गवर्नर रह चुके थे।) [ग्रुमंडके संबंधमें टाल्स्टॉय लिखते हैं कि वहां पर पशुओंके लिए एक सुंदर बाड़ा और जब-तब रहनेके लिए एक बहुत सुंदर छोटा-सा मकान बना हुआ था। टाल्स्टॉय परिवारके बच्चोंको यहां दिन बिताना बहुत अच्छा लगता था क्योंकि यहां पर पानीका एक बड़ा सुंदर सोता और मछलियोंसे भरी हुई एक छोटी-सी तलैया थी। वह आगे लिखते हैं:]

"लेकिन एक बार एक घटनाने, जिसके कारण हम सभी—कम-से-कम मैं और डिमिट्री—करुणार्द्र हो रो पड़े और हमारा सारा आनंद जाता रहा। बात यह हुई कि हम सब अपनी गाड़ीमें बैठे घर लौट रहे थे। पीडर इवानोविचकी भूरे रंग सुंदर आंखों और नरम घुंघराले बाल वाली शिकारी कुतिया वर्था, हमारी गाड़ीके आगे-पीछे भाग रही थी। जैसेही हम ग्रुमंड बागसे आगे बढ़े, एक किसानके कुत्तेने उस पर हमला किया। वर्था गाड़ीकी ओर भागी। पीडर इवानोविच गाड़ी न रोक सके और वह उसके एक पंजे परसे निकल गई। जब हम घर आये और वर्था भी हमारे पीछे-पीछे तीन पैरोंसे लंगड़ाती-लंगड़ाती आई तो पीडर इवानोविच और हमारे खिदमतगार निकिटा डिमिट्रीने जो एक शिकारी

भी था) उसका पैर देखकर कहा कि उसका पैर टूट गया है और अब यह आगे कभी शिकारके काम नहीं आ सकती। मैं ऊपर अपने छोटे कमरे मे इनकी बातें सुन रहा था। जिस समय फीडर इवानोविचने यह कहा कि 'अब यह किसी कामकी नहीं रही, इसका तो एकमात्र उपाय यही है कि इसे मार दिया जाय' तो मैं अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सका।

बेचारी कुतिया कष्टमे थी, बीमार थी और इसके लिए उसे मौतके घाट उतारा जा रहा था। मेरे मनमे यह भावना उठी कि नहीं, यह बात गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए। परंतु फीडर इवानोविचने जिस ढगमे यह बात कही और निकिटा डिमिट्रीने जिस ढगसे उसका समर्थन किया उससे मालूम होता था कि वे अपना निर्णय पूरा करने पर तुले हुए हैं और जैसे कि कुजमा[1] के कोड़े लगानेके लिए ले जाते समय तथा

१ इस घटना के विषय मे टॉलस्टॉय लिखते हैं:—

हम सब बच्चे घूमकर अपने शिक्षक फीडर इवानोविचके साथ वापस लौट रहे थे। उसी समय खलिहानके पास हमें हमारा मोटा कोचवान ऐंड्र मिला। उसके साथ हमारा सहायक कोचवान कुजमा भी था, जिसकी आंखें भेड-सी थीं और इसी कारण वह भेडा कुजमा कहलाता था। कुजमा बहुत उदास था। उसका विवाह हो चुका था और उसकी जवानी भी ढल चुकी थी। हममेंसे एकने ऐंड्रू से पूछा कि वह कहां जारहा है। उसने शांति-से उत्तर दिया कि वह कुजमाको खलिहान पर कोडे लगानेकेलिए ले जारहा है मुंह लटकाए हुए कुजमाकी मूर्ति और इन शब्दोंने मेरे मनमें जो भय पैदा कर दिया उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। शामको मैंने यह बात अपनी बुआ टाशियाना ऐलेक्जेंड्रोव्नासे कही। उन्हें शारीरिक दंड देनेमें बड़ी घृणा थी और जहा कहीं उनका वश चलता, वह कभी दासोंको या हमको शारीरिक दंड न देती थी। मेरे कहने पर उनको बहुत बुरा लगा और उन्होंने कहा, "तूने उसे रोका क्यों नहीं ?" उसके इन शब्दोंसे मुझे और भी दुःख हुआ। 'मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि हम ऐसे

टेमीश्रशोवने जब बतलाया था कि किस प्रकार उसने अपने रसोइयाको व्रतके दिन मास खाने पर फौज मे भेज दिया था, उस समय मैंने अनुभव किया था कि यह गलत था, परंतु अपनेसे बड़े लोगोंके प्रति आदरकी भावनाके कारण मुझे उनके हर निश्चयके सामने अपनी भावना पर विश्वास करनेकी हिम्मत नहीं पड़ी, वैसे ही इस बार भी नहीं पड़ी।

मैं अपने बाल्य-कालकी सभी सुखद स्मृतियोंका वर्णन नहीं करूंगा क्योंकि उनका अंत नहीं है और दूसरे वे मुझे प्रिय और महत्त्वपूर्ण लगती हैं, पर मैं उन्हें अन्य लोगोंके सामने महत्त्वपूर्ण नही सिद्ध कर सकता।

मैं अपने बाल्य-जीवनके एक आध्यात्मिक अनुभवके विषयमे कुछ कहूंगा। यह अनुभव मेरे बचपनमे मुझे अनेक बार हुआ और मैं समझता हू कि वह बादके बहुतसे अनुभवोंसे कही बढ़कर है। वह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह प्रेमका पहला अनुभव था, किसी व्यक्तिके प्रति-प्रेम नहीं, बल्कि प्रेमके प्रति प्रेम, ईश्वरके प्रति प्रेम-इस प्रेमका अनुभव बादके जीवनमें यदा-कदा ही होता था, लेकिन होता अवश्य था, और शायद इस कारण होता था (इसके लिए ईश्वरका धन्यवाद है) कि उसका बीज बचपनमे ही बो गया था। इसका अनुभव इस प्रकार होता था। हम, विशेपकर मैं, डिमित्री और लड़कियां कुर्सियोंके नीचे यथा-संभव एक-दूसरेसे सटकर बैठ जाते। इन कुर्सियोंके चारो ओर शाल लपेट दिया जाता और ऊपर गद्दिया ढक दी जाती। हम एक-दूसरेसे कहते कि हम सब भाई-भाई हैं, और उस समय एक-दूसरेके प्रति एक विचित्र प्रेम-भावका अनुभव करते। कभी यह प्रेम-भावना बढ़ कर लाड़-दुलार तक पहुच जाती और हम एक-दूसरेको थपथपाने लगते या आलिंगन करते, पर ऐसा बहुत कम होता था और हम सब अनुभव करते थे कि ऐसा उचित नहीं है और अपनेको रोक लेते थे।

मामलोंमें पड सकते हैं। पर वास्तवमें हम ऐसे मामलोंमें बोल सकते थे। परंतु अबतो बात हाथसे निकल चुकी थी और वह भयानक कांट किया जा चुका था।

कभी-कभी हम उन कुर्सियोंके नीचे बैठे-बैठे ही बातचीत किया करते थे कि हम किस-किससे कितना प्रेम करते हैं, सुखी और प्रसन्न जीवन बितानेके लिए किन-किन बातोंकी आवश्यकता है, हमें किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना और किस प्रकार सबके प्रति प्रेम-भाव रखना चाहिए।

मुझे याद है कि इसका आरंभ एक यात्राके खेलसे होता था। हम लोग कुर्सियों पर बैठ जाते और अन्य कुर्सियोंको खींचकर एक गाड़ी बनाते। हम सब लोग बैठकर यात्रीका खेल खेलते और फिर धर्म-भाईका खेल खेलने लगते। इसमें हमारे साथ और लोग भी शामिल हो जाते। यह खेल बहुत ही अच्छा था और ईश्वरको धन्यवाद है कि हम यह खेल खेलते थे। हम इसे खेल कहते थे, लेकिन वास्तवमें इसे छोड़कर संसारकी प्रत्येक बात एक खेल ही है।

[जर्मन भाषामें टाल्स्टायकी जीवनीके लेखक लौवेनफेल्डके यह पूछने पर कि यह कैसे हुआ कि आपको ज्ञानार्जनकी इतनी पिपासा थी, फिर भी आपने उपाधि लेनेसे पहले ही विश्वविद्यालय छोड़ दिया, टाल्स्टाय ने लिखा है :]

'हां, मेरी ज्ञानपिपासा ही मेरे यूनिवर्सिटी छोड़नेका कारण थी। कजानमें हमारे शिक्षक जिन विषयोंपर जो-जो व्याख्यान देते थे, वे मुझे जरा भी रोचक नहीं लगते थे। पहले तो मैंने एक सालतक पूर्वी भाषाओंका अध्ययन किया, परंतु उसमें मैंने बहुत थोड़ी प्रगति की। मैं हर एक चीजमें जी-जानसे लग पड़ता था और एक ही विषय पर एक साथ बहुतेरी पुस्तकें पढ़ डालता था। लेकिन एक साथ मैं एक ही विषयकी पुस्तकें पढ़ता था। जब मैं एक विषयको उठाता तो फिर उसको बीचमें छोड़ता न था और उसपर वे सब पुस्तकें पढ़ता था जो उस विषय पर प्रकाश डालती थीं। कजानमें मेरा यही हाल था।'

[एक दूसरे अवसर पर टाल्स्टायने कहा :]

विश्वविद्यालय छोड़नेके विशेषकर दो कारण थे। पहला तो यह कि मेरे भाई सर्गी अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुके थे और उन्होंने विद्यालय छोड़

दिया था। दूसरे केथोराइनकी नकाज और 'ऐस्प्रिट द लुईस' पर मैंने जो लिखा, उसने मेरे लिए मानसिक कार्यका एक नवीन क्षेत्र खोल दिया। विद्यालयके कामके कारण मुझे इससे सहायता मिलनी तो दूर, मेरे काममें बाधा भी पड़ती थी।

मेरे भाई डिमिट्री मुझसे एक साल बड़े थे। उनकी आखें बड़ी-बड़ी थीं और उनसे गंभीरता टपकती थी। मुझे यह तो याद नहीं कि बचपनमें वह कैसे थे, लेकिन बादमें मैंने लोगोंके मुंहसे सुना कि बचपनमें वड़े सनकी और अस्थिर थे। यदि उनकी धाय उनकी सार-संभाल ठीक न करती तो वह इस पर उनसे क्रोधित होते और चिल्लाते। मैंने यह भी सुना है कि माताजी उनसे बहुत परेशान थीं। वह आयुमें लगभग मेरे बराबर ही थे और हम दोनों साथ-साथ बहुत खेले। यद्यपि मैं उनसे इतना प्रेम नहीं करता था जितना सर्जीसे न इतना आदर ही जितना कि मैं निकोलसका करता था, लेकिन फिर भी हम दोनोंमें मित्रभाव था, और मुझे याद नहीं कि हम दोनों कभी लड़े हों। हो सकता है कि हम कभी लड़े भी हों लेकिन उस लड़ाईकी छाप हमारे दिलमें बिलकुल न रही। मैं उनसे सरल और स्वाभाविक तौरपर प्रेम करता था, जिसका (प्रेमका) न तो मुझे ज्ञान था, और न जिसकी अब स्मृति ही शेष है। मैं यह समझता हूं, और विशेषकर बचपनका यह मेरा अपना अनुभव भी है कि बाल्यकालमें दूसरोंके प्रति प्रेम आत्माकी एक स्वाभाविक स्थिति है, या दूसरे शब्दोंमें एक-दूसरेके बीच एक स्वाभाविक संबंध है, और जिस समय मनुष्यकी ऐसी स्थिति होती है उस समय उसे उस प्रेमका ज्ञान नहीं रहता। उसका ज्ञान तो तभी होता है जब मनुष्य प्रेम नहीं करता 'प्रेम नहीं करता' नहीं, बल्कि जब वह किसीसे डरने लगता है। (मैं भिखारियोंसे या वोल्कोंस्कीसे जो मुझे चुटकी लिया करता था इसी प्रकार डरता था लेकिन मैं समझता हूं कि इसके अतिरिक्त न किसीसे नहीं डरता था), अथवा जब कोई आदमी किसी एक आदमीसे ही विशेष प्रेम करने लगता है, जिस प्रकार कि मैं अपनी बुआ तातियाना

ऐलेक्जेड्रवोनासे या अपने भाई सर्जो और निकोलससे. वेसिली, थाय ईसेव्ना और पेशेकासे प्रेम करता था।

डिमिटीके वचपनके सबधमे सिवाय इसके कि वह बड़े प्रसन्न-चित्त रहते थे, मुझे कुछ भी याद नहीं। सन् १८४०मे, जब उनकी आयु १३ वर्षकी थी, हम दोनो कजान विश्वविद्यालयमे गये, और उस समय मुझे उनकी विशेषताए पहले-पहल मालूम हुई और उनका मुझ पर प्रभाव पड़ा। उसके पहले मै उनके विषयमे केवल इतना जानता था कि वह उस प्रकार प्रेममे नहीं पड़ते जिस तरह मै और सर्जो, और न नाच-रग और सैनिक-प्रदर्शन ही पसद करते थे। वह पढते बहुत थे। पोलोंस्की नामके एक अडर-ग्रेजुएट शिक्षक हमे पढ़ाया करते थे। हम भाइयो के विषयमे उन्होंने अपनी राय यो प्रकट की थी : 'सर्जो पढ़ना चाहता है और पढ भी सकता है, डिमिट्री चाहता तो है, लेकिन पढ नही सकता (लेकिन यह ठीक नहीं था) और लियो टाल्स्टाय न तो चाहता ही है और न पढ सकता है (हा, मेरे विषय मे यह बिलकुल ठीक था।)'[1]

इस प्रकार डिमिट्रीके विषयमे मेरी स्मृति कजानसे आरभ होती है। वहा हर बातमे सर्जोका अनुकरण करते-करते मै बिगड़ने लगा। उस समय और उसके पहले भी मुझे अपने बनाव-सिगारकी चिता रहने लगी। मै मै चिकना-चुपडा दिखाई पड़नेका प्रयत्न करने लगा। डिमिट्रीको ये बाते छू भी न गई थी। मेरा तो खयाल है कि वह जवानीके अवगुणोसे सदा दूर रहे। वह सदा गंभीर, विचारवान, शुद्ध और दृढ रहते थे, यद्यपि उन्हे क्रोध जल्दी आ जाता था। वे जो काम करते थे उसे सारी शक्ति लगाकर करते थे। जब उन्होने पीतलकी जजीर निगल ली थी, उस समय भी जहा-तक मुझे याद है, एक बार जब मैने एक बेरकी गुठली, जो मुझे 'बुआ'ने दी थी, निगल ली थी तो मुझे कितना डर लगा था, और मैने किस गंभीरताने वह दुर्घटना अपनी माता से कही थी, मानो मैं मर ही रहा होऊ।

1 लेकिन दूसरे स्थानपर टॉल्स्टॉयने इससे बिलकुल उल्टी बात कही और निकोलसको भी लपेट लिया है।—सं०

एक बार हम सब बच्चे एक पहाड़ी परसे बर्फ पर फिसलनेवाली लकड़ीकी चट्टियोंपर फिसल रहे थे। इतनेमें एक आदमी स्लेज-गाड़ीमें बैठा हुआ सड़क-सड़क जानेके बजाय पहाड़ी पर चढ़ आया। शायद सर्जी और एक ग्रामीण बालक उस समय फिसलकर नीचे आ रहे थे। वे अपनेको रोक न सके और घोड़ेके पैरोंके पास जाकर गिर पड़े। उन्हें चोट नहीं लगी और स्लेज-गाड़ी पहाड़ी की ओर चली गई। हम सब तो यही देखनेमें दत्त-चित्त थे कि किस प्रकार वे घोड़ेके पैरोंके नीचेसे बचकर निकले, किस प्रकार घोड़ा भड़ककर एक ओरको हटा, आदि आदि। लेकिन डिमिट्री, जिनकी आयु उस समय केवल ६ वर्षकी थी, उठकर सीधे उस आदमीके पास गये और उसे फटकारने लगे। उन्होंने उससे यह कहा कि ऐसी जगह गाड़ी चलाने पर, जहां कि कोई सड़क नहीं है तुम अस्तबलमें भेजे जाने योग्य हो जिसका उस समय यह अर्थ था कि तुम्हारी पिटाई कोड़ोंसे होनी चाहिए, तो मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ और कुछ बुरा भी लगा।

उनकी विशेषताएं तो पहले-पहल कजानमें मालूम हुई। वह जी लगाकर बहुत अच्छी तरह पढ़ते और बड़ी सुगमतासे कविता भी कर लेते थे। उन्होंने शिलर की कविता 'डर जुंगलिंग एम बाशे'का बड़ा सुंदर अनुवाद किया था। लेकिन कविताके धंधेमें उन्होंने कभी अपनेको नहीं लगाया। एक दिन वह बहुत ज्यादा मजाक करने लगे। इससे लड़कियोंका बड़ा मनोरंजन हुआ। इसपर मुझे उनसे कुछ ईर्ष्या हुई। मैंने सोचा कि लड़कियां इसलिए प्रसन्न हैं कि वह सदा गंभीर रहते हैं, और उसी तरह उनकी नकलमें गंभीर बननेकी मेरी भी इच्छा हुई। मेरी बुआ (पेलागेया इलीनिश्ना) को सनक हुई कि हमारी सेवाके लिए एक-एक दास बालक रखे, जो बादमें हमारा विश्वास-पात्र खिदमतगार हो सके। डिमिट्रीके लिए उन्होंने एक दास वेन्यूशा दिया जो अभी तक जीवित है। डिमिट्री उसके साथ बड़ा बुरा बर्ताव करते और मेरा ख्याल है कि उसे पीटने तक से [illegible] हैं। मैं इस लिए कहता हूं कि मैंने उन्हें कभी मारने-पीटने से

देखा नहीं, लेकिन मुझे याद है कि एक दिन वह वेनयूशाके सामने उसके प्रति किये गये व्यवहारके लिए पश्चात्ताप कर रहे थे और उससे नम्र शब्दोंमें क्षमा माग रहे थे।

मुझे तो यह नहीं मालूम कि किस प्रकार या किसके प्रभावसे वह धार्मिक जीवनकी ओर खिंचे, लेकिन उनका धार्मिक-जीवन विद्यालयमें प्रविष्ट होनेके पहले ही सालमें आरंभ हो गया। धार्मिक जीवनकी ओर प्रवृत्ति होनेके कारण स्वभावतः वह चर्चकी ओर झुके और अपने स्वाभाविक अध्यवसायके साथ धार्मिक-साहित्यका अध्ययन करने लगे। वह बड़ा सादा भोजन करने, गिरजेमें सभी प्रार्थनाओं और उपदेशोंके समय जाते वह अधिकाधिक कठोर जीवन बिताने लगे।

डिमिट्रीमें एक असाधारण गुण था और मुझे विश्वास है कि वह गुण मेरी माता और मेरे बड़े भाई निकोलसमें भी था, लेकिन मुझमें बिलकुल नहीं था। वे इस बातसे पूर्णतया उदासीन रहते कि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते हैं। बुढ़ापे तकमें मुझे चिंता रहती है कि दूसरे लोग मेरे बारेमें क्या खयाल करते हैं, लेकिन डिमिट्री इस चितासे बिलकुल मुक्त थे। जब कोई आदमी किसीकी प्रशंसा करता है तो अनिच्छा होते हुए भी वह मुस्करा देता है। लेकिन मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके मुखपर इस तरहकी मुस्कराहट देखी हो। मुझे तो उनकी बड़ी-बड़ी शांत, गंभीर और विचारशील आखें ही याद हैं। केवल कजान विद्यालयमें रहनेके समय ही हमने उनकी ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया और वह भी इसलिए कि उस समयतक हम बाहरी बनाव-सवारपर ज्यादा जोर देने लगे थे और वह मैले-कुचैले और गंदे रहते थे और इस कारण हम सदा उनकी निंदा किया करते थे। वह न तो नाच देखने जाते और न नाच सीखना ही चाहते थे। एक विद्यार्थी के नाते वह अन्य विद्यार्थियोंकी गोष्ठीमें भी नहीं जाते थे। केवल एक कोट पहनते और गलेमें पतला-सा तंग रूमाल बांधते थे। युवावस्थामें ही उनको मु[illegible] बनानेकी आदत पड़ गई थी। वह हर समय अपना

सिर घुमाते रहते थे मानो तंग न मालूम अपना पिंड छुड़ानेकी कोशिश कर रहे हों।

जिस समय उन्होंने उपासना (कम्युनियन) के निमित्त पहला उपवास किया, उस समय उनकी विशेषताएं पहली बार मालूम हुईं। उन्होंने यह उपवास विश्वविद्यालयके फैरानेबुल गिर्जेमें न करके जेलके गिर्जेमें किया। उस समय हम जेलके ठीक सामने गोटालोविकेमकानमें रहते थे। इस गिर्जेमें एक बड़े धार्मिक और कट्टर पादरी थे। यह एक असाधारण बात थी क्योंकि उस समय पादरी न तो धर्मिष्ठ होते थे और न धर्माचरणके नियमोंका कड़ाईके साथ पालन करते थे। यह पादरी महोदय धार्मिक सप्ताहमें इंजील तथा ईसामसीह व उनके अनुयायियोंके ग्रंथोंका—जिनको पढ़नेका यद्यपि शास्त्रोंमें विधान है, परन्तु लोग जिन सब ग्रंथोंको कम ही पढ़ते थे—आद्योपान्त पाठ करते थे। इसी कारण इस गिर्जेके उपदेश बड़ी देरमें समाप्त हुआ करते थे। डिमिट्री इन सब कथाओं और उपदेशोंको खड़े होकर सुना करते थे। उन्होंने पादरीसे भी जान-पहचान करली थी। गिर्जाघर इस प्रकार बना हुआ था कि गिर्जाघर और उस स्थानके बीचमें जहां कैदी खड़े होकर उपदेश सुना करते थे, एक शीशेकी दीवार थी और उसमें एक छोटा-सा दरवाजा था। एक बार एक कैदीने उस दरवाजेके भीतरसे एक छोटे पादरीको कुछ देना चाहा। वह था तो मोमबत्ती थी

मिलती थीं, सजाकर रखनेका शौक था लेकिन डिमिट्रीके पास ऐसी कोई चीज नहीं थीं। उन्होंने पिताजीसे केवल एक ही वस्तु ली थी और वह उनका रंग-बिरंगे पत्थरोंका संग्रह था। उन्होंने उनको सजाकर और उनपर लेबिल लगाकर एक शीशेके ढक्कन वाले बक्समें रख छोड़ा था। चूंकि हम सब भाई और हमारी बुआ डिमिट्रीको इन निम्न कोटिकी रुचियों और उनके निम्न श्रेणीके परिचितोंके कारण उन्हें कुछ घृणाकी दृष्टिसे देखती थी, अत: हमारे दंभी मित्र भी उनके प्रति यही रुख रखते थे। उनमेसे एक 'ऐस' था। वह एक इंजीनियर था और बड़ी क्षुद्र प्रकृतिका था। उसे हमने मित्र नहीं बनाया था, मगर वह स्वयं हमारे पीछे पड़ा रहा और हमारा मित्र बन गया था। एक दिन उसने डिमिट्रीके कमरेसे निकलते हुए, उनके रंग-बिरंगे पत्थरोंके संग्रहको देखकर उनसे एक प्रश्न कर दिया। 'ऐस' का व्यवहार असहानुभूतिपूर्ण और अस्वाभाविक था। डिमिट्रीने उसके प्रश्नका अनिच्छासे उत्तर दिया। इसपर 'ऐस'ने उस बक्सको सरकाकर जोरसे हिला दिया। डिमिट्रीने कहा—'उसे छोड़दो।' 'ऐसने उनकी बात न मानी और उनके साथ मजाक किया। और यदि मुझे ठीकसे याद है तो उसने उन्हें 'नूह'[1] पुकारा था। डिमिट्रीको इसपर भीषण क्रोध आया और उन्होंने 'ऐस' के मुहपर अपने भारी हाथसे एक थप्पड़ जोरसे मारा। 'ऐस' भागा और डिमिट्री उसके पीछे-पीछे भागे। दोनों भागकर हमारे कमरेकी तरफ आये तो हमने 'ऐस'को अंदर लेकर दरवाजा बंद कर दिया। इसपर डिमिट्रीने कहा कि अच्छा, जब 'ऐस' मेरे कमरेसे होकर वापस जायेगा तब मैं उसे पीटूंगा। मर्जी और मुझे याद पड़ता है, शायद शुवालोव डिमिट्रीको मनानेके लिए भेजे गये कि वह 'ऐस' को चला जाने दे, परन्तु वह झाड़ू लेकर बैठ गये और बोले कि मैं उसे अच्छी तरह पीटूंगा। मुझे नहीं मालूम कि यदि 'ऐस' उनके कमरेमेंसे जाता तो वह क्या करते, लेकिन उसने हमसे किसी दूसरे रास्तेसे निकालनेकी प्रार्थनाकी और हमने उसे ऊपर छतवाले कमरेसे किसी प्रकार रेंग-रागकर निकाला।

१ 'नूह' संबोधनका उल्लेख 'मेरी मुक्तिकी कहानीके पृ० ४ पर है।

टॉल्स्टॉयने एक बार एक सिपाहीकी पैरवीकी थी जिस पर अपने अफसर पर हाथ उठानेके अभियोगमें फासीकी सजा देनेकेलिए मुकदमा चल रहा था। टाल्स्टायकी जीवनीके लेखक बीरूकोवने टॉल्स्टॉयसे इस घटनाका विस्तृत वर्णन मागा। उस पर टॉल्स्टॉयने उन्हें निम्न पत्र लिखा:—

प्रिय मित्र पावेल इवानोविच,

तुम्हारी इच्छा पूरी करने और तुमने अपनी पुस्तकमे जिस सिपाहीकी पैरवी करने का उल्लेख किया है उसके सबधमें मेरे क्या विचार थे इसपर पूरा प्रकाश डालनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता है। भाग्यके उलट-फेरों, सपत्तिका विनाश या प्राप्ति, साहित्यिक-जगतमें सफलता या असफलता, अपने प्रिय-से-प्रिय संबंधियोंकी मृत्यु जैसी अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओंसे भी अधिक उस घटनाका मेरे जीवनपर प्रभाव पड़ा है।

मैं पहले तो यह बतलाऊगा कि यह सब कैसे हुआ, और उसके बाद यह बतलाऊगा कि उस घटनाके समय और कब उसकी स्मृतिने मेरे मनमे क्या-क्या भावनाए और विचार पैदा हुए हैं।

मुझे यह याद नहीं कि उस समय मैं किस खास काम मे लगा हुआ था। शायद आप यह बात मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते होंगे। मुझे तो बस इतना ही याद है कि उस समय मैं एक शात, सतुष्ट और आत्माभिमानसे पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। सन् १८६६ की गर्मियोंमें हमारे पास सैनिक पाठशालाका एक विद्यार्थी ग्रीशा कोलोकोल्टसेव, जो बहरोंको जानता था और मेरी पत्नीका परिचित भी था अचानक हमारे पास आया। मालूम हुआ कि वह सेनाकी एक टुकड़ीमें, जो हमारे पास ने पड़ाव डाले हुई थी, नौकर था। वह प्रसन्न-चित्त और अच्छे स्वभावका लड़का था और उस समय अपने छोटेसे कज्जाक घोड़े पर उछल-उछलकर दौड़ानेमें ही उसका समय बीतता था। अक्सर वह अपने घोड़े पर सवार होकर हमारे पास भी आया करता था।

उसके द्वारा हमारा उसकी टुकड़ीके सेनापति जनरल यू और ए

एम. स्टासयूलेविचसे परिचय हो गया। स्टासयूलेविच या तो पदमें घटा दिया गया था या किसी राजनीतिक मामलेके कारण सैनिककी हैसियतमें काम करनेको भेजा गया था (मुझे ठीक कारण याद नहीं है)। वह प्रसिद्ध सपादक स्टासयूलेवेचिका भाई था। स्टासयूलेविचकी जवानी बीत चुकी थी। जब हमारा परिचय हुआ उसी वक्तके करीब उसकी तरक्की हुई थी, और वह ध्वजावाहक बना दिया गया। वह अपने पुराने साथी यू. .की सेनामें, जोकि अब उसका कर्नल था, आ गया था। यू. और स्टासयूलेविच दोनों अक्सर घोड़ों पर चढकर हमारे पास आया करते थे। कर्नल यू. .हृष्ट-पुष्ट, लाल सुर्ख चेहरे और अच्छे स्वभाववाला कुछ उस प्रकारका अविवाहित व्यक्ति था जैसे कि साधारणतया होते हैं। उच्चपद और ऊंची सामाजिक स्थितिने उसकी मानवी-प्रवृत्तियोंको दबा दिया था। अपने पद और मानको बनाये रखना उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य था। मानवी दृष्टिसे यह कहना कठिन है कि ऐसा आदमी विवेकी या सज्जन है, क्योंकि ऐसे मनुष्यके विषयमें कोई यह नहीं जानता कि यदि वह एक कर्नल या प्रोफेसर या मत्री, या न्यायाधीश या एक पत्रकार न रहकर एक साधारण आदमी रह जाये तो कैसा होगा? यही हाल केवल यू ..का था। वह एक सेनाकी टुकड़ीका कार्यवाहक सेनापति था, लेकिन वह किस प्रकारका मनुष्य था, यह कहना असभव था। मेरा तो यह खयाल है कि वह अपने-आपको भी न जानता होगा और न इसमें उसकी दिलचस्पी ही थी। स्टासयूलेविच इसके विपरीत था। यद्यपि अनेक प्रकारसे, विशेषकर उसके दुर्भाग्य और अपमानोंमें, जो उस-जैसे महत्त्वाकांक्षी और आत्माभिमानी मनुष्यको बड़े दुःखके साथ सहने पड़े, उसका विनाश हो चुका था, परतु वह फिर भी जीवनसे भरा हुआ मनुष्य था। कुछ दिनों बाद वह दिखाई ही नहीं पड़ा। जब उनकी सेना किसी दूसरे स्थान पर चली गई उस समय मैंने सुना कि उसने बिना किसी व्यक्तिगत कारणके विचित्र रीतिसे आत्महत्या कर ली। एक दिन सवेरे उसने एक बहुत भारी फौजी ओवरकोट पहना और उसे

पहनकर नदीमें उतर गया। चूंकि वह तैरना नहीं जानता था, अतः नदीमें डूबकर मर गया।

मुझे याद नहीं कि कोलोकोल्टसेव या स्टासयूलेविच दोनोंमेंसे किसने गर्मीके दिनोंमें एक दिन सवेरे आकर एक घटना सुनाई जो सेनामें एक असाधारण और भयानक बात थी। एक सिपाहीने एक कंपनी कमांडरको मारा था। स्टास्यूलेविच इस विषय पर जरा जोरसे बोल रहा था। उस सिपाहीके भाग्यके फैसले (अर्थात् मृत्यु-दंड) के प्रति उसके हृदयमें सहानुभूति थी। उसने मुझे फौजी पंचायतके सामने उस सिपाहीकी वकालत करनेकी सिफारिश की।

यहांपर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मुझे इस बातसे कि एक आदमी जज बनकर किसीको मौतकी सजा दे और अन्य आदमी (अर्थात् वधिक) उसे मौतके घाट उतारे केवल एक धक्का ही नहीं लगता था, बल्कि सब कुछ असंभव और कृत्रिम लगता था। ऐसे भीषण कृत्यके संबंधमें यह जानते हुए भी कि वह पहले हो चुका है, और अब भी प्रतिदिन हो रहा है, उस पर विश्वास नहीं होता था। मृत्यु-दंड दिये जाते हैं, यह मुझे मालूम है, फिर भी वे मुझे एक असंभाव्य कार्य मालूम पड़ते रहे हैं।

यह बात मेरी समझमें आती है कि क्षणिक आवेशमें घृणा और प्रतिहिंसाके वशीभूत हो अथवा मानवी भावनाओंके नाश होनेके कारण एक आदमी अपनी या अपने मित्रकी आत्म-रक्षाके लिए किसीको मार सकता है, अथवा युद्धके समय देश-भक्तिके नशेमें, जिस समय मनुष्य मरने-मारनेके लिए कटिबद्ध होता है, उस समय वह एक साथ सैकड़ों आदमियोंके संहारमें भाग ले सकता है। लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आदमी अपने ऊपर नियंत्रण रखते हुए, शांतिसे और जान-बूझकर अपने किसी भाईको मारनेकी आवश्यकता स्वीकार कर सकता है और दूसरोंको मानव-स्वभावके सर्वथा विपरीत यह कार्य करनेकी आज्ञा दे सकता है। यह बात मेरी समझमें उस समय भी नहीं आई थी, जब कि मैं सन् १८६६में अरदली जीवन व्यतीत कर रहा था। इसीलिए मैंने

आशा भरे हृदयसे उस सिपाहीकी वकालत करनेका विचित्र निश्चय किया।

मुझे आजेरकी गाँवमें उस स्थान पर जानेकी अच्छी तरह याद है, जहाँ वह कैदी सिपाही रखा गया था (मुझे यह याद नहीं कि वह कोई खास मकान था कि वही मकान था जिसमें वह कांड हुआ था) ईंटोंके एक नीची छतवाले झोपड़ेमें घुसनेपर मैंने एक ठिगनेसे आदमीको देखा। वह लंबा होनेके बजाय हृष्ट-पुष्ट अधिक था, जो कि सिपाहियोंके लिए असाधारण बात थी। उसकी मुखाकृति बड़ी सरल, अपरिवर्तनशील और शांत थी। मुझे यह याद नहीं कि उस समय मेरे साथ दूसरा आदमी कौन था? परंतु जहाँ तक मुझे याद है वह कोलोकोल्टसेव था। जैसे ही हम घुसे वह आदमी फौजी ढंगसे उठ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हारा वकील होना चाहता हूँ, अतः तुम मुझे ठीक-ठीक बता दो कि वह घटना किस प्रकार घटी। उसने बहुत थोड़ी बातें बताईं और मेरे प्रत्येक प्रश्नके उत्तरमें बड़ी उदासीनता और अनिच्छासे यही उत्तर दिया—'हाँ, यही हुआ था।' उसके उत्तरोंसे तो यही निष्कर्ष निकलता था कि वह काम करनेमें सुस्त था और उसका कप्तान बड़ी कड़ाईसे काम लेता था। उसने कहा—'उसने मुझसे बड़ा सख्त काम लिया।'

जैसा कि मैंने समझा कि उसके यह कांड कर बैठनेका कारण यही था कि कुछ महीनेसे कप्तानने,—जो बाहरसे देखनेमें बड़ा शांत था—अपने उकता देनेवाले एकरस स्वरमें एकही कामको, जो उस आदमीने (वह दफ्तरका अर्दली था) अपनी समझमें ठीक-ठीक किया था दुबारा करनेकी आज्ञाएं दे देकर और उन आज्ञाओंका बिना ननु-नचके पालन कराकर, इतना उत्तेजित कर दिया कि वह सब्रकी सारी सीमाओंको लाँघ गया, और उसकी हालत 'मरता क्या न करता' जैसी हो गई। मेरा खयाल है कि उन दोनोंमें परस्पर एक-दूसरेके प्रति कुछ घृणाके भाव भी थे। जैसा कि बहुधा होता है, कंपनी-कमांडर उस अर्दलीके प्रति विरोध-भावना रखने लगा था। उसे यह संदेह हुआ कि यह अर्दली मेरे पोल होनेके

कारण मुझसे घृणा करता है। इससे इसकी यह विरोध-भावना और बढ़ गई। उसने अफसर होनेका लाभ उठाकर उसके हर कामसे असंतोष प्रगट करना और सब कामको, जिसे वह आदमी समझता था कि उसने ठीक किया है, दुबारा करनेके लिए उसे बाध्य करना आरंभ किया। अर्दली भी उसके पोल होने, उसकी योग्यता पर विश्वास न करने और सबसे अधिक उसके ऊंचा अफसर होनेके कारण, जिससे वह उसकी कोई शिकायत न कर सकता था, उससे घृणा करता था। अपनी घृणा व्यक्त करनेका कभी अवसर न मिलनेके कारण वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रही और प्रत्येक डांट-फटकारके साथ बढ़ती गई। अपनी सीमा पर पहुँचकर वह आग उस रूपमें भड़क उठी, जिसका कि उसने स्वप्नमें भी विचार नहीं किया था। तुमने तो मेरी जीवनीमें यह लिखा है कि उस आदमीकी क्रोधाग्नि कप्तानके यह कहनेसे कि वह कोड़ोंसे उसकी खाल उधड़वा देगा, भभक उठी, गलत है। कप्तानने उसे केवल एक कागज वापस दिया और उसने उसे ठीक करने और दुबारा लिखनेके लिए कहा था।

पंच शीघ्र ही नियत कर दिये गये। सरपंच कर्नल यू……थे तथा कोलोकोल्टसेव तथा स्टासयूलेविच सहायक पंच थे। कैदी पंचोंके सामने लाया गया। अदालती शिष्टाचारके बाद, जिनके संबंधमें मुझे कुछ याद नहीं रह गया है, मैंने अपना भाषण पढ़ा, जो मुझे अब केवल विचित्र ही नहीं लगता है, बल्कि लज्जासे भर देता है। पंचोंने भी केवल शिष्टाचारके नाते वे सब निरर्थक बातें, जो मैंने बहुतसे कानूनी ग्रंथोंका हवाला देते कहीं—सुनीं और सब कुछ सुननेके बाद आपसमें सलाह करनेके लिए चले गये। उस पारस्परिक विचार-विनिमयके समय, जैसा कि मुझे बादमें मालूम हुआ, केवल स्टासयूलेविच ही उस मूर्खतापूर्ण कानूनी नजीरसे सहमत था जिसके आधार पर मैंने कहा था कि कैदीको इसलिए छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह अपने करनेके लिए उत्तरदायी नहीं है। दयावान कोलोकोल्टसेव यद्यपि वही करना चाहता था जो मैं चाहता था, परंतु अंतमें वह कर्नल यू……से सहमत हुआ और उसके मतने

मामलेका फैसला कर दिया। सिपाहीको गोलीसे उड़ाकर मारनेकी सजा सुना दी गई। मुकदमा समाप्त होनेके बाद शीघ्र ही मैंने एक सम्भ्रान्त महिला एलेक्जेंड्रा एंड्रोवना टॉलस्टायको, जो मेरी घनिष्ट मित्र थीं और जिनकी राज-दरबारमें पहुँच थी, लिखा कि वह सम्राट एलेक्जेंडर द्वितीयसे शिबूनिन को क्षमा दिला दे। मैंने उन्हें उसे लिखा तो सही, लेकिन चित्त अस्थिर होनेके कारण उस रेजिमेंटका नाम देना भूल गया, जिसमें शिबूनिन था। उसने युद्ध-मंत्री मिलयूटिनको भी लिखा, परन्तु उसने भी यही कहा कि उस रेजिमेंट का नाम दिये बिना सम्राटके सामने आवेदन-पत्र पेश करना असंभव है। उसने मुझे लिखा। मैंने जल्दी-से-जल्दी उत्तर दिया लेकिन रेजिमेंटके कप्तानने भी जल्दी की। अतः जिस समयतक सम्राटके सामने पेश करनेकेलिए आवेदन-पत्र तैयार हुआ उस समयतक उस सिपाहीको गोलीसे उड़ा दिया गया।..

उस सिपाहीकी सफाईमें मैंने जो उल्टा-सीधा, मूर्खतापूर्ण भाषण दिया था और जिसे अब तुमने प्रकाशित किया है, उसे दुबारा पढ़कर मेरी आत्मा ,विद्रोह करती है। दैवी और मानवी कानूनोंके खुले तौरपर तोड़े जानेका उल्लेख करतेहुए, जो मनुष्य अपने भाइयोंके विरुद्ध कर रहा है, मैंने जो कुछ किया था वह यही था कि कुछ मूर्खतापूर्ण शब्द उद्धृत कर दिए थे, जिन्हें मनुष्यने लिखकर कानूनका रूप देदिया है।

वास्तवमें अब मैं उस उल्टी-सीधी और मूर्खतापूर्ण वकालतपर लज्जित हूँ। अगर एक आदमी यह जानता है कि ये आदमी क्या करनेकेलिए इकट्ठा हुए हैं—वे अपनी फौजी वर्दीमें मेजके तीन तरफ बैठे और सोच रहे हैं कि कुछ शब्दोंके कारण, जो कुछ पुस्तकोंमें लिखे हुए हैं और अनेक शीर्षों और उपशीर्षोंके साथ कागज पर छपे हुए हैं, वे अनंत ईश्वरीय कानूनको, जो यद्यपि किसी पुस्तकमें छपा हुआ नहीं है, परन्तु प्रत्येक मानवके हृदय पर अंकित है, तोड़ सकते हैं, तब उनके सामने उन मूर्खतापूर्ण और झूठे शब्दों द्वारा (जिन्हें हम कानून कहते हैं) चतुरता से सिद्ध करनेमें कोई तुक नहीं कि किसी आदमीको मौतसे मुक्त कर

देना संभव है। उन्हे तो सिर्फ यह याद करानेकी जरूरत है कि वे कौन हैं और क्या कर रहे हैं ? हर एक आदमी यह जानता है कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन पवित्र है और किसी दूसरेको किसीका प्राण लेनेका कोई अधिकार नहीं है। इसको सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसे किसी प्रमाण-द्वारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। हा, एक बात आवश्यक, सम्भव और ठीक है। वह यह कि आदमियो—जजों—को उस जड़तासे मुक्त करना जिसके कारण उनमे यह पाशविक और अमानुषिक विचार आता है। यह सिद्ध करना कि एक आदमीको दूसरेको मौतकी सजा नहीं देनी चाहिए, यही सिद्ध करनेके बराबर है कि एक आदमीको वह काम नहीं करना चाहिए, जो उसकी प्रकृतिके प्रतिकूल और अंतरात्माके विरुद्ध हो अर्थात् उसे जाड़ेमे नगा नहीं फिरना चाहिए, नाबदानकी वस्तुए नहीं खानी चाहिएं और चारों हाथ-पाव नहीं चलाना चाहिए। यह मनुष्य की प्रकृति और आत्माके विरुद्ध है, यह बात आजसे वर्षों पूर्व उस स्त्रीकी कहानी-द्वारा, जिसे पत्थरसे मार-मारकर मार डाला जाने वाला था, सिद्ध हो चुकी है

क्या यह सम्भव है कि मनुष्य (कर्नल यू.. और मिसा कोलोकोल्ट-सेव जैसे) अब इतने न्यायप्रिय हो गये हैं कि उन्हें पहला पत्थर फेकने-(दूसरोको अपराधी करार देने) मे कोई डर नहीं है।

उस समय मैं यह बात नही समझता था। जब मैंने अपनी चचेरी बहिन टॉल्स्टोयाके द्वारा शिबूनिनको क्षमा दिलानेका आवेदन-पत्र दिया, उस समय भी यह बात नहीं समझता था। उस समय मैं किसने भ्रममे था कि शिबूनिनके साथ जो-कुछ हुआ वह एक साधारण-सी बात है। अपने उस भ्रम पर मुझे अब आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।

उस समय मैं ये सारी बाते नहीं समझता था। उस समय तो मेरे मनमे एक अस्पष्ट-सी भावना थी कि जो-कुछ हो गया है वह नहीं होना चाहिए और यह घटना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि इसका

मानव-जातिकी अन्य भूलों और पीड़ाओंसे गहरा संबंध है, और यह सबके मूल (जड़) मे है।

उस समय भी मेरे मनमें एक अस्पष्ट भावना थी कि मौतकी सजा—जान-बूझकर, सोच विचारकर और पहलेसे निश्चय करके को गई हत्या—वह कृत्य है जो कि ईसाई धर्मके (जिसके हम अनुयायी हैं) खिलाफ है। वह विवेकशील जीवन और नैतिकता भग करनेवाली चीज है। क्योंकि अगर एक आदमी या कुछ आदमी मिलकर यह निश्चय करे कि एक आदमी या किसी दलका वध करना आवश्यक है तो दूसरे आदमी या दलको किसीकी हत्या करनेसे कौन रोक सकता है? और क्या उन आदमियोंका जीवन विवेकशील और नैतिक हो मकता है, जो अपनी इच्छानुसार एक दूसरेको मार सकें?

मैं उस समय भी यह महसूस करता था कि धर्म और विज्ञान मोतकी सजाके लिए जो युक्तिया देते हैं, इनके द्वारा हिसा करनेकी न्यायोचितता सिद्ध होनेके स्थान पर उल्टे धर्म और विज्ञानका खोखलापन ही सिद्ध होता है। मुझे यह अनुभव पहली बार पेरिसमें हुआ जब मैंने एक फासीका दृश्य दूरसे देखा।[1] परतु जब मैंने इस मामलेमें भाग लिया तो मेरे मनमें इस सबधमे जोरदार भावनाएं उठीं। फिर भी मुझे अपने ऊपर विश्वास करनेमे और संसारके निर्णयसे अपनेको विलग करनेमे डर लगता था। बहुत दिनोंके बाद मुझे अपनी धारणाओंमें विश्वास पैदा हुआ और उन दो महाभयानक जालोंको अस्वीकार कर सका जिनकी मुट्ठीमें सारा संसार है, और जो सब पीड़ाएं और उत्पीड़न पैदा करते हैं, जिनसे मानव-जाति कष्ट पा रही है। ये दोनों जाल चर्च और विज्ञान हैं।

बहुत दिनों बाद जब मैंने उन युक्तियोंका ध्यानसे अध्ययन करना आरंभ किया, जो 'चर्च' (धर्म-सस्था) और विज्ञान आजकलके राजतत्रके समर्थनमें दिया करते हैं, तब मैं उन दो बडे जालोंको स्पष्ट जान गया,

१ यह घटना सन् १८५८ की है और 'कनफेशन' के १२वें पृष्ठ पर उसका वर्णन किया गया है।

जिनके द्वारा वे राज्यकी काली करतूतों पर परदा डालना और उन्हें जनतासे छिपाना चाहते हैं। मैंने लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें प्रचारित धर्म व विज्ञानकी पुस्तकोंके उन लंबे-लंबे अध्यायोंको पढ़ा है जिनमें कुछ आदमियोंकी इच्छानुसार दूसरोंको फांसी पर चढ़ा देनेके औचित्य और आवश्यकताकी सफाई पेशकी गई है।

विज्ञानके दोनों प्रकारके ग्रंथोंमें—जिसे न्याय-शास्त्र (जुरिस्प्रुडेंस) कहते हैं व जिसमें फौजदारी कानून भी शामिल हैं उसमें और विशुद्ध विज्ञान-संबंधी ग्रंथोंमें—यही बात अधिक संकीर्णता और विश्वासके साथ तर्क-पूर्वक दी गई है। फौजदारी कानूनके संबंधमें तो कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। वह तो सफेद झूठ, छल और प्रपंचोंका क्रमागत इतिहास ही है जो मनुष्य द्वारा मनुष्यपर किये गये सभी प्रकारके हिंसात्मक कामोंको, यहां तक कि मनुष्य-द्वारा मनुष्यकी हत्याको भी, न्यायोचित ठहराता है। और डार्विनसे लेकर अबतकके वैज्ञानिक ग्रंथोंमें भी जो जीवन-संघर्षको जीवनका आधार मानते हैं, यही बात निहित है। जेना विश्वविद्यालयके प्रोफेसर अर्नेस्ट हेकेल जैसे सिद्धांतके जबर्दस्त समर्थक अपनी पुस्तक संदेहवादियोंकी गीता Naturliche Schopfungsge schichte में स्पष्ट लिखते हैं :—

"मानव-जातिके सांस्कृतिक जीवनमें कृत्रिम चुनाव बहुत लाभदायक प्रभाव डालता है। उदाहरणके लिए श्रेष्ठ स्कूली शिक्षा और लालन-पालनका संस्कृतिकी बहुमुखी प्रगतिमें कितना भारी स्थान है। यद्यपि आज-कल बहुतसे आदमी मौतकी सजा 'उदार भाव' से उड़ा देनेकी बड़े जोर-शोरसे वकालत कर रहे हैं और मानवताके थोथे नाम पर अपने पक्षमें बहुत-सी युक्तियां दे रहे हैं लेकिन मौतकी सजा भी कृत्रिम चुनावकी भांति लाभदायक प्रभाव डालती है। जिस प्रकार एक सुंदर उद्यानको बनाये रखनेके लिए घास-फूस और झाड़-झंखाड़ उखाड़ फेंकते रहनेकी आवश्यकता है उसी प्रकार उन बहुसंख्यक अपराधियों और बदमाशोंके लिए जो कभी ठीक ही नहीं हो सकते मौतकी सजा केवल उचित दंड

ही नही है, बल्कि सस्कृत मानव-जातिके लिए बड़े लाभकी चीज है। जिस प्रकार घास-फूसको ठीकसे साफ करने पर पेड़ों और पौधोंको अधिक वायु, प्रकाश और बढ़नेके लिए जगह मिलती है, ठीक उसी प्रकार कठोर अपराधियोंका सफाया कर देनेसे सस्कृत'मानव-जातिका 'जीवन-सघर्ष' केवल कम ही नही हो जायेगा, बल्कि कृत्रिम चुनावका लाभ भी प्रदान करेगा, क्योंकि इस रीतिसे मानव-जातिका पतित अश शेष जाति पर अपने दुर्गणोंका प्रभाव न डाल सकेगा।"

खेद है कि मनुष्य ऐसी बाते पढ़ते हैं, दूसरोंको पढाते हैं और उसे विज्ञानके नामसे पुकारते हैं। लेकिन किसीके दिमागमे यह प्रश्न नहीं उठता कि यह मान लेने पर भी कि बुरे आदमियोंको मार डालना अच्छा है, अच्छे और बुरेका निर्णय कौन करेगा? उदाहरणके लिए मान लीजिए मं समझता हूँ कि मि० हैकलसे ज्यादा बुरा और ज्यादा हानिकारक आदमी संसारमे दूसरा नही है। लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि मै अथवा मेरे जैसे विचार रखनेवाले और आदमी मि० हैकलको फासीकी सजा दे दें? नहीं वह जितनी ही बड़ी-बड़ी भूले करेगे उतना ही मं चाहूँगा कि वह अधिक विवेकी और युक्ति-युक्त हो। किसी भी दशामे म उन्हे उस प्रकारका व्यक्ति बनने देनेके अवसरसे वचित नहीं कर सकता।

चर्च और विज्ञानके मिथ्यावादने ही आज हमे उस गढेमे डाल रखा है जिसमे हम हैं। युगोंसे महीने और वर्षमें एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जिस दिन फासिया, हत्याए न होती हों। कुछ आदमी क्रातिकारियोंकी अपेक्षा सरकार-द्वारा अधिक आदमी वध किये जानेपर प्रसन्न होते है। अन्य लोग बहुत-से सेनापतियों, भूमिपतियो, व्यापारियों तथा पुलिसवालोंके मारे जाने पर प्रसन्न होते हैं। एक ओर तो हत्याओंके लिए १०-१५ और २५ रुबलके इनाम दिये जाते हैं और दूसरी ओर क्रातिकारी लोग हत्यारों और जबर्दस्ती सपत्ति छीननेवालोंका आदर और मान करते हैं और उन्हे शहीदकी पदवी देते हैं। "उन आदमियोंसे मत डरो

जो शरीरका नाश करते हैं बल्कि उनसे डरो जो शरीर और आत्मा दोनों-का विनाश कर देते है।..."

इन सब बातोंको मैंने बादमें समझा। परंतु एक स्पष्ट-सी अनुभूति मेरे मनमें उस समय भी थी, जब मैंने इतनी मूर्खतापूर्ण और लज्जाजनक रीतिसे उस अभागे सिपाहीकी वकालत की थी। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मेरे जीवनपर उस घटनाका भारी प्रभाव पड़ा है।

हा. उस घटनाका मेरे जीवन पर बहुत अच्छा और लाभदायक प्रभाव पड़ा है। उसी समय मैंने पहली बार यह अनुभव किया कि हर प्रकारकी हिंसाकी पूर्तिमें हत्या या हत्याकी धमकी छिपी हुई है, इसलिए हर प्रकार-की हिंसा हत्याके साथ जुड़ी हुई है। दूसरे यह कि राज्य-शासनकी कल्पना बिना हत्याके नहीं हो सकती और इसलिए वह ईसाई धर्मके साथ मेल नहीं खाती। तीसरे यह कि जिस प्रकार पहले चर्चके उपदेशके विषयमें हुआ था, उसी प्रकार हम आज जिसे विज्ञान कहते हैं, वह वर्तमान बुराइयोंकी एक झूठी वकालतके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अब मेरे निकट यह बात बिलकुल स्पष्ट है, परंतु उस समय तो वह उस मिथ्यावादकी, जिसके बीच मैं अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, एक दीर्घ स्वीकृत-मात्र थी।

यास्नाया पोल्याना
२४ मई, १६०८

लियो टॉलस्टॉय